❀ अनन्त श्रीसद्गुरुचरण कमलेभ्योनमः ❀

❀ श्रीजानकी वल्लभोविजयते ❀

❀ अनन्त श्रीपूर्वाचार्यायनमः ❀

❀ श्रीमत्यै सर्वेश्वर्यै श्रीचारुशीलायैनमः ❀

❀ श्रीमन्मारुत नन्दनायनमः ❀

❀ श्रीभगवते रामानन्दाचार्यायनमः ❀

❀ श्रीमते अग्रदेवाचार्यायनमः ❀

❀ श्रीमिथिलाकमलादिव्याभ्यां नमः ❀

❀ श्रीसरयूदिव्याभ्यांनमः ❀

श्रीमद् जनकराजकिशोरीशरण

महली नाम–

'श्रीरसिकअलीजी'

कृत

श्रीसीताराम सिद्धान्त अनन्य

❀ रस तरंगिणी ❀

तिलककार—

अनन्तश्रीसियाशरणजीमहाराज'मधुकर'

प्रकाशकः—

सियारामशरण, रघुवीरशरण 'गुप्त'

(मु० धवारा, झाँसी)

शारदीय पूर्णिमा सम्बत् २०२५ विक्रमाब्द

प्रथम संस्करण २५० प्रति

❀ अनन्त श्रीसद्गुरुचरण कमलेभ्योनमः ❀
❀ श्रीजानकी वल्लभोविजयते
❀ अनन्त श्रीपूर्वाचार्यायनमः ❀
❀ श्रीमत्यै सर्वेश्वर्यै श्रीचारुशीलायैनमः ❀
❀ श्रीमन्मारुत नन्दनायनमः ❀
❀ श्रीभगवते रामानन्दाचार्यायनमः ❀
❀ श्रीमते अग्रदेवाचार्यायनमः ❀
❀ श्रीमिथिलाकमलादिव्याभ्यां नमः ❀
❀ श्रीसरयूदिव्याभ्यांनमः ❀

श्रीमद् जनकराजकिशोरीशरण

महली नाम–

'श्रीरसिकअलीजी'

कृत

श्रीसीताराम सिद्धान्त अनन्य

❀ रस तरंगिणी ❀

तिलककार—

अनन्तश्रीसियाशरणजीमहाराज 'मधुकर'

प्रकाशक:—
सियारामशरण, रघुवीरशरण 'गुप्त'
(मु० धवारा, झाँसी)
शार्दीय पूर्णिमा सम्वत् २०२५ विक्रमाब्द
२५० प्रति
प्रथम संस्करण

❀ श्रीकनकभवन विहारिणी विहारिणी विजयते ❀



यस्यां भाति प्रमोद कानन वरं रामस्य लीलास्पदं ।
यत्र श्री सरिताम्वरा च सरयू रत्नाचलः शोभते ।।
ध्येया ब्रह्म महेश विष्णु मुनिभि र्ह्यानन्ददा सर्वदा ।
साथोध्या परमात्मनो विजयते धाम्नां परा मुक्तिदा ।।

परतम ब्रह्म श्रीकनक महल विहारिणी विहारी जू को दिव्य विहार भावना के सदुपदेशक जगद्वन्द्य रसिकाचार्यों में अनन्त श्रीसम्पन्न दयासिन्धु श्रीरसिकअली जी का महत्व पूर्ण विशिष्ट स्थान है । आप ने श्रीसीतारामीय रस साहित्य को सर्वाङ्ग पूर्ण समृद्ध बनाने का स्तुत्य सदुद्योग किया है ।

आपके प्रणीत श्रीजानकी करुणा भरण एवं श्रीरघुवर करुणाभरण नामक शब्दालङ्कार तथा अर्थालङ्कार के ग्रन्थद्वय तथा श्रीसीताराम रस चन्द्रोदय नामक रस विषयक ग्रन्थ काव्याङ्गों की सूक्ष्मतम गहराई में प्रवेश करने वाली आपकी कुशाग्र बुद्धि के परिचायक हैं ।

प्रस्तुत ग्रन्थ श्रीसीताराम सिद्धान्तानन्य रस तरङ्गिणी में आपने श्रीकनकमहल का चौदह आवरणों के सहित साङ्गोपाङ्ग शब्द चित्रण किया है। आपकी मानसिक भावना सिद्ध थी। नित्य सखी के अवतार थे। अपनी रमु नाम्नी दिव्य दृष्टि से दिव्य विहार देश की सारी वस्तुओं का साक्षात्कार किया था। अतः आपकी समाधि भाषा में लिखी गई दिव्य महावाणी महा प्रामाणिक एवं सर्वथा विश्वासनीय है। रसिक संतों के लिये तो "युगल मंत्र को जाप, वेद, रसिकन की बानी" है भी।

इस प्रसंग में श्रीरसिक प्रकाश भक्तमाल के सर्व मान्य लब्ध प्रतिष्ठ टीकाकार रसिकराज श्रीजानकी रसिकशरणजी की विमलवाणी पठनीय हैं।:—

"रसिक अली सुनाम पायो रंग छायो हिये,
मानसी में महल गली की दृष्टि पाई है।
कनक भवन सप्त आवरण कुञ्ज रंग,
भवन निकुञ्ज ज्योति पुञ्ज दरसाई है॥
झुकी है अटारी मणि रतन सँवारी प्रति,
मन्दिर में अलिन की भीर सरसाई है।"

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना करके ग्रन्थ कर्त्ता श्रीदयासिन्धुजी ने श्री कनकमहल के ध्याता रस साधकों का महान उपकार किया है। महारासोत्सव के साङ्गोपाङ्ग ध्यान करने वाले

भावुकों के लिये नवमी तरंग में वर्णित महारासोत्सव विधान नामक प्रबन्ध में आपने पर्याप्त सामग्री प्रदान करने की अपार कृपा की है। इसी प्रकार ग्रन्थान्तर्गत दूर दर्शिका महल, शीशमहल, रजनी गृह एवं दिवस गृह, वसन गृह, सर्व ऋतु भोग भवन आदि मौलिक भावों का दिग्दर्शन कराकर, इस ग्रन्थ को चिन्तामणि वद्रत रसिक संसार के लिये अतिशय उपादेय बना दिया है।

निगूढ़ रहस्यों का पाण्डित्य पूर्ण भाषा में वर्णन होने के कारण ग्रन्थ साधारण पाठकों के लिये कुछ क्लिष्ट सा हो गया है। अतः सरल भाषा में इसकी रहस्योद्घाटिनी टीका की आवश्यकता हुई।

रसतत्व के विशिष्टि मर्मज्ञ रसिक समाज भूषण अनन्त श्रीसम्पन्न श्रीसियाशरणजी महाराज मधुकरजी ने इस ग्रन्थ की बहुत सुन्दर अवधी भाषा में टीका रची थी। परन्तु वह टीका का खड़ी बोली में न होने से रसिकों को परम सुख प्रद होते हुये भी खड़ी बोली में टीका की आवश्यकता थी। उसका कारण यह है कि आधुनिक समय में खड़ी बोली का विशेष प्रचार है। अतः सामयिक प्रचलित शुद्ध खड़ी बोली में नये सिलसिले से यह टीका पुनः लिखी गई।

इधर रसिक जनों के परम सुहृद श्रीकिशोरीशरणजी मधुरकर इन पंक्तियों के तुच्छ लेखक से बहुत दिनों से टीका लिखने का आग्रह कर रहे थे। अतः उन्हीं की सत्प्रेरणा से इस अयोग्य लेखनी को टीका लिखनी पड़ी है। पूर्वा चार्यों

की कृपा से यद्यपि यह टीका नये ढंग से लिखी गई है, फिर भी श्रीमधुकरजी महाराज की अलौकिक सूझ से टीका रचने में पर्याप्त प्रकाश मिला है, जिसके लिये लेखक उनका कृतज्ञ है। लेखक को हिन्दी साहित्य एवं रहस्य विषय का अल्प ज्ञान है। अतः टीका में बहुत सी भूलें होना स्वाभाविक है, जिसके लिये लेखक उदार पाठकों के समक्ष क्षमा प्रार्थी है।

चतुर्दश तरंग के आठ दोहों की टीका श्रीकिशोरीशरणजी ने अपनी रुचि के अनुकूल कराई है। अतः उसके भाव एवं भाषा के लिये यह लेखक उत्तर दायी नहीं है।

इस सटीक ग्रन्थ को प्रकाश में लाने का सबसे बड़ा श्रेय श्रीकिशोरीशरणजी मधुकर को है। इन्हीं के भगीरथ प्रयत्न से टीका की रचना एवं मुद्रण सम्बन्धी सभी कार्य सफल हुये हैं। रसिक समाज के प्रति इस अनुग्रह पूर्ण उपकार के लिये आप सर्वथा धन्यवादार्ह हैं।

ग्रन्थ मुद्रण सम्बन्धी सारा व्यय चिरगांव (झाँसी) वाले श्रीसियारामशरण रघुबीरशरण गुप्ता मो० धवारा वाले ने वहन किया है। ये श्रीवैदेही वल्लभ कुञ्ज श्रीअयोध्याजी के वयोवृद्ध सुप्रतिष्ठित रसिक सिद्ध संत श्री १०८ श्रीसियाशरणजी महाराज के कृपा पात्र हैं। अतः प्रकाशक रसिक महानुभावों के आशीर्वाद और धन्यवाद के भाजन हैं॥ इत्यलम् ॥

श्रीरसमोदकुञ्ज
श्री अयोध्याजी
शारदीय पूर्णिमा, २०२५
विक्रमाब्द।

रसिकाधिराज शिरताज-
अनन्त श्रीरसमोदलताजो
कोठामहाराज) के पादारविन्द
मकरन्द का लुब्ध मिलिन्द
'शत्रुहनशरण'

❀ दो शब्द ❀

श्रीलाड़िलीलाल जू की असीम अनुकम्पा से, प्रातः स्मरणीय अनन्त श्रीरसिकअली जी कृत श्रीसीताराम सिद्धान्त अनन्य रस तरंगिणी नामक ग्रन्थ की टीका श्री १०८ शत्रुहन-शरणजी महाराज ने बड़े ही श्रम और श्रद्धा के साथ लिखकर रसिकों को सुख प्रदान करने का प्रयास किया है। कहीं २ पर दीन ने श्रीमहाराजजी की वाणी का परिवर्तन कर दिया है। इस धृष्टता का दीन क्षमा प्रार्थी है।

यद्यपि इस ग्रन्थ की टीका-कुछ समय पूर्व रसतत्व के परम वेत्ता रसिक समाज भूषण श्रीअनन्त श्रीसियाशरणजी महाराज (मधुकरजी) ने लिखी थी। परन्तु वह टीका उनके सामयिक शब्दों में थी। उसी को आधार भूत बनाकर अपनी कुशाग्र बुद्धि से श्रीशत्रुहनशरणजी महाराज जो रसिक प्रवर अनन्त श्रीकोठेवाले महाराज के परम कृपा पात्र हैं, इनने लिखकर रसिक समाज को प्रफुल्लित किया है।

यह टीका आधुनिक समयानुसार प्रचलित शुद्ध खड़ी भाषा में है। परम श्रद्धेय श्रीशत्रुहनशरणजी महाराज पर श्रीप्रिया प्रीतम जू की अपार कृपा है जो इनने अपना अमूल्य समय लगाकर इस ग्रन्थ की टीका लिखकर सभी भावुकों को आनन्द प्लावित किया है।

मेरे हृदय म यह संतत भावना होती है कि-श्रीलड़ैती लाल जू इनपर सदा इसी प्रकार अपनी कृपा दृष्टि बनाये रहें। इनका हृदय श्रीयुगल प्रेम रस सिन्धु में निमग्न रहे।

किशोरीशरण मधुकर)

✻ श्रीजानकीवल्लभाय नमः ✻

✻ सूची-पत्र ✻

प्रथम तरङ्ग

(श्रीधाम सिद्धान्त)

✻ द्वितीय तरङ्ग ✻

(रूपैश्वर्य्य तथा नख शिख माधुर्य्य वर्णन)

✻ तृतीय तरङ्ग ✻

(त्रिविध चित्राम एवं कौतुकशाला विशिष्ट कनक भवन)

❁ चतुर्थ तरङ्ग ❁

(प्रथम मयूरावरण में वाहन शालाएँ)

❁ पंचम तरङ्ग ❁

(द्वितीय राज हंसावरण)

❁ षष्टम तरङ्ग ❁

(तृतीय हंसावरण में मृग पक्षी विनोद)

❁ सप्तम तरङ्ग ❁

(चतुर्थ कीरावरण में गेन्द, गंजीफा, जलकेलि)

❀ अष्टम तरङ्ग ❀

(पाचवें सारसावरण में महलादि ललित शोभा)

❀ नवम तरंग ❀

(षष्टम पारावतावरण में महारासोत्सव विधान)

❀ दशम तरङ्ग ❀

(सातवें शुक्रावरण में त्यौहार चौक)

❁ एकादश तरङ्ग ❁

(आठवाँ आवरण)

❁ द्वादश तरङ्ग ❁

(नववाँ आवरण)

❁ त्रयोदश तरङ्ग ❁

(दशवाँ आवरण)

❁ चतुर्दश तरङ्ग ❁

(एकादश आवरण)

❁ पंचदश तरङ्ग ❁

(बारहवाँ आवरण)

❁ षोडश तरङ्ग ❁

(त्रयोदश आवरण)

❁ सप्तदश तरङ्ग ❁

(चौदहवाँ आवरण)

❀ अष्टदश तरंग ❀

(सर्व ऋतु भोग गृह)

❀ एकोन विंशति तरंग ❀

(शेष विधान वर्णन)



❀ श्रीसद्गुरु चरण कमलेभ्योनमः ❀

❀ मङ्गल मूर्तये श्रीमन्मारुतनन्दनाय नमः ❀

❀ श्रीजानकी बल्लभो विजयते तराम् ❀

श्रीसीताराम सिद्धान्तानन्य रस तरङ्गिणी

❀ अथ धाम सिद्धान्त वर्णन नामक प्रथम तरङ्ग ❀

❀ अथ टीकाकार कृत मङ्गलाचरण ❀

निज सदगुरु रसमोदलता पद कंज मनावों।
जासु कृपा लहि तिलक सुरुचि मनभावन पावों ॥
रसिक अली तिमि महल सखिन पद शीश नवाई।
रस तरंगिणी-तिलक कृपा लहि रचौं बनाई ॥

❀ दोहा ❀

जनकलली रघुलाल बिन, को दूजो रुचिपाल।
'कान्तिलता' के हिय बसौ, युगल अंक दै माल ॥

❀ मूल मङ्गलाचरण श्लोक ❀

नत्वा मारुत पुत्रं सीताराम पदाब्ज लुब्ध भृंगम्।
गुण गण गृणतां नाथं कुर्वेऽनन्य तरंगिणीमिमाम् ॥

श्लोकार्थः—जो श्रीसीतारामजी के पदकंज मकरन्द के लोभी भ्रमर हैं, जो महत्वशाली गुणगण सम्पन्न वालों में अग्रगण्य हैं, ऐसे श्रीपवननन्दन जी को नमस्कार करके मैं इस अनन्य तरङ्गिणी नामक ग्रन्थ की रचना करता हूँ। प्रस्तुत ग्रन्थ का पूरा नाम श्रीसीताराम सिद्धान्तानन्य रस तरङ्गिणी है। छन्दानुरोध से संक्षिप्त नाम लिखा।

❀ दोहा ❀

बन्दौं श्रीगुरु पद पदुम, पवन तनय सिर नाय।
करौं अनन्य तरंगिनी, भर्म धर्म दुख जाय ॥१॥

शब्दार्थः भर्म (भ्रम)=धोखा, कुछ का कुछ समझना। धर्म=यहां रसानन्यता पालन रूपी रसिकोचित स्वधर्म से तात्पर्य है। दुख=पश्चाताप, आत्मग्लानि।

दोहार्थः- पूज्य ग्रन्थकार श्रीरसिकअली जी कहते हैं कि मैं अपने श्रीसद्गुरु महाराज के पादारविन्द की वन्दना करता हूँ, पुनः श्रीहनुमतलालजी के चरण कमल में नतमस्तक होकर प्रणाम करके, श्रीसीताराम सिद्धान्तानन्य रस तरंगिणी नामक ग्रन्थ की रचना करता हूँ। ग्रन्थ रचना का तात्पर्य बताते हुये वे कहते हैं कि इसके स्वाध्याय से रसिकोचित कर्त्तव्य पालन करने में धोखा न होगा। सती के पातिब्रत्य भंग होने की भाँति रसिकों को अनन्यता खंडित हो जाने पर आत्मग्लानि होती है। वह इस ग्रन्थ के द्वारा मिट जायगी।

❀ ग्रन्थ रूपी नदी का रूपक ❀

भक्ति विमल यामें सुधा, ताके अंग तरंग।
विगसहिं सुनत मुमुक्षु मन, सोह कमल बहु रंग ॥ २ ॥
जे सिय रघुबर भक्त जन, सो मंगलमय मीन।
जिनके दर्शन ते सकल, पाप पीनता छीन ॥ ३ ॥
वैधी अरु रागानुगा, उभै कूल सो जान।
करि निवास जो मज्जहीं, तिन के पुन्य पुरान ॥ ४ ॥

शब्दार्थ:—विमल भक्ति = विशुद्धा भक्ति जिस में कर्म, ज्ञान, योगादि पुरुषार्थ का सांकार्य (मिलावट) न हो। ऐसी भक्ति रसिकानन्य मधुर उपासकों में ही मुख्य रूप से सम्भव है। सुधा = इस का अर्थ जल भी है। यहाँ अमृतोपम जल। ताके अंग = ग्रंथरूपी जलधारा के अंग अर्थात् अध्याय। बिगसहिं = आनन्दातिरेक से प्रफुल्लित होगा। पीनता = मोटापन। छीन (क्षीण) = दुबला पतला। वैधी = शास्त्र विधि से की जाने वाली नवधा साधन भक्ति। रागानुगा = साधनों के फल अथवा भगवत्कृपा से प्राप्त प्रेमा, परा फल रूपा भक्ति। उभै (उभय) = दोनों। कूल = किनारा। मज्जहीं = यहाँ अध्ययन, एवं निदिध्यासन से तात्पर्य्य है। पुरान = (पुराण) पूर्व जन्मार्जित।

❀ मुमुक्षु = श्री कनक महल की नित्य सेवा रूपी सामीप्य मुक्ति चाहने वाले साधक।

भावार्थ :--विशुद्धा भक्ति इस नदी का अमृतोपम जल है। इस ग्रंथ रूपी नदी के जो विभिन्न अध्याय हैं; वही तरंग हैं। अथवा भक्ति के नवधा, प्रेमा, परा एवं प्रौढ़ा आदि अङ्ग ही तरंग है। ग्रंथ श्रवण करने से जो साधकों का मन प्रफुल्लित हो जाता है, वही प्रसन्न मन नाना रंग के कमल इस में शोभित हो रहे हैं ॥ २ ॥

जो श्री सीताराम जी के युगल विहार चिन्तक सिद्ध संत हैं, वे तो इसमें मछली की भाँति निरन्तर मगन ही रहेंगे। वे मछली की ही भाँति मंगल दर्शन हैं। इनके दर्शन करते ही पुष्ट पाप भी क्षीण हो जाते हैं। "संत दरश जिमि पातक टरई।" ॥ ३ ॥

साधन भक्ति तथा सिद्ध भक्ति इस नदी के दोनों किनारे हैं। इन दोनों में से किसी भी भक्ति में स्थित रहना मानो इस नदी तट पर निवास करना है। ग्रन्थोक्त भावों की भावना करते रहना इसमें मज्जन स्नान करना है। जिनके पूर्वकृत प्राचीन पुण्य पुञ्ज प्रबल हो कर उदय होंगे, वेही ऐसा निवास और मज्जन करेंगे ॥ ४ ॥

प्रसङ्ग :--आगे के दोहे में मज्जन अर्थात् भावना करने की फल श्रुति कहते हैं।

यह जो ऽनन्य तरंगिनी, कर अवगाहन कोइ।
उदय उपासन ज्ञान सिय, राम भक्ति दृढ़ होइ ॥ ५ ॥

शब्दार्थ:--अवगाहन=जल में प्रवेश कर मज्जन करना, यहाँ भावों की गंभीरता में पहुँचकर भावना करना। उदय= प्रकट । नन्य=अनन्य (छन्द की मात्रा के लिये)

दोहार्थ :--इस ग्रन्थ रूपी नदी के भावों की गंभीरता में प्रवेश कर जो मज्जन अर्थात् भावना करेंगे, उनके हृदय में युगल उपासना का यथार्थ सरस ज्ञान प्रकट होगा तथा उनकी (युगल उपासना वली) मधुरा भक्ति परिपक्व हो जायगी ॥ ५ –

नाम सुयश सुनि सुनि श्रवन, जदपि प्रीति उर होय।
बिनु जाने पुर राज–गृह, मन दृढ़ता नहिं सोय ॥ ६ ॥
याते बरनौं अवध को, रूप शास्त्र अनुसार।
शास्त्र रीति लखु त्रिविध सो, प्रसिध प्रमान बिचार ॥७॥

शब्दार्थ--प्रसिध [प्रसिद्ध]=प्रत्यक्ष, जो नेत्रादि इन्द्रियों के द्वारा जाना जाय। प्रमान [प्रमाण]=विश्वसनीय यथार्थ ज्ञान, शुद्ध बोध। विचार=अनुमान, अटकल।

भावार्थ:--परम प्रेमास्पद श्रीजानकी बल्लभलालजी के मधुर मनोहर नाम एवं मनभावन सुयश बारम्बार रसिक महानुभावों के मुखारविन्द से सुनकर उनके प्रति साधकों के हृदय में प्रीति तो अंकुरित हो जाती है, परन्तु श्रीनवल लाल जी की अयोध्यापुरी तथा उनके राजमहल कनकभवन आदि को बिना अच्छी प्रकार से जाने साधकों के मन में न तो वह प्रीति सुदृढ़

होती, न मन दृढ़ता पूर्वक ध्याननिष्ट ही हो पाता ॥ ६ ॥

अतः प्राण प्यारे श्रीरघुराज दुलारेजी की विहारस्थली श्रीअयोध्यापुरी का स्वरूप शास्त्रीय रीति से वर्णन करता हूँ।

शास्त्र के महत्व को समझने के लिये तीन प्रकार के प्रमाणों पर विचार करना चाहिये। [१] प्रत्यक्ष [२] अनुमान और [३] प्रमाण ॥ ७ ॥

प्रसिध जो नयननि देखिये, शास्त्र पुरान प्रमान।
एक अंग सुनि सकल अँग, जानव सो अनुमान ॥ ८ ॥
जोइ त्रिविध व्यौहार सब, कहत शास्त्र अनुवाग।
सो प्रसिद्ध ही देखिये, रवि मंडल उपराग ॥ ९ ॥

शब्दार्थः--अनुवाग=वेद विहित वचन। उपराग=ग्रहण।

भावार्थः--प्रसिद्ध अर्थात् प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जो नयनों से देखा जाय। इसमें भ्रम हो सकता है, यथा रात्रि में रस्सी में साँप का भ्रम, दिन में मृगमरीचिका में जल की प्रतीति। प्रमाण उसे कहते हैं जो शास्त्र पुराणों में शब्दब्रह्म स्वरूप निभ्रान्त उल्लखित है। अनुमान उसे जानियेगा जिसमें केवल एक ही अङ्ग सुनकर या जानकर समूचे अंगों का अन्दाज कर लिया जाय। इस में भी भ्रम की काफी सम्भावना है ॥ ८ ॥

ऊपर जो तीन प्रकार के प्रमाणों का वर्णन हुआ है, उसमें वेद विहित शास्त्रीय वचन सब से अधिक विश्वसनीय है। इसको स्पष्ट रूप से सब कोई प्रगट ही देखते हैं कि जिस समय ज्योतिष शास्त्र सूर्य ग्रहण का समय पहले से निश्चित करते हैं, ठीक उसी समय ग्रहण होता भी है ॥ ६ ॥

आवृत, विस्तार और सांकेतिक त्रिविध उक्तियाँ

त्रिविध शास्त्र श्रुति उक्ति लखु, आवृत अरु विस्तार।
सांकेतिक तीसर समुझु, बिनु समुझे अपहार ॥१०॥
यथा रूप वर्णन करै, ताहि समुझ विस्तार।
कारज में कारन गुहै, सो आवृत निरधार ॥११॥
वरनि वचन सामान्यता, कछुक वचन संकेत।
सो सांकेतिक जानिये, चतुर चित्त गहि लेत ॥१२॥

शब्दार्थः--उक्ति=वचन। आवृत=गूढ़, छिपा हुआ भाव। सांकेतिक=इशारा वाला। अपहार=यथार्थ ज्ञान का अपहरण अर्थात् वंचित होना। गुहै=गुप्त करदे, छिपा दे।

भावार्थः--वेद शास्त्रों के वचन तीन प्रकार के होते हैं। (१) आवृत (२) विस्तार और (३) सांकेतिक। इनको समझना चाहिये, नहीं तो सच्चे ज्ञान से वंचित होना पड़ेगा ॥ १० ॥

प्रतिपाद्य विषय का जैसा स्वरूप है, ठीक वैसा ही चित्रण करने को (१) विस्तार वचन' समझिये। कार्य वर्णन करके, उसी में कारण को युक्ति पूर्वक छिपा देवे, उसी को (२) आवृत वचन' कहते हैं, ऐसा निश्चय जानना चाहिये॥ ११ ॥

साधारण बात को बढ़ाकर कहना और उसमें असली बात को थोड़े शब्दों में इशारा मात्र से लक्ष कराने को (३) 'सांकेतिक वचन' जानियेगा । उस इशारे को सामान्य पाठक तो नहीं समझ पाते, जो चतुर चित्त वाले मर्मज्ञ हैं, वे उस संकेत को तुरत पकड़ लेते हैं॥ १२ ॥

* भूतल और गोलोक स्थित दोनों अयोध्याजी *

उभय रूप लखु अवध के, भूतल अरु गोलोक।
उभय अभेद बखानिये, रघुवर लीला ओक ॥१३॥

शब्दार्थः--उभय=दो । भूतल=पृथ्वी के ऊपर, एक पाद विभूति अन्तर्गत । गोलोक=नित्यधाम त्रिपाद विभूति अन्तर्गत गोलोक की राजधानी । ओक=स्थान।

भावार्थः -श्री अयोध्यापुरी के दो स्वरूप हैं। एक तो एकपाद विभूति अन्तर्गत पृथ्वी के ऊपर जल में कमल पत्र वत स्थित हैं। दूसरे नित्य अविनाशी त्रिपाद बिभूति अन्तर्गत गोलोक की राजधानी स्वरूप विराजती हैं। दोनों स्वरूप तत्वतः स्वरूपतः अभिन्न हैं, ऐसा

श्रुति शास्त्र ने वर्णन किया है। क्योंकि दोनों ही श्री-चक्रवर्तीन्द्र दशस्यन्दन नन्दनजी की ऐश्वर्य माधुर्य प्रधान लीलाओं की दिव्यस्थली हैं।

एक समय मारुत सुवन, कीन्हों हृदय विचार।
उभय अवध महँ रूप यक, कै प्रभु दुइ निरधार ॥ १४ ॥
तब कीन्हों केशरि कुँवर, कुतुक परीक्षा हेत।
सो मुमुक्षु जन के हिये, सुनत संक हरि लेत ॥ १५ ॥
तब निज प्रभु ढिग जाइ कै, वसन सुपरवा दीन।
पुनि आये भूतल अवध, तहूँ सोइ लखि लीन ॥ १६ ॥
तब मारुत सुत के हिये, मिटी संक लवलेश।
पुनि अगस्त्य मुनि को दियो, दृढ़ता सोइ उपदेश ॥ १७ ॥

शब्दार्थः—निर्धार=इसका निश्चय करना चाहिये। कुतुक=विनोदमय खेल। निज प्रभु=त्रिपाद विभूति वाले श्रीसाकेत विहारी जी। परवा=गांठ। सोइ=वही गांठ ज्यों की त्यों पड़ी है। लवलेश=(जो शंका) अत्यन्त स्वल्प रूप (में उठी थी)।

भावार्थः—एक समय श्रीहनुमतलाल जी के हृदय में एक स्वल्प शंका उत्पन्न हुई। वह यह कि दोनों श्रीअयोध्याजी में श्रीजानकी बल्लभलाल जी का एक ही अभिन्न स्वरूप है, अथवा दो विभिन्न? इसका निश्चय करना चाहिये ॥ १४ ॥

तब श्रीहनुमतलाल जी ने इस बात को जाँचने के लिये एक विनोदमय खेल किया। यह प्रसंग सुनकर नवीन साधकों के हृदय की संभाव्य शंका मिट जायगी ॥ १५ ॥

तब उनने अपने प्राणनाथ प्रियतम श्रीसाकेत विहारी के सन्निकट जाकर, उनके दुपट्टे के छोर में एक गाँठ बान्ध दी। पुनः लौटकर एकपाद स्थित श्रीअयोध्या में आये और श्रीजानकी जीवन जी के दर्शन किये, तो यहां भी दुपट्टे के छोर में हूबहू वैसी ही गांठ पड़ी देखी ॥ १६ ॥

तब तो श्रीहनुमतलालजी के हृदय में जो किंचिन्मात्र शंका उत्पन्न हुई थी, वह निःशेष रूप से मिट गई। पुनः रसिक भूषण महामुनि श्री अगत्स्त्य को दृढ़ता पूर्वक वैसा ही उपदेश दिया कि एक ही प्रभु उभय रूप से दोनों अभिन्न रूप अवध में विहार करते हैं ॥ १७ ॥

दोउ विभूति भू अवध की, दिव्य सुलीला जानु।
जीवन के उद्धार हित, लीला तन अनुमानु ॥ १८ ॥
पंचीकृत तनु युक्त कृत, मुक्ति न पुनि संसार।
तहँ बसि सो लीला समुझ, दिव्य त्रिगुन के पार ॥ १९ ॥
दिव्य सो प्राकृतता रहित, सत चित आनन्द रूप।
विहरत सिय रघुनन्द दोउ, दस स्यन्दन नित भूप ॥ २० ॥

शब्दार्थः पंचीकृत तनु=पांच भौतिक स्थूल शरीर। युक्त= भक्ति के अनुरूप, साधकोचित। कृत=भजन एवं भगवत्कैंकर्य करके।

भावार्थः--अब एकपाद एवं त्रिपाद विभूति की व्याख्या करते हैं। भूतल वाली श्रीअयोध्या को लीलाविभूति एवं गोलोकवाली श्रीअयोध्या को दिव्य विभूति जाननो चाहिये। श्रीअयोध्या विहारी जी भूतल में जीवों के उद्धारार्थ मंगलमय लीला विग्रह धारण करते हैं। ऐसा अनुमान अर्थात् विचार करना चाहिये ॥ १८ ॥

जिस भूतल स्थित श्रीअयोध्या में निवास करके पांचभौतिक स्थूल शरीरधारी साधक भक्ति विहित भजन एवं भगवत्कैंकर्य करके ऐसी सामीप्य मुक्ति पा लेते हैं कि उन्हें पुनः लौटकर संसार में नहीं आना पड़ता, उस अयोध्या को तो लीला विभूति समझिये। दिव्य विभूति तो त्रिगुणमयी प्रकृति के परे हैं ॥ १९ ॥

दिव्य विभूति मायिक विकारों से रहित सच्चिदानन्दमयी है। वहां के श्रीचक्रवर्ती दशरथजी महाराज नित्य राज राजेश्वर हैं। सारा राज्यकार्य वही सम्हालते हैं। श्रीजनकलली रघुलालजी तो स्वच्छन्द होकर निरन्तर विहार ही करते रहते हैं ॥ २० ॥

संधिनी, संदीपनी और आह्लादिनी का विवरण

सन्धिनि अरु सन्दीपनी, अहलादिनि यह तीन।
वर्तमान सियराम की, शक्ति स्वकार्य प्रवीन ॥ २१ ॥
सन्धिनि सो योजित करै, जीव ईश सम्बन्ध।
सन्दीपनि दीपन करै, जीव ज्ञान अनुबन्ध ॥ २२ ॥

परानन्द अहलादिनी, मुक्तन हृदय प्रकास।
करहिं निरन्तर राम सिय, रूप नयन–गृह वास ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—सन्धिनी = संयोग कराने वाली। संदीपनी = प्रकाशित करने वाली, उद्दीपन करने वाली। आह्लादिनी = परमानन्द सुख देने वाली। वर्तमान = निरन्तर सेवा में तत्पर। प्रवीण = निपुण, कुशल। योजित = मिलाना। दीपन = प्रकाशित। अनुबन्ध = संयोग सहायक।

भावार्थः--श्रीयुगलकिशोर जू की अनन्त शक्तियों में तीन प्रमुख हैं। १ सन्धिनी, २ संदीपनी और ३ आह्लादिनी। ये तीनों निरन्तर उनकी सेवा में तत्पर रहने वाली अपने-अपने कैंकर्य में अति कुशल हैं ॥ २१ ॥

सन्धिनी वह शक्ति है जो जीव ब्रह्म के मध्य जैसा नित्य सम्बन्ध है, उसी अनुरूप संयोग करा देवे। सन्दीपनी शक्ति का कार्य है जो मुमुक्षुओं के लिये संयोग सहायक (यथा स्वस्वरूप, परस्वरूप तथा इनके बीच नित्य सम्बन्ध आदि) ज्ञान प्रकाशित करे ॥२२॥

आह्लादिनी शक्ति मुक्त जीवों के हृदय में परमानन्द सुख परिपूर्ण कर देती हैं, कारण कि उसी शक्ति के द्वारा श्रीयुगलकिशोर चितचोर जी सौभाग्यशाली मुक्तात्माओं के नयन-निकुञ्ज में निरन्तर निवास करते हैं ॥ २३ ॥

प्रकृति मंडलसे दिव्यदेश का साम्य और वैषम्य

हर्ष गर्व अभिलाष मद, मान मर्ष अरु रोष।
निद्रा मदन-विकार तहँ, वरतत सब निर्दोष ॥ २४ ॥
छुधा प्यास आलस्य पुनि, शीत गर्म दुख शर्म।
वरतत तहँ यह सकल तिहि, अप्राकृतता धर्म ॥ २५ ॥

शब्दार्थः--गर्व=बड़प्पन का विचार। मद=घमंड से मतवाला होना। मान=प्रतिष्ठा। मर्ष=सहनशीलता, धैर्य। रोष=क्रोध, जोश। निर्दोष=अवगुण से रहित। शर्म=सुख, आनन्द। अप्राकृतता=मायिक दुर्गुणों से रहित, दिव्य। धर्म=स्वभाव।

भावार्थः--श्रीलड़ैतीलाल जी की माधुर्य्य लीला में सहायक रूप दिव्य विहार देश के परिकरों में हर्ष, गर्व, अभिलाषा, मद, मान, धैर्य, क्रोध, निद्रा और काम-विकार आदि सब वर्तमान रहते हैं। अन्तर इतना ही है कि प्रकृति मंडल में ये मायिक दोष रूप होकर जीव को अपराध एवं दुःख का भाजन बना देते और दिव्य देश में इनके दिव्य स्वरूप वहां वालों को दिव्य लीला का माधुर्य्यानन्द प्राप्त करने में सहायक होते हैं, अतः निर्दोष हैं ॥ २४ ॥

उसी प्रकार भूख, प्यास, आलस्य, ठंढी, गर्मी, दुःख सुख--ये सभी प्रकृति मंडल की भांति वहां भी

रहते हैं, किन्तु वहां इनका स्वभाव निर्मायिक हैं, माधुर्यानन्ददायक हैं ॥ २५ ॥

षट ऋतु द्वादस मास दिन, राति पाख दुइ जान।
तारागन ससि सूर सुर, आलौकिक अनुमान ॥ २६ ॥
चौंसठ अरु दस चारि पुनि, नृप–विद्या हूँ चार।
सो सब तहाँ विचारिये, जो देखिय संसार ॥ २७॥

शब्दार्थः--सूर=सूर्य्य। सुर=देवता । आलौकिक (अलौकिक)=संसार से विलक्षण-दिव्य स्वरूप वाले। दसचारि=चौदह (विद्या), यथा (षडङ्ग मिश्रिताः वेदाः धर्मशास्त्रं पुराणकम्। मीमांसा तर्कमपि च एताः विद्याश्चतुर्दशा) नृप-विद्या=राजनीति (साम, दाम, दंड और भेद--ये चारों)।

भावार्थः--वहां दिव्य विहार देश में भी छवो ऋतुएँ, बारह महीने, दिन रात, शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्ष, तारागण, चन्द्रमा, सूर्य्य तथा देवतागण हैं, पर इन्हें वहां दिब्य रूप वाले, तथा संसार से विलक्षण विचारना चाहिये ॥ २६ ॥

चौंसठ प्रकार की कलायें, चौदह प्रकार की विद्यायें चारों प्रकार की राजनीति-इनकी स्थिति वहां भी विचारनी चाहिये। जो जो वस्तुयें संसार में हैं, वहाँ भी सब हैं, परन्तु वहां उनके स्वरूप दिव्य चिन्मय हैं। (२७)

पुनि तहँ मल न मलीनता, रोग न दोष सुजान।
जरा न मृत्यु उपाधि कछु, परानन्दमय मान ॥ २८ ॥
बालिसता न बिकारता, नहिं अधर्म की रीति।
नहिं कुरूपता देखिये, सकल सुधर्म सुनीति ॥ २६ ॥

शब्दार्थः--सुजान = अच्छी तरह जान लेना। जरा = वृद्धावस्था। उपाधि = उपद्रव। बालिसता = मूर्खता।

भावार्थः-संसार वाली जो चीजें वहां भी हैं, उनके नाम गिनाकर, अब ऐसी वस्तुओं के नामोल्लेख हो रहे हैं, जो संसार में तो हैं पर वहा नहीं हैं।

वहां न पाप विकार हैं, न अस्वच्छता अर्थात् गन्दापन है, न रोग, न दोष इसे अच्छी प्रकार समझ रखिये। वहां न तो कोई बूढ़ा होता है, न मरता है, न किसी प्रकार के छल प्रपंच वाले उपद्रव हैं वहां की सारी चीजें परमानन्द विस्तार करने वाली हैं ॥ २८ ॥

वहां न कोई मूर्ख है, न दुराचारी। कोई पाप कर्म नहीं करता। वहां सभी सुन्दर मनहरण रूप वाले हैं, कोई कुरूप नहीं है। सब धर्माचरण करने वाले एवं सुन्दर नीति के वर्तने वाले हैं ॥ २६ ॥

त्रिदेशिक वस्तु एवं ऐश्वर्य माधुर्य तारतम्य

वस्तु त्रिदेशिक सकल तहँ, सबके उभय स्वरूप।
एक वस्तुमय स्वामि हित, द्वितिय द्विभुज अनूप ॥ ३० ॥

दोऊ सत चित जानिये, परानन्द संभोग ।
रसिक संग बिनु भेद यह, पाव कि प्राकृत लोग ॥ ३१ ॥
ऐश्वर्य ऽरु माधुर्य पुनि, मिश्रित दोउ मिलि जान।
ये तीनों करि सिद्ध सो, वस्तु त्रिदेशिक मान ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः--वस्तुमय=लता द्रुम, खग मृग, छत्र चँवर, पानदान पीकदान, आदिक वस्तुओं का स्वरुप धारण करना । द्विभुज अनूप=महालक्ष्म्यादिकों से भी सुन्दर अनुपम दो भुजा वाली सखी का विग्रह । संभोग=दोनों ही रूपों से परमानन्द सुख का उपभोग होता है । प्राकृत=मायासक्त । सिद्ध=कृत कार्य अर्थात् सफल होना ।

भावार्थः--उस दिव्य देश की स्थावर जंगम यावत् वस्तुयें हैं, सब के दो दो स्वरूप हैं । श्रीप्रिया प्रियतम् जू के सुखार्थ वस्त्र भूषण, खग मृग, लता द्रुम आदिक स्वरुप बन जाना-एक रूप तो ऐसा है । दूसरा निज स्वरुप है, दो भुजावाली अनुपम रूप लावण्य, नव यौवन से सम्पन्ना नायिका का विग्रह ॥३०॥

दोनों रूप सच्चिदानन्दमय हैं, दोनों से ही परमानन्द सुख का भोग होता है । रसिक महानुभावों के दिव्य ज्ञान प्रदायक सत्संग के बिना माया सक्त लोग इस मर्म को नहीं समझ सकते ॥ ३१ ॥

(१) ऐश्वर्य (२) माधुर्य तथा (३) दोनों की मिलावट-ये तीनों रूप जिनमें सफलता पूर्वक सम्भव हों, उन्हें त्रिदेशिक मानना चाहिये ॥ ३२ ॥

गहि केवल ऐश्वर्य करि, मधुर रीति में संक।
तेहि न उपासक मानिये, महा रुच्छ मति रंक ॥ ३३ ॥
गहि केवल माधुर्य पुनि, धरै न चित ऐश्वर्य।
रसिक ताहि नहि मानिये, राम उपासक वर्ज्य ॥ ३४ ॥
बिनु ऐश्वर्य विकारता, सकल वस्तु में जान।
ग्रसै अवस्था काल कृत, प्राकृतता अनुमान ॥ ३५ ॥
गहि केवल ऐश्वर्यता, मते नहीं माधुर्य ।
भोग वस्तु सब ब्यर्थता, समुझव निज चातुर्य ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः--संक (शंक)=संशय, दुबिधा। रुच्छ (रुक्ष)= प्रेम शून्य रूखा सूखा हृदय वाला। मतिरंक=बुद्धि का कंगला, अज्ञानी। बर्ज्य=वर्जन करने, पृथक करने योग्य है। विकारता=मायिक दोष युक्त। ग्रसै=बृद्धादिक अवस्था से सताये जाँयगे। मते=जिनके विचार में। व्यर्थता=निष्फल। चातुर्य=अपनी बुद्धि की चतुराई से।

भावार्थः--परात्पर ब्रह्म श्रीजानकीवल्लभलालजी भी माधुर्यानन्द रसास्वादन के निमित्त भूख, प्यास, निद्रा, मदनावेश आदि मनुजोचित धर्मों को स्वेच्छा पूर्वक स्वीकार कर, नित्य विहार देश में अनन्त नायिकाओं के साथ रमण करते रहते हैं। इस प्रकार की माधुर्य्य रीति में जिन्हें शंका है, जो ब्रह्म को केवल अज, अद्वैत, अनामय, निरीह, आदिक ऐश्वर्य गुणों से ही युक्त

समझते हैं, उन्हें भक्त नहीं मानना चाहिये, वे तो महान रुक्ष मतवाले बुद्धि के दरिद्र हैं ॥ ३३ ॥

पुनः जो केवल उपर्युक्त माधुर्य्यभाव को ग्रहण किये हुये हैं और उनके चित्त में परम प्रभु की प्रभुता, अपरिमित शक्ति सामर्थ्य का भाव नहीं है, उन्हें मधुर-रस के रसिक नहीं मानना चाहिये। ऐसे लोग तो श्री-सीतारामजी के उपासक पद से भी पृथक करने योग्य हैं ॥ ३४ ॥

यदि ऐश्वर्य भाव नहीं माना जाय, तो मायिक देश की भांति यहां की वस्तुयें भी सड़ने-गलने आदिक दोषों से युक्त हो सकेंगी। पुनः प्रकृत देश की तरह यहां वाले भी बुढ़ापा आदिक कालकृत कष्टों से ग्रसित हो सकेंगे ॥ ३५ ॥

यदि केवल एक भाव ऐश्वर्य ही मानते हैं माधुर्य भाव विचार में नहीं लाते, तो वहां की सारी भोग सामग्री निष्प्रयोजन हो जाती है। अपनी बुद्धि की चतुराई द्वारा इसको समझना चाहिये ॥ ३६ ॥

तातें उर तीनौं धरै, विलसै सौख्य अखंड।
चक्रवर्ति नृप कोटि सम, प्रभुता तासु प्रचंड ॥ ३७ ॥

भावार्थः--इसलिये त्रिदेशिक पद वाच्य तीनों भावों को हृदय में धारण करके अखंड एक रस परमानन्द सुख में मगन रहना चाहिये। इस प्रकार के उपासक

को कोटि-कोटि चक्रवर्ती सम्राट् के समान बड़ी भारी प्रभुता प्राप्त होगी।

भिन्न रूप तिनौन को, बरनव सो अब जान।
दुइ युत वस्तु स्वरूप सो, मिश्रित संज्ञा मान ॥ ३८ ॥
यथा धर्म तेहि देखिये, जड़ अथवा चैतन्य।
सो जानव माधुर्यता, ईश रूप तेहि अन्य ॥ ३९ ॥
द्विभुज रूप सोइ वस्तु को, सो ईशता सुजान।
यहि प्रकार सब वस्तु को, चिन्मय चित में आन ॥ ४० ॥

शब्दार्थः ईश रूप=ऐश्वर्य स्वरूप । चिन्मय=दिव्यज्ञान सम्पन्न ।

भावार्थः - अब आपको जानना चाहिये कि त्रिदेशिक पद वाच्य तीनों के स्वरूप पृथक-पृथक वर्णन किये जायेंगे। पहले (१ मिश्रित रूप कहते हैं।) जहां दो भुजा वाली सखी-स्वरूप एवं सेवा सौज वाला वस्तु-स्वरूप की एक ही जगह मिलावट हो, उसका नाम मिश्रित मानियेगा ॥३८॥

जड़ अथवा चैतन्य जो भी रूप धारण किया जाय, उस समय केवल उसी रूप के स्वभाव एवं धर्म का बर्ताव होवे, उसको माधुर्य जानियेगा। उसका ऐश्वर्य स्वरूप कुछ और होगा, जो अगले दोहे में स्पष्ट करेंगे ॥ ३९ ॥

प्रत्येक वस्तु का निज सहज स्वरूप दो भुजा वाली सखी का है। इस निज सहज स्वरूप का ऐश्वर्य रूप जानिये। इसी प्रकार चाहे जड़वत चेष्टा हो या चैतन्यवत, पर यथार्थ में सबों को दिव्य चेतना अर्थात् ज्ञान से युक्त समझना चाहिये।

इति श्री मज्जनकराज किशोरी शरण विरचितायां
श्री सीताराम सिद्धातानन्य रस तरङ्गिण्यां धाम
सिद्धान्त वर्णनोनाम प्रथमस्तरङ्ग ॥ १ ॥



❀ द्वितीय तरङ्ग ❀

❀ रूपैश्वर्य तथा नख--शिख माधुर्य्य ❀

❀ ऐश्वर्य वर्णन ❀

जनकसुता दशरथ सुवन, परम परेश सुजान ।
नारायन श्रीपति हरी, इन कर अंश प्रमान ॥ १ ॥
लक्ष्मी महा विष्णु तेहि, दिव्य गुनन को रूप ।
तासु तीन यह शक्ति युत, विधि हरि हर गुन भूप ॥ २ ॥
पर ब्रह्म तिहि तेज धन, जो श्रुति निर्गुन गाव ।
निराकार निर्लेपता, जहँ ईहता अभाव ॥ ३ ॥

शब्दार्थः--गुन भूप=राजा के समान दिव्य गुणों के खजाना वाले । निर्लेपता=सबसे अनासक्त । ईहता=चेष्टा, क्रियाशीलता ।

भावार्थः--श्रीजनकलाड़िली जू एवं श्रीदशरथ राजदुलारे जू ये युगलकिशोर परात्पर ब्रह्म हैं, ऐसा अच्छी तरह जान लीजिये । श्रीनारायण पुरी के अधिपति श्रीमन्नारायण प्रभु तथा श्रीक्षीरसागर निवासी श्रीपति विष्णु भगवान इन्हीं के अंश हैं । ऐसा श्रुति प्रमाण है ।

प्रमाण स्वरूपः-अथर्वण वेदे सनक सनातन संहितायाम्'

"चैत्रमासे नवम्यां तु शुक्लपक्षे रघूत्तमः ।
प्रादुरासीत् परंब्रह्म परब्रह्मैव केवलम्" ॥

पुनः महासुन्दरी तन्त्रे श्रीजानकी वाक्यम् :--

"मत्तो नारायणो विष्णु रात्मानं कतिधा सृजन् ॥"

अर्थात् श्रीजनकलली जू के सहित श्रीरघुनन्दन जू से उत्पन्न होकर श्रीनारायण और श्रीविष्णु भगवान ने कितने अवतार लिये ॥ १ ॥

श्रीमहोदया नाम्नीपुरी के स्वामी षोडश भुजावाले श्रीमहाविष्णु प्रभु अपनी भार्या श्रीमहालक्ष्मी जी के सहित श्रीजानकीरमण जू के दिव्य गुणों से प्रगट हुये हैं। पुनः उन श्रीमहाविष्णु प्रभु से दिव्यगुणों के भंडार श्रीब्रह्मा, विष्णु, महेश--ये त्रिदेव अपनी शक्तियों के सहित प्रगट हुये ॥ २ ॥

जिस परब्रह्म के लिये श्रुति ऐसा कहती है कि वह निर्गुण है, निराकार है, सबसे अनासक्त है. उसमें क्रियाशीलता कतई है ही नहीं- वह परब्रह्म भी श्री-जानकीवल्लभलाल जू के मंगलमय श्रीविग्रह के घनीभूत तेजोराशि से प्रगट हुये हैं।

प्रमाणः--सदाशिव संहितायाम् सौमित्रि वाक्यं वेदान्प्रतिः--

"राघवस्य गुणो दिव्यो महाविष्णुः स्वरूपवान् ।
वासुदेवो घनीभूत स्तनु तेजो महाशिवः ॥"

पुनि ताके पद अंक ते, उद्भव दश अवतार ।
पुनि चौबीसहु जानिये, तेहि जस जग बिस्तार ॥ ४ ॥
अमित बिष्णु अरु अमित हर, अमित चतुरमुख जासु ।
सेवत पद पथोज नित, करि करि निकट निवासु ॥ ५ ॥

शब्दार्थ - पद अंक = चरण चिह्न । उद्भव = उत्पन्न । चतुर-मुख = ब्रह्मा । पाथोज = कमल ।

भावार्थः--पुनः ऐश्वर्य दिखाते हुये ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि उन्हीं श्रीवैदेही बल्लभ जू के चरण चिह्न से भगवान के दश और चौबीसों अवतार उत्पन्न हुये हैं। उन्हीं के चरण कमल के प्रभाव से इन भगवदवतारों का सुयश संसार में इतना फैल पाया ॥ ४ ॥

अनन्त ब्रह्मा, विष्णु, महेश सखी स्वरूप से श्रीकनक-भवन विहारीलाल जू के सानिध्य में रहकर उनके पादारविन्द की सेवा नित्य करते हैं।

प्रमाण—"विधि हरिहर वन्दित पद रेनू।"

श्रीमनहरणलाल जू का नख-शिख अङ्ग वर्णन

नील वारिधर वरन वपु, मृदुता वारिज नील ।
नील मनी इव द्युति लसत, जनु मन्दिर गुन शील । ६ ।
सघन श्याम चिक्कन कुटिल, सोंधे वासित वार ।
आयत भाल बिशाल दग, कमल भ्रमर दगतार ॥ ७ ॥

भौंह चाप श्रुति सम लसत, दर्पन द्युति कपोल।
नासा सुठि तिल सुमन इव, अधर मधुर मृदु बोल।। ८।।
दसन दाड़िमो बीज इव, ठोड़ी वेदि अनंग।
कम्बु ग्रीव त्रय रेख युत, निरखि मन दंग ॥ ९ ॥
वृषम कंध आयसु उर, करि कर सम भुज दंड।
करज मनोहर अरुन नख, धृत धनुवान प्रचंड।। १० ॥

शब्दार्थ:--वारिधर=मेघ। वपु=शरीर। वारिज=कमल। सोंधे=इत्र। वासित=सुगन्धित किया हुआ। आयत=विस्तृत। दृगतार=नयन की पुतली। चाप=धनुष। सम=सुडौल। तिल सुमन=तिलके फूल। दाड़िमी-बीज=अनार के दाने। ठोड़ी=चिबुक। कम्बुग्रीव=शंख के समान कंठ। वृषभ=साँड़। करिकर=हाथी की सूंड़। करज=हाथ की अंगुली। धृत=धारण किये हुये हैं।

भावार्थ:--श्रीकौशलेन्द्र राजदुलारे जू के मंगलमय श्रीविग्रह का वर्ण (रंग) श्याम मेघवत सरस, नीलकमल वत सुकुमार एवं सहज सुगन्धमय तथा नीलमणि तद्वत कान्तिमान एवं अनन्त शोभा सम्पन्न है। आप में सौन्दर्य, माधुर्य, सौकुमार्य, सौशिल्यादि अनन्त दिव्य गुणगण इतने भरे हैं, मानो श्रीविग्रह इन गुणों के स्थायी निवास के लिये मन्दिर ही हों।। ६।।

श्रीलाड़िले जू की अलकावली घनी, काली, चिकनी,

घुँघुराली तथा इत्रादि से सुगन्धित की हुई है। ललाट चौड़ा है, प्रफुल्लित कमल के समान बड़े-बड़े रसीले नयन हैं, उन कमलनयनों के मध्य काली पुतली क्या है, मानो भ्रमरी बैठी हो ॥ ७ ॥

श्रीप्राणप्यारे जू की भौंह काम धनुष के समान, कान सुडौल और शोभायमान, कपोल दर्पण के समान कान्तियुक्त हैं। नाक की सुघराई तिल के फूल के समान है। अरुणारे अधर सुधाधिक मीठे हैं,(स्वाद अधरपान करने वाली जानती होगी।) वाणी अतिशय कोमल, मीठी और मनहरणी है ॥ ८ ॥

श्रीअलबेले लालजू की दन्तावली पके अनार के दाने के समान कसे हुये, चिबुक तो मानो कामदेव के बैठने की वेदिका हो, शंख के समान चढ़ाव उतार वाले तीन रेखाओं से युक्त कंठ है। इन मनोहर अंगों की शोभा देखकर कामदेव चकित रह जाता है ॥ ९ ॥

आपके साँढ़ के कन्धे के समान पुष्ट कन्धे हैं, प्रशस्त वक्षस्थल है, हाथी की सूंड़ के समान सुढार भुजदंड हैं, करांगुली की शोभा मनको चुराये लेती है, नखमणि के प्रान्त भाग लाल लाल हैं। कठिन कठोर धनुषबाण को सुकोमल करकंज में धारण कियेहैं ॥१०॥

❀ सोरठा ❀

नाभि सुभग गम्भीर, उदर रेख त्रय तनु सुकटि।
रघुनन्दन रन धीर, मधि किशोर वय नित्य लखु ॥ ११ ॥

शब्दार्थः--तनु = पतली । किशोरावस्था ८ बर्ष से आरम्भ होकर अन्तिम २५ बर्ष तक है, १६ बर्ष मध्य किशोर माना जाता है ।

भावार्थः--रघुवंश को आनन्दित करने वाले श्रीमैथिलीरमण प्यारे जू की नाभी सुन्दर और गहरी है । मनोहर उदर पर त्रिवली की रेखायें हैं । मनमोहनी पतली कमर है । काम-समर में बीरता पूर्वक डटने वाले हैं । आपकी नववय नित्य मध्य किशोरावस्था वाली षोड़श वर्षीय अति मनभावनी है । ऐसा ध्यान में नित्य देखना चाहिये ॥ ११ ॥

❀ दोहा ❀

उरु रंभा खंभा सुभग, उरु प्रद्योत सुदेश ।
जंघा जुग तूनीर इव, एड़ी उभय सुवेश ॥ १२ ॥
दोउ पद कोमल पद्म सम, अंगुरी ललित सुढार ।
नख द्युति हरत सुचन्द्र की, यह नख शिख उर धार ॥ १३ ॥
अधर अरुन करतल अरुन, अरुन पादतल देखु ।
चालिस अष्ट सुचिह्न युत, नैन सुफल लखि लेखु ॥ १४ ॥

शब्दार्थः-- उरु = कमर और घुटने के मध्य वाली जाँघ । रंभा खंभा = कदली स्तम्भ । उरु = सुपुष्ट । प्रद्योत = कान्तिमान । सुदेश = सुन्दर । जंघा = घुटने से नीचे तथा चरण से ऊपर वाला अंग । तूनीर = (काम का) तरकश । सुवेश = रूपवान । पद्म = कमल । द्युति = प्रकाश ।

भावार्थः—कटि से नीचे वाली जांघ केले के स्तंभ के समान गोल, चिक्कन, (उरु) सुपुष्ट, कान्ति और लावण्य युक्त है। घुटने से नीचे वाली जांघ काम के तरकश के समान मनोजभाव वर्द्धिनी है। दोनों एँड़ी अति सुन्दर हैं ॥ १२ ॥

युगल चरण कमल, कोमल एवं मनोज्ञ हैं। चरणांगुली दशों सुन्दर और सुडौल हैं। नखमणि चन्द्रमा की चन्द्रिका वाली शोभा अपहरण कर रही है। ऐसे मनभावन लालजू की नख-शिख-अंग-शोभा को हृदय में जोगाकर रखना चाहिये ॥ १३ ॥

अब लाल अंगों की ओर संकेत करते हुये कहते हैं कि श्रीदशरथ लाल जू के अधर लाल है, तलहत्थी, तलवे लाल लाल हैं। अड़तालीस चिह्नों से युक्त मनोहर तलवे की सुछवि अवलोकन कर अपने नयन का लाभ लूटना चाहिये ॥ १४ ॥

मनभावन लालजू का नख-शिख शृङ्गार वर्णन

मनि मानिक मुक्ता रचित, पुरट मुकुट सिर भ्राज।
तुर्रे झब्बे झालरी, कलित कलंगी साज ॥ १५॥
रुचिर रचित केशर तिलक, सोहत भाल विशाल।
रेख युगल जनु मदन-सर, मध्य विन्दु छवि जाल ॥१६॥

तिलक बिन्दु जुग भौंह मधि, अति अद्भुत छवि देत।
मध्य राखि मनि उरग जनु, कमल कूल सुख लेत ॥१७॥
की दोउ अलि अवलीन के, मध्य इन्द्र वधु सोह।
की अनंग के चाप मधि, विद्रुम छवि सन्दोह ॥ १८ ॥
नक मुक्ता छवि अधर पर, अद्भुत उपमा साज।
ब्रह्म सुता के मध्य जनु, मज्जत हैं उड़राज ॥ १९ ॥
मनि मय ढिग मुक्तावली, श्रवन सुलोल कपोल।
जनु जमुना जल मध्य में, हंस मंडली डोल ॥ २० ॥

शब्दार्थः—मानिक (माणिक्य)=गुलाबी या लाल रंग का रत्न। मुक्ता=मोती। पुरट=सोना। कलित=सुन्दर। रुचिर=सुन्दर। रेख=तिलक की दोनों रेखायें। मदनसर=कामबाण। जाल=पुंज। उरग=सर्प। कूल=किनारा। अलि=भ्रमर। अवलीन=पंक्तियां। इन्द्रबधु=इन्द्रबहूटी नामक बरसाती लाल कीड़ा। अनंगचाप=कामधनुष। विद्रुम=मूंगा। सन्दोह= समूह। नवमुक्ता=नाशा मोती। ब्रह्मसुता=सरस्वती नदी। उड़राज=चन्द्रमा। मुक्तावली=कुंडल में लटकने वाला मोतियों का गुच्छा। लोल=चंचलता पूर्वक झूलने वाला। जमुना जल=यहां श्याम कपोल की उपमा है। हंसमंडली=मोती-गुच्छा का उपमान।

भावार्थः-श्रीनवल लाल जू के मनोहर माथे पर मणि माणिक्य एवं मोतियों से जड़ित स्वर्ण का क्रीट मुकुट शोभित

हो रहा है। इस मुकुट की शोभा तुर्रे, झब्बे, झालर और सुन्दर कलंगी से अधिक बढ़ रही है॥ १५॥

चौड़े ललाट पर केशर से रचित सुन्दर तिलक सुशोभित हो रहा है। तिलक की दोनों ऊर्ध्व रेखायें क्या हैं, मानो नव युवतियों के हृदय में बेधने के लिये दो कामबाण हों। उभय तिलक रेखाओं के मध्य में श्री की विन्दु है। यह विन्दु अति छवि पुञ्ज है।

उपर्युक्त तिलक की लाल विन्दु दोनों भौहों के बीच अतिशय आश्चर्यजनक शोभा दे रही है। मानो दो काले नाग (भौंह की उपमा) अपने दोनों के बीच में (भौहों के मध्य) मणि (विन्दु) रखकर कमल (नयन) किनारे बैठ शीतलता सुगन्ध और शोभा का सुख ले रहे हों॥ १७॥

पुनः तिलक विन्दु के लिये संदेहालंकार दे रहे हैं। क्या यह दो भ्रमर पंक्तियों (भौहों) के बीच में इन्द्रबहूटी तो नहीं बैठी है? अथवा दो काम धनुषों (टेढ़ी भृकुटियों) के मध्य में रखा हुआ अति शोभायमान मूंगा है? १८॥

श्रीजानकी जीवन जू के मधुराधर पर नाशामोती की शोभा कवि के हृदय में एक आश्चर्य उपमा स्फुरित करती है। मानो सरस्वती नदी [लाल अधर] के बीच में प्रवेश कर चन्द्रमा (नाशामोती) मज्जन स्नान इधर-उधर डोलते हुये कर रहा हो॥ १९॥

कानों के मणिमय कुंडल में मोती के गुच्छे कपोलों पर डोल रहे हैं। दर्पणवत श्याम कपोल में उस मोती गुच्छे का

जो प्रतिबिम्ब पड़ता है, उस पर उत्प्रेक्षा देते हुये कवि कहते हैं "मानो यमुना जल (श्याम कपोल) के बीच में हंस मंडली (मोती गुच्छे) तैर रही हों ॥ २० ॥

कंठा कलित सुकंठ में, चामी कर को सोह ।
तातर मुक्ता गुंज मधि, कौस्तुभ मनि मन मोह ॥ २१ ॥
सो त्रिकोन पिंगल वरन, ढिग मुक्ता कनि पाँति ।
मोहत मन मा नाथ को, लखि तेहि अद्भुत कान्ति॥२२।
तातर विद्रुम कनक रचि, जुग जष्टिका प्रमान ।
सोहत मोहन माल मधि, पदिक अमित दुति मान ॥२३।
तातर शशधर हार जय, माल लसत तर तासु ।
अलकैं लसत कपोल पर, चित्त हरत मृदु हास ॥ २४ ॥
फूलन के गजरा लसत, नैनन अंजन सोह ।
अतर अंग मुख पान को, चर्वन मो मन मोह ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—कलित = सुसज्जित । चामीकर = सोना । पिंगल = पीला । मानाथ = लक्ष्मीकान्त । जष्टिका (यष्टिका) = लर । शशधर = चन्द्रमा । शशनाम खरहे को अंक में जो धारण करे वह चन्द्रमा ।

भावार्थः—श्रीजानकी वल्लभ जू के सुन्दर कंठ प्रदेश में सुवर्ण का कंठा सुसज्जित है । वह अति शोभित हो रहा है । कंठा के नीचे मोती की माला, उससे नीचे गुंजे की माला धारण किये हुये हैं । मध्य में कौस्तुभ मणि दर्शकों के मन को मोहने वाली है ॥ २१ ॥

वह कौस्तुभ मणि त्रिकोणाकार तथा पीत रंग की है। उसके चारों ओर किनारे-किनारे मोतियों के छोटे २ कण जड़े हैं। यद्यपि श्रीलक्ष्मीकान्त विष्णु भगवान् भी कौस्तुभधारी हैं, परन्तु इस कौस्तुभमणि की आश्चर्य कान्ति को देखकर उनका मन भी मुग्ध हो जाता है ॥ २२ ॥

कौस्तुभमणि के नीचे मोहन माला धारण किये हुये हैं। यह मोहनमाला सोने और मूंगे से रचित दो लर वाली हैं, ऐसा शास्त्रों से प्रमाणित है। इस मोहनमाला के मध्य में ग्रथित पदिक अतिशय प्रकाशमान है ॥ २३ ॥

मोहनमाला के नीचे चन्द्रहार है, उससे नीचे जयमाल है। अलकों की लट कपोल पर छहरा रही है। मन्द मुसकान चित्त को वरवश चुराये लेती है॥ २४ ॥

जयमाल के नीचे सुगन्धित फूलों का गजला सुशोभित हो रहा है। रसीले नयनों में काजर खूब फब रहा है। अंग-अंग से इत्र की सुगन्ध-लपटें उठ रही हैं। श्रीमुख में ताम्बूल का बीड़ा चर्वन करते हुये मेरे मन को मोहित कर रहे हैं ॥२५॥

मनि मानिक मुक्ता रचित, भुज अंगद छवि-गेह।
चितवनि दशरथ लाल की, हिये बढ़ावत नेह ॥ २६ ॥
कर कंकन सुमयूर मुख, पहुँची परम सुदेश।
करज मुद्रिका मनि कलित, कटि किंकिनी सुवेश ॥६७॥

भावार्थः--वाहु में अंगद नामक भूषण धारण किये हैं। यह भूषण मणि, माणिक्य और मोती से जटित है। शोभा

के धाम हैं। श्रीचक्रवर्तीन्द्र राजदुलारे जू की रस भरी तिरछी चितवनि दर्शन करने वाली नायिकाओं के हृदय में स्नेह को बढ़ाने वाली है॥ २६॥

"कन्दर्प कोटि समकान्तिरलं च,
राम: श्याम: सुपश्यति तरुनथ पक्षिणश्च।
वृक्षा: खगा: कुसुमवाण वशा भवन्ति,
कामं सदैव विनयं क्रियते रसज्ञे॥

अर्थात् श्रीमनमोहनलाल जू की चितवनि का प्रभाव बताते हुई "माधुर्य केलि कादम्बिनी" ग्रन्थोक्त एक सखी अपने सहेली से कहती है--हे रसज्ञान में प्रवीणे, कोटि कन्दर्प के समान लावण्य धाम श्याम सुन्दर श्रीरघुनन्दन जू जब वृक्षों और पक्षियों की ओर रसभरी चितवनि डालते हैं, तो वे सब भी नायिका स्वरूपस्थ होकर कामबाण से विद्ध हो अरु काम सुख के लिये अनुनय विनय करने लगते हैं।

परम सुन्दर पहुँची पर मयूर-मुख की आकृति वाला रत्न जटित कंकण है। करांगुली में मणिरचित मुद्रिका है। पतली मनमोहिनी कमर में क्षुद्र घंटिका सुशोभित हो रही हैं॥ २७॥

वसन पीत बालार्क द्युति, अरुन रंग प्राबार।
बूटें विविध प्रकार के, रचित हेम के तार॥ २८॥
ढिग जराव मुक्तावली, छोरन मुक्ता जाल।
फुन्दे कलित हरित मनि, शोभानिधि सियलाल॥ २९॥
तैसहि पटुका नील रंग, वृषभ कन्ध पर सोह।
चामीकर तोड़े पगन, या छवि सुख सन्दोह॥ ३०॥

शब्दार्थः--वसन=कटि वस्त्र, धोती। बालार्क=उदयकालीन बाल सूर्य। प्रावार=कोर, किनारी। हेम=सोना। पटुका=उपरना, चादर। चामीकर=सोना। तोड़े=कड़े। सन्दोह=ढेर, पुंज।

भावार्थः--बाल सूर्य के समान चमक वाला पीताम्बर कटि में पहने हैं। इसकी किनारी लाल रंग की है। सोने के तार से भाँति भाँति के बेल बूटे इस पीताम्बर में कढ़े हैं॥ २८॥

किनारी के समीप छोटे २ मोती जड़े हैं। दोनों छोर में सूक्ष्म मोती के जाल लगे हैं। इसमें फुदना हरित मणि से निर्मित लगा है। श्रीसियावल्लभलाल जू अपार शोभा के समुद्र हो रहे हैं॥ २९॥

उसी प्रकार सुसज्जित किनारी वाला, जड़ीदार नील रंग का दुपट्टा साँढ़ के समान सुपुष्ट कन्धे पर शोभित हो रहा है। सुवर्ण मणि रचित कड़े श्रीचरणों में पहने हैं। इस प्रकार की नख शिख शोभा श्रीमनभावन जू की ध्यान में अथवा प्रत्यक्ष दर्शन करने वालों के लिये परमानन्द की राशि ही तो है॥ ३०॥

श्रीप्रिया जू के श्रीमुख एवं चरण शोभा वर्णन

प्रधान नख शिख

तैसहि सिय शोभा निधी, षोडश द्वादश साज।
हास विलास कटाक्ष करि, पिय के संग विराज॥ ३१॥

ललित अङ्ग सारी ललित, सजल जलद इव सोह।
कलित सुकंचन सूत्र सो, बाल रवी ढिग जोह ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः - निधी = समुद्र। षोड़श = सोलह शृङ्गार। द्वादश = बारह आभूषण। सजल जलद = जल से लबालब भरा हुआ श्यामधन। इव = समान। कंचन सूत्र = सोने का तार। बालरवी = उदयकालीन सुनहले रंग का सूर्य-मंडल। जोह = ध्यान में देखिये।

भावार्थः—जैसे शोभा के समुद्र श्रीदशरथलाल जू हैं, वैसी ही अपार रूप राशि से सम्पन्न श्रीसिय लाड़िली जू हैं। सोलह शृङ्गार बारह भूषणों से अलंकृत हैं। मधुर मन्द मुसकान एवं रस भरी चितवनि से प्रियतम जू के मन को मोहित करती हुई निरन्तर उनकी शोभा बढ़ा रही हैं ॥ ३१ ॥

श्रीप्रिया जू के मनोहर श्रीअङ्गों में सुन्दर साड़ी श्यामधन के समान है। यह साड़ी सोने के तारों से जड़ित है। ध्यान में देखना चाहिये कि उदयकालीन सुनहले सूर्य मंडल (श्री प्रिया जू के विग्रह) के समीप सजल मेघ (श्याम साड़ी) शोभित हो रहा है ॥३२॥

सिय मुख को उपमेय शशि, होय नहीं निर्धार।
घटै बढ़ै क्रम ते सोई, औरहुँ दोष अपार ॥ ३३ ॥
सोहत नाहिं सरोज द्युति, सिय मुख के समतूल।
दिनमनि मित्र न सीतकर, कल्पित तिन कहँ सूल ॥३४॥

शब्दार्थः—उपमेय=उपमा के योग्य। (सीतकर)=शीतल किरण वाला अर्थात् चन्द्रमा। सूल (शूल)=कष्ट। कल्पित=देने वाला।

भावार्थ--श्रीलड़ैती जू के श्रीमुख की उपमा के योग्य चन्द्रमा हो नहीं सकता, यह निश्चित है, क्योंकि चन्द्रमा क्रमशः दोनों पक्षों में घटता रहता है। यह मुखश्री-सदा एक रस शोभा से परिपूर्ण रहने वाली है। चन्द्रमा में और भी अनन्त दूषण है। श्रीसिय जू का मुख सर्वथा निर्दोष है ॥ ३३ ॥

श्रीसिया लाड़िली जू के मुख के समान कमल की कान्ति भी सुहावनी नहीं है। क्योंकि कमल को प्रफुल्लित करने वाले उसके मित्र सूर्य्य हैं और श्री-सिय जू का मुख स्वतः बिना सूर्योदय की अपेक्षा किये सदा प्रफुल्लित रहता है। पुनः सबको शीतल करने वाला सब अह्लादक चन्द्रमा ही कमल का वैरी है, कष्ट देने वाला है। यहां श्रीसिय मुख से चन्द्रमा का कोई विरोध नहीं ॥ ३४ ॥

शोभा भूषन वसन अँग, अद्‌भुत कही न जाय।
कोमल चरन सरोज जुग, जावक बिनु अरुनाय ॥ ३५ ॥
पदज परम शोभा अधिक, चम्पक कलिका जान।
भक्तन जीवन मूरि धौं, शशि शरण्य उपमानु ॥ ३६ ॥

धौं भक्तन के बिमल मन, करत निरन्तर वास ।
मनि अवली अद्भुत किधौं, शोभित नखर प्रकास ॥ ३७ ॥
अनवट विछिया मनि कलित, वलित मधुर मंजीर ।
जनु गावत कीरति ललित, चहुँ वेदन श्रुति धीर ॥ ३८ ॥

शब्दार्थः—जावक (यावक)=महावर । पदज=चरणांगुली । शरण्य=शरण देने वाले । अनवट=चरणांगुष्ट का छल्ला । बिछिया=चरणांगुली का छल्ला । कलित= रचित । वलित=युक्त । मंजीर=नूपुर ।

भावार्थ—श्रीप्रिया जू के भूषण, वसन एवं श्रीअङ्गों की शोभा अद्भुत तथा अकथनीय है । कमल के समान शोभा, सुगन्ध, सुकुमारता से भरे हुये दोनों चरण बिना महावर लगाये भी स्वतः लाल वरण के मनहरण हैं ॥ ३५ ॥

श्रीचरणंगुली की सुषमा अति अधिक है । वे अंगुलियां मानो चम्पे की कलिकायें हैं अथवा भक्तों के लिये संजीवनी जड़ी हैं अथवा चन्द्रमा को भी काल से रक्षा करने वाली आश्रयदायिनी हैं ॥ ३६ ॥

श्रीचरणों के प्रकाशमान नख कैसे शोभित हो रहे हैं ? क्या भक्तों का उज्ज्वल मन ही नख बनकर श्रीचरणों में निवास करता है ? या कोई विलक्षण मणियों की पंक्ति तो नहीं है ? ॥ ३७ ॥

मणि जटित अनवट और विछिया चरणांगुलियों

में, पुनः मधुर नूपुर श्रीचरणों में सुसज्जित हैं। इन भूषणों से ऐसी सुमधुर ध्वनि झंकृत होती है, मानो चारों वेदों की सुन्दर श्रुतियाँ श्रीरघुनन्दन हृदयेश्वरी जू के मधुर मनोहर सुयश का गान कर रही हों ॥३८॥

रति उपमान न कीजिये, रमा न सम सरसाय।
सिय के एकहि अंश ते, बहु हरि सँग दरसाय ॥ ३६ ॥
ललित लाड़िली लाल दोउ, ललित ललित सखि संग।
ललित ललित लीला करत, ललित विभाव तरंग ॥४०॥

शब्दार्थः--रमा = लक्ष्मी। सरसाय = शोभित होना। विभाव = अंग शोभा, चितवनि, मुसकान, नृत्य, गान आदि रति को उद्दीप्त करने वाली सामग्री।

भावार्थः--श्रीसिय जू की उपमा योग रति नहीं है, न उनके समान लक्ष्मी जी भी शोभायमान हैं। श्रीसिय जू के एक ही अंश से श्रीमहालक्ष्मी प्रगट होती हैं, और उन अंशभूता महालक्ष्मी से कोटि-कोटि लक्ष्मी प्रगट होकर अनन्त ब्रह्माण्डों के अनंत विष्णु के साथ देखने में आती हैं ॥ ३६ ॥

श्रीलाड़िली लाल जैसे युगल अति सुन्दर हैं, तैसी ही उनके संग सेवा में रहने वाली सखियाँ भी सुन्दरी हैं। सुन्दर मनहरणी लीला करते रहते हैं। लीला देश में उद्दीपन विभाव की सुन्दर-सुन्दर तरंगे अनुक्षण लहराती रहती हैं ॥ ४० ॥

इति श्रीजनकराज किशोरीशरण बिरचितायां श्रीसीताराम सिद्धान्तानन्य रस तरङ्गिण्यां रूपैश्वर्य माधुर्य वर्णनोनाम द्वितीय स्तरङ्गः ॥ २ ॥

❀ श्रीजानकी बल्लभो विजयते तराम् ❀

❀ तृतीय तरङ्ग ❀

विविध चित्राम एवं कौतुकशाला विशिष्ट कनक भवन

❀ श्रीकनक भवन की समृद्धि ❀

सुषमा भवन सिंगार रस, भवन भवन सुख केर।
कनक भवन सिय लाल को, लीला भवन सुहेर॥ १ ॥
सकल संपदा भवन सब, रिद्ध सिद्धि को जान।
षट ऋतु रागिनि राग को, कनक भवन अनुमान॥ २ ॥
भवन आठहूं समय को, रासादिक को जान।
कनक भवन रचना भवन, नहिं विस्तार प्रमान॥ ३ ॥

शब्दार्थः--सुहेर=अच्छी तरह ध्यान में देखिये। रचना=शिल्पकला, चित्राम। नहिं विस्तार प्रमान=दिव्य चिन्मय होने से इसका विस्तार असीम है, अथवा ग्रन्थकार कहते हैं कि हम कुछ बढ़ाकर अपने मन से नहीं कहते, इन उक्तियों के प्रमाण शास्त्रों में भी आयेहैं।

भावार्थः--श्रीकनक भवन इतने अधिक शोभायमान हैं, मानों

परमा शोभा यहीं निवास करती हो। पुनः इसमें मदनोद्दीपक सामग्रियों का इतना प्राचुर्य है, मानो स्वयं शृङ्गार रस ही का भवन हो, विविध भाँति के सुख देने वाले भोगैश्वर्य का बाहुल्य होने से यह सुख के भी भवन हैं। श्रीयुगल ललन जू की नाना रसमयी लीलाओं का प्रमुख स्थल यही हैं, ऐसा ध्यान में अवलोकन करना चाहिये ॥ १ ॥

श्रीकनक भवन की भावना इस प्रकार करनी चाहिये कि सब प्रकार की सम्पत्ति, ऋद्धि, सिद्धि, छवों ऋतुयें छः राग, छत्तिस रागिनी ये सब सखी रूप से श्रीयुगल-नवलकिशोर प्रिय के सेवार्थ तत्पर रहती हैं एवं अपने अपने अधिकार की सुखदायक वस्तुओं को यहाँ भरपूर किये रहती हैं ॥ २ ॥

श्रीप्रिया प्रियतम जू के रासादिक आह्निक विलास के अष्ट सेवा कुञ्ज भी श्रीकनक भवन के अन्तर्गत ही जानना चाहिये। यहां के शिल्पादिक कला चातुर्य्य को देखकर यही कहना पड़ता है कि मानो सारी रचनाओं के निवास करने का खाश स्थान यही है। ग्रन्थकार कहते हैं कि कुछ बढ़ाकर हमने नहीं कहा, बिल्कुल शास्त्रीय प्रमाण की बातें हैं ॥ ३ ॥

❀ श्रीकनक भवन की चित्रसारी ❀

स्वेत पाँडुरो घूसरो, पीत श्याम अरुनार।
रक्त हरित पिंगल यही, नव रँग मनी अपार ॥ ४ ॥

तेहि नौ मनि के रचित पचि, बूटे विविध प्रकार।
बेलि सु विविध प्रकार की, लता सु विविध प्रकार ॥ ५ ॥
रचित विविध वृत्तावली, खग मृग बहुतक जाति।
वापी कूप तड़ाग वहु, वस्तु सकल सोइ भाँति ॥ ६ ॥

शब्दार्थः--पाँडुर=सफेदी लिये हुये पीला। धूसर=खाकी। अरुनार=हल्की लालिमा। रक्त=गाढ़ा लाल। पिंगल=भूरापन लिये पीला। पचि=मिलाकर। वापी=छोटा पोखरा। तड़ाग=बड़ा पोखर।

भावार्थः--श्वेत वर्ण की स्फटिक मणि, पांडुर, धूसर, पीत, श्याम, लाल, रक्त, हरा, और पिंगल--ये नव रंग की मणियों में प्रत्येक की अनन्त संख्या है ॥ ४ ॥

उपर्युक्त नव रंग की मणियों के नाना प्रकार की बेल बूटे तथा लताएँ इस प्रकार मिलाकर रचित हैं कि कहीं जोड़ नहीं मालूम पड़ती ॥ ५ ॥

वहां भांति-भांति के वृक्षों की पंक्तियाँ, अनन्त जातियों के पक्षी, पशु, चित्रों में रचित हैं। बहुत सी बावलियाँ, कूएँ और सरोवर उसी प्रकार असंख्य वस्तुएँ उन्हीं नवरंग मणियों से रच पच कर चित्रों में अङ्कित हैं ॥ ६ ॥

लिखी नकल सब देश की, वस्तु सहित लवलेश।
सप्त दीप नौ खंड की, रचना अतिहि सुदेश ॥ ७ ॥

सप्त सिन्धु अरु गिरि सकल, पुनि तामें जो वस्तु।
ग्राम नारि नर फूल फल, खग पशु अपर समस्तु ॥ ८ ॥

शब्दार्थ--लवलेश = अति अल्प । द्वीप = वह भू भाग जो चारों ओर समुद्रों से घिरा हो । जम्बू, गोमेद, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर--यही सातों द्वीप हैं। खंड = पृथ्वी के नौ विभागः--भारत, इलावृत्त, किंपुरुष, भद्र. केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य और कुश, यही नौ खंडों के नाम हैं।

भावार्थः--नौ रंग के मणि रचित चित्रों में सातों द्वीपों एवं नवों खंडों की रचना अति सुन्दर रीति में अङ्कित हैं। इन द्वीपों एवं खंडों के अन्तर्गत जितने देश पड़ते हैं, उनमें पाई जाने वाली छोटी से छोटी चीजों तक के चित्र बने हैं ॥ ७ ॥

सातो समुद्र, सभी पर्वत, पुनः इनमें जितनी वस्तुयें हैं, सबों के चित्र बने हैं। ग्रामों में निवास करने वाले स्त्री, पुरुष, फल, फूल, पशु पक्षी और भी सभी वस्तुयें चित्रांकित हैं ॥ ८ ॥

सप्त उर्ध्व पुनि सप्त अध, तिनकी नकल अशेष।
लिखी यथारथ सकल विधि, निज स्वरूप सो पेष ॥ ९ ॥

फिरत विमान अकाश में, सो सब अमित प्रकार।
गन्धर्वादिक जाति सब, देवन को विस्तार ॥ १० ॥

नाग नारि अरु नाग पुनि, देव नारि अरु देव।
तिनकी रस क्रीड़ा सकल, ताकी नकल सभेव ॥११॥

शब्दार्थः--सप्त ऊर्ध्व लोक = सात लोक पृथ्वी से ऊपर वाले ये हैं--महर्लोक, जनलोक, तपलोक सत्यलोक, कुमार-लोक, उमालोक और शिवलोक। अधोलोक = सात लोक पृथ्वी के नीचे वाले ये हैं:--अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल। अशेष = समस्त। पेष = देखिये। रसक्रीड़ा = कोकरीति अनुकूल केलि। सभेव = विविध आसन भेद वाली।

भावार्थः—भूमंडल से ऊपर वाले सातों लोकों, नीचे वाले सातों लोकों के समस्त चित्र बने हैं। कोई वस्तु छुटी नहीं है। सब प्रकार की चीजें हूबहू जैसी की तैसी चित्र में अंकित हैं। इन वस्तुओं को अपने आचार्य प्रदत्त महली स्वस्वरूप में स्थित होकर देखना चाहिये ॥ ६ ॥

कहने का तात्पर्य यह है कि ये सभी चीजें त्रिपाद विभूति अन्तर्गत अविनाशी लोकों की है। यद्यपि ब्रह्मा रचित नश्वर सृष्टि में भी ये वस्तुयें पायी जाती हैं, परन्तु यहाँ वर्णन दिव्यदेश का होने के कारण दिव्य लोकों से अभिप्राय है। प्रमाण श्री अमर रामायणे चतुर्थ सर्गे श्लो० २८, २९।

"द्वयो धाम्नो रंगभूता लोकाः पाताल स्वर्गकाः।
सर्वे दिव्या लोकभिन्ना न च प्राकृत वैभवाः॥

परन्तु सदृशालोके रुक्ता माधुर्य्य मण्डले ।
एवं ब्रह्मांडकं दिव्यं नित्यमेव सनातनम् ॥

अर्थात् त्रिपाद विभूति अन्तर्गत सात पाताल एवं सात स्वर्ग लोक श्रीअवध मिथिला युगल धाम के अंग से उत्पन्न हैं। सब दिव्य हैं, ब्रह्म सृष्टि से भिन्न हैं। इनके वैभव माया रचित नहीं हैं, परन्तु माधुर्य लीलामय दिव्यदेश में प्रकृति लोक की भांति ही कहे गये हैं। इसी प्रकार वहां भी नित्य अनादि दिव्य ब्रह्मांड हैं। इति प्रमाण में आये हुये दोनों श्लोक के अर्थ।

पुनः श्रीकनक भवन की चित्रसारी में आकाश में अनन्त भांति के विमान उड़ रहे हैं। उन विमानों पर बैठे हुये देव जाति के उपभेद अनुसार गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, गुह्यक, सिद्ध आदि के चित्र बने हैं ॥ १० ॥

नाग एवं नाग पत्नी, देवता एवं देवांगना के चित्र जो बने हैं, उन चित्रों में समस्त कोक कला युक्त रसमयी क्रीड़ायें अंकित हैं ॥ ११ ॥

कहूँ नकल योगीन की, कहुँ भोगिन के भेव।
लिखे सकल विस्तार युत, कहुँ मुनि गन बन सेव ॥१२॥

शब्दार्थः— भोगिन के भेव=सुगन्ध, वनिता, सुखस्पर्श वसन, संगीत पान, षटरस भोजन, सवारियों पर सैर करना, सुखद शैय्या—ये आठ भेद भोग के हैं।

भावार्थः—कहीं अष्टांग योग साधते हुये योगियों के चित्र बने हैं। कहीं अष्ट प्रकार के भोग करने वाले भोगियों के चित्र हैं। कहीं मुनिगण बन में निवास करते हुये तपश्चर्य्या में निरत हैं। ये सब विस्तार पूर्वक चित्रांकित हैं॥ १२॥

चौरासी आसन सहित, नकल करत बहु रूप।
कहूँ नवारे खेल में, चित्र सुबने अनूप ॥ १३ ॥
लिखे सकल चित्राम में, लड़िकन के बहु खेल।
कहुँ कूदत जल में सकल, करि करि हेला हेल ॥ १४ ॥
कहूँ उड़ावत धूर बहु, करत सुपेला पेल।
कहूँ गिरत यकबार सब, करि करि ठेला ठेल ॥ १५ ॥

शब्दार्थः– नवारे (ड़े)=नावों को बीच धारा में ले जाकर चक्कर देने की क्रिया। हेलाहेल=खेलवाड़ पूर्वक तैरना। पेलापेल=एक दूसरे को ढकेलना। ठेलाठेल= धक्कमधक्का।

भावार्थः--कहीं बहुरुपिया लोग चौरासी प्रकार के आसन लगाकर विदूषक का स्वांग सज रहे हैं। कहीं नावों पर जलक्रीड़ा हो रही है। इन सबों के अनुपम चित्र बने हैं॥ १३॥

चित्रों में बालकों के बहुत प्रकार के खेल प्रदर्शित हैं। कहीं बालगण खेल पूर्वक जल में कूद रहे हैं। पुनः उसीमें तैर भी रहे हैं॥ १४॥

कहीं धूल उड़ा रहे हैं। आपस में एक दूसरे को ढकेल रहे हैं। कहीं परस्पर में धक्कमधक्का करते हुये एकही समय सबके सब पृथ्वी पर गिर जाते हैं ॥ १५ ॥

सो सब लिखे विचित्र रंग, अंग उपांग सँवारि।
भुक्ति मुक्ति अपवर्ग सब, बिधि विष्णू श्रुति चारि॥१६॥

शब्दार्थ:--उपांग=अंगों के छोटे भेद। भुक्ति=आठ प्रकार के भोग। मुक्ति=सगुणोपासकों की चतुर्विध मुक्ति। अपवर्ग=निर्गुण मत बादियों का कैवल्य मोक्ष।

भावार्थ:--आठ प्रकार के भोग, मुक्ति, मोक्ष, ब्रह्मा, विष्णु, चारो वेद आदिकों के भेदों अभेदों का सम्हाल करते हुये आश्चर्य ढंग से चित्र बने हैं॥ १६॥

कहुँ लिखि नकल नृपाल की, नौ रँग मनी सँवारि।
कहूँ सभा को नकल लिखि, कहूँ नकल असवारि॥१७॥
कहुँ अहेर की नकल बनि, कहुँ वनिता बहु केलि।
कहूँ करावत नृत्य पुनि, कहूँ लड़ाई पेलि॥ १८॥

शब्दार्थ:--नकल=चित्र। अहेर=शिकार। पेलि=लड़ना है।

भावार्थ:--नौ प्रकार की मणियों से सम्हाल कर भूषण वसन से अलंकृत राजाओं के चित्र बने हैं। कहीं तो राजा सभा में विराजमान हैं, कहीं हाथी, घोड़े, रथ आदिक

बाहन पर सवार होकर विचर रहा है। ये सब चित्र में अंकित हैं ॥ १७ ॥

कहीं तो राजा शिकार खेल रहा है, कहीं नायिकाओं से अनेक भांति के रति विहार कर रहा है। कहीं नृत्य गान कराकर संगीतानन्द में आसक्त हैं, कहीं युद्ध कर रहा है। सबके चित्र बने हैं ॥ १८ ॥

लिखी नकल सब ग्रहन की, यथा रूप तेहि वर्ण।
यथा असन अरु वसन पुनि, यथा नासिका कर्ण ॥१९॥

भावार्थः--श्री कनक भवन की दीवारों पर नवो ग्रहों के चित्र बने हैं। जिस ग्रह का जैसा स्वरूप है, जो रंग है, जैसा भोजन है, जैसा वस्त्र पहनता है, जैसे उसके कान-नाक हैं--सब चित्रों में दर्शाये गये हैं।

अगली तालिका में ऊपर लिखित ब्यौरा देखिये।



ग्रहों के नाम	ग्रहों के रूप	रंग	असन	वसन
१-सूर्य	चौकोर शरीर, भूरे नयन, स्वल्प केश।	रक्तश्याम	कटु	मोटा
२-चन्द्रमा	गोल शरीर, छोटी बाँह, कोमल भाषी, शुभदृष्टि	श्वेत	लवण	नया
३-मङ्गल	युवावस्थापन्न, पतली कमर, क्रूरदृष्टि, चंचल	रक्तगौर	कड़वा	जला हुआ
४-बुध	द्वि अर्थक वाणी, हास्य रुचि वाला	हरा	मिश्रित	जल से भींगा
५-गुरु	बृहद शरीर, भूरे रंग के केश और नयन, वाला	पीला	मीठा	कमजोर वस्त्र
६-शुक्र	सुन्दर शरीर, सुलोचन, घुघुराले केश वाला	चित्र	खट्टा	मजबूत
७-शनि	लम्बा पतला, बादामी-रंग नयन, मोटे दाँत, कड़े केश	काला	कषाय	फटा
८-राहु	शनिवत रूप	काला	तामस	काला
९-केतु	मयूर समान अनेक रूप	काला	तामस	काला

नोट:--ग्रह देव वर्ग के हैं। अत: इनके कान नाक देवतुल्य होते हैं।

लिखी नकल नक्षत्र की, यथा वरन आकार।
पुनि द्वादश संक्रान्ति तिहि, वाहन वसन अहार ॥२०॥

भावार्थः-सत्ताइश नक्षत्रों के रंग और आकार के सहित चित्र बने हैं। फिर बारह संक्रान्ति के चित्र बने हैं उनकी सवारी, वस्त्र और भोजन भी चित्र में दिखलाये गये हैं।

नाम नक्षत्र	रंग	आकार
१--अश्विनी	सफेद	घोड़ा
२--भरणी	काला	भग
३--कृतिका	लाल	छुरी
४--रोहिणी	लाल	गाड़ी
५--आर्द्रा	सफेद	मणि
६--पुनर्वसु	सफेद	मकान
७--पुष्प	पीला	बाण
८--आश्लेषा	काला	चक्र
९--मघा	काला	घर
१०-पूर्वा फाल्गुनी	सफेद	मचान
११-उत्तरा फाल्गुनी	काला	शय्या
१२-हस्त	लाल	हाथ
१३-चित्रा	सफेद	मोती
१४ स्वाती	धूम्र	मूंगा
१५-विशाखा	सफेद लाल	तोरण
१६-अनुराधा	सफेद	भात
१७-ज्येष्ठा	सफेद	कुंडल
१८-मूल	काला	सिंह पूंछ
१९-पूर्वाषाढ़	सफेद	हाथी दाँत
२०-उत्तराषाढ़	सफेद	मच्चान
२१-अभिजित	लाल	त्रिकोण
२२-श्रवणा	आसमानी	वामन

नाम नक्षत्र	रंग	आकार
२३-धनिष्ठा	सफेद	मृदंग
२४-शतभिषा	सफेद	वृत्ताकार
२५-पूर्वा भाद्रपदा	धूम्र	मच्चान
२६-उत्तरा भाद्रपदा	काला	यमला
२७-पूषा	लाल	मृदङ्ग

❀ बारह संक्रान्तियों की तालिका ❀

नाम संक्रान्ति	वाहन	वसन	आहार
१--मेष	वाघ	पीले रंग का	खीर तस्मई
२--वृष	हाथी	महावर रंग वाला वस्त्र	दूध
३--मिथुन	सूअर	नीले रंग का	नमक
४--कर्क	घोड़ा	कज्जल रंग का	खिचड़ी
५--सिंह	गदहा	लाल	पक्कान्न
६--कन्या	भैंसा	श्याम	दही
७--तुला	सिंह	सफेद	अन्न
८--वृश्चिक	सिंह	सफेद	अन्न
६--धन	सिंह	सफेद	अन्न
१०-मकर	सिंह	सफेद	अन्न
११-कुम्भ	सिंह	सफेद	अन्न
१२-मीन	वाघ	पीला	दूध

पुनि दश पंच तिथीन के, स्वामिन सहित स्वरूप।
लिखे विचित्र बनाय के, नव मनि कोरि अनूप ॥ २१ ॥

पुनः नौ रंग की मखियों को खरोंच कर सम्हाल पूर्वक अनुपम ढंग से पन्द्रह तिथियों के चित्र उनके स्वामी स्वरूपों के सहित बनाये गये हैं।

नाम तिथि	नाम तिथि के स्वामी
१- परिवा	अग्नि
२- द्वितीया	ब्रह्मा
३- तृतीया	पार्वती
४- चौथ	गणेश
५- पञ्चमी	सर्प
६- षष्टी	कार्तिकेय
७- सप्तमी	सूर्य्य
८- अष्टमी	महादेव
९- नवमी	दुर्गा
१०- दशमी	यमराज
११- एकादशी	विश्वेदेव
१२- द्वादशी	विष्णु
१३- त्रयोदशी	कामदेव
१४- चतुर्दशी	श्रीशिव
१५- पूर्णिमा	चन्द्रमा
१६- अमावस्या	पितरगण

बनी लड़ाई गजन की, कहुँ घोड़न मनि कोर।
कहुँ मेढ़न कहुँ रिछकी, लेत मुनिन चितचोर ॥ २२॥

भावार्थः— विविध रंग की मणियों को पच कर कहीं हाथियों के, कहीं घोड़ों के, कहीं भेड़ों के और कहीं भालुओं के पारस्परिक युद्ध के चित्राम ऐसे सुन्दर ढंग से बने हैं, जो सब प्रकार से वीतराग मुनियों के लिये भी मन-हरण हो रहे हैं।

कहूँ अखाड़े मल्ल के, ताके सब अनुभाव।
कहूँ खम्भ ठोकत कहूँ, गिरै कुदाव सुदाव ॥ २३ ॥
कहुँ गज पद जंजीर गहि, खैंचत अपनी ओर।
कहुँ लोहन के खंभ गहि, कर ते डारत तोर ॥ २४ ॥
कोउ बल करि दृढ़ कर गहत, कोउ बल करै छुड़ाव।
कोउ रोपत पद भूमि में, कोउ उठाव करि दाव ॥ २५ ॥
कोउ सिर सों सिर लरत है, कोउ पीठन के दाव।
कोउ लातन सों लात पुनि, कोउ मुकन के घाव ॥ २६ ॥

भावार्थः—चित्रों में कहीं पहलवानों के अखाड़े बने हैं। वहां उनकी सारी चेष्टाएँ भी अंकित हैं। कहीं तो वे ताल ठोंकते हुये, कहीं अनुकूल या प्रतिकूल दावँ से गिरे हुये चित्रित हैं ॥ २३ ॥

कहीं हाथी के पाँव में बन्धे जंजीर को पकड़ कर कोई पहलवान उसे बल पूर्वक अपनी ओर खींचते हुये तो कहीं लोहे के खंभे को कोई पहलवान हाथ से पकड़ कर तोड़ते हुये चित्रित हैं ॥ २४ ॥

कोई बल पूर्वक दूसरे पहलवान का हाथ पकड़ लेता है, तो दूसरा उसे बल पूर्वक छुड़ा लेता है। कोई पृथ्वी पर अपना पैर बल पूर्वक जमाता है, तो दूसरा बाजी लगाकर उसे उठा देता है ॥ २५ ॥

कोई शिर से शिर, कोई पीठ से पीठ, कोई लात से लात, टकराकर लड़ते हैं, तो कोई मुक्का प्रहार पूर्वक लड़ रहे हैं। ये सब श्री कनक भवन की दीवारों पर चित्राङ्कित हैं ॥ २६ ॥

कहूँ रचित नट ख्याल पुनि, तिन की कला अशेष।
कहुँ वाजीगर ख्याल पुनि, कौतुक करत विशेष ॥ २७ ॥
यहि विधि चित्र अनेक कोउ, वरनत लहै न पार।
अब कौतुक शाला निरखु, रचना सब कलधार ॥ २८ ॥

शब्दार्थ:-ख्याल=खेल। कला=कौतुक। बाजीगर=जादूगर।

भावार्थ: -कहीं नटों के खेल तमाशे चित्रित हैं। वहां उनके सभी कौतुक चित्रित हैं। कहीं जादूगर का तमाशा चित्रित हैं। वह अधिक आश्चर्यजनक खेल दिखा रहा है ॥ २७ ॥

इस प्रकार वहां अनन्त चित्र बने हैं। वर्णन करने वाला पार न पावेगा। अब श्रीग्रन्थकर्त्ता जू श्रीकनक भवन की भावना करने वालों को वहाँ की कौतुकशाला की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुये कहतेहैं कि उसे ध्यान दृष्टि से अवलोकन करें। कोई ऐश्वर्य की करामात वहां न जानियेगा। सारी रचनाएँ वहां की कलवाली बनी हैं, जिससे माधुर्य लीला में नीरसता न आने पावे ॥

❀ श्रीकनक भवन की कौतुक शाला ❀

खंड अनेकन बने तहँ, नौ रँग मनिन सँवारि ।
तहँ कौतुक सब देखिये, कर में कल को धारि ॥ २६ ॥
कोउ खंड में जाय कै, कल फेरिये सुदाव ।
निकसे कृत्रिम नायिका, नृत्य करै बहु भाव ॥ ३० ॥
अपर खंड में जाय कै, धरिये कलहिं सुहाथ ।
निकसै कृत्रिम पुरुष बहु, भेंट नवावहिं माथ ॥ ३१ ॥
पुनः अपर में जाय कै, दीजै कलहि चलाय ।
निकसै कृत्रिम मल्ल बहु, एकहि एक हटाय ॥ ३२ ॥

भावार्थः--श्री कनक भवन की उस कौतुकशाला में नौ रंग की मणियों को सम्हाल कर अनेक खंड खंडान्तर बनाये गये हैं, जहां जाकर हाथ में कलों को पकड़ कर घुमाने से बहुत प्रकार के कौतुकमय दृश्य प्रगट होते हैं और देखने में आते हैं ॥ २६ ॥

किसी खंड में जाकर युक्तिपूर्वक कल घुमाने पर बनावटी नायिकाएं निकल पड़ती हैं, जो नाना प्रकार के भावों को दिखाकर नाचने लगती हैं ॥ ३० ॥

दूसरे खंड में जाकर हाथ से कल चलाने पर बहुत से बनावटी पुरुष निकल पड़ेंगे जो आपके सामने चढ़ौना रखकर प्रणाम करेंगे ॥ ३१ ॥

फिर दूसरे खंड में जाकर कल चलाइयेगा तो बहुत

से बनावटी पहलवान निकलेंगे। वे सब एक दूसरे से भिड़ेंगे और हटा देंगे ॥ ३२ ॥

अपर कक्ष में जाय कै, लीजै कल कर धारि।
निकसै कृत्रिम हय निकर, भिन्न तासु असवारि ॥३३॥
पुनि दूसर कल फेरि कै, देखिय कौतुक चार।
कूदि फलांगे मारि कै, चढ़ि बैठे असवार ॥ ३४ ॥
अपर खंड में जाय कै, कर धारै कल धारि।
श्वान शिकारी अमित्त रँग, निकसै धारिक धारि ॥३५॥
गहि डोरी कृत्रिम पुरुष, खैंचत हूँ नहिं मान।
पुनः अपर कल फेरिये, सब सन्दूक समान ॥ ३६ ॥

भावार्थः--दूसरे खंड में जाकर हाथ से कल पकड़ कर घुमाइये, तो बनावटी घोड़ों के झुण्ड निकल पड़ेंगे। इनके सवार लोग अलग से निकलेंगे ॥ ३३ ॥

फिर दूसरा कल चलाकर आश्चर्यमय चरित्र देखिये। सवार उछलकर छलाँग भरेंगे और अपने-अपने घोड़े पर चढ़ बैठेंगे ॥ ३४ ॥

दूसरे खंड में जाकर हाथसे कल पकड़कर चलाइयेगा तो अनेक रंग के झुण्ड के झुण्ड शिकारी कुत्ते निकलेंगे ॥ ३५ ॥

ये बनावटी पुरुष कल के सहारे अपनी जगह पर ऐसे दृढ़ बने रहते हैं कि डोरी पकड़ कर खींचने पर

भी टस से मस नहीं होने को। हाँ, फिर कल घुमाइये तो सबके सब सन्दूक में प्रवेश कर जायेंगे ॥ ३६ ॥

अपर खंड में जाय कै, देखिये कौतुक चार।
शस्त्र कसे करि घोर रव, निकसे बीर अपार ॥ ३७ ॥
पुनि दूसर कल फेरिये, करैं लड़ाई पेलि।
पुनि तीसर कल फेरिये, सो सन्दूकहिं मेलि ॥ ३८ ॥
अपर खंड में जाय कै, दीजै कल को मोरि।
निकसैं नर नारी अमित, खेलत पिचकन होरि ॥ ३९ ॥
अपर खंड कल फेरिये, देखिय कौतुक ख्याल।
अहि तुंडक निकसै अमित, खेलावत धरि व्याल ॥४०॥

शब्दार्थः--घोर रव=भयानक गर्जन। पेलना=बल प्रयोग करना। अहि तुंडक=गरुड़। ब्याल=सर्प।

भावार्थः—दूसरे खंड में जाकर आश्चर्य चरित देखिये। लड़ाई के हथियार कसे हुये अनंत योद्धा भयानक गर्जन करते निकलेंगे ॥ ३७ ॥

फिर दूसरा कल चलाइयेगा तो वे सब बल प्रयोग पूर्वक युद्ध करने लगेंगे। पुनः तीसरा कल फेरने पर सब सन्दूक में समा जायेंगे ॥ ३८ ॥

दूसरे खंड में जाकर कल को चलाइये तो असंख्य स्त्री पुरुष निकलकर रंग पिचकारी से होली खेलने लगेंगे ॥ ३९ ॥

दूसरे खंड के कल घुमाकर आश्चर्य मय तमाशे देखिये। अनन्त गरुड़ निकलेंगे, वे सर्पों को पकड़कर खेलाने लगेंगे ॥ ४० ॥

अपर खंड कर धारि कल, देखिय चित्र अनूप।
कृत्रिम नर नारी अमित, निकसत पैठत कूप ॥ ४१ ॥
अपर खंड में जाय कै, देखिय कौतुक रंग।
लड़िके वहुतक निकसि कै, करहिं उड़ावत चंग ॥ ४२ ॥
अपर खंड में जाय कै, कर गहि कलहिं चलाय।
भरे सभा महिपाल की, क्रम हीं ते सब आय ॥ ४३ ॥
पुनि तिहि दूसरि फेरिये, कंचन नृत्य कराय।
बाजे बहुतक बाजहीं, नूपुर शब्द सुनाय ॥ ४४ ॥

शब्दार्थः--चंग = पतंग, गुड्डी। महिपाल = राजा। कंचन = वेश्या।

भावार्थः--दूसरे खंड में कल को हाथ से घुमाइये तो अनुपम आश्चर्य दृश्य देखियेगा। असंख्य बनावटी स्त्री, पुरुष कुएं के अन्दर घुस जाते हैं, फिर निकल आते हैं ॥४१॥

दूसरे खंड में जाकर आश्चर्य तमाशे देखिये। बहुत से बच्चे निकल कर हाथ से पतंग उड़ाते हुये देखियेगा ॥ ४२ ॥

दूसरे खंड में जाकर हाथ से पकड़ कर कल चलाइये, तो देखियेगा कि बेरावारी सब कर्मचारी आ जुटेंगे और राजा की सभा भर जायगी ॥ ४३ ॥

फिर उसी खंड का दूसरा कल घुमाइए तो वेश्या आकर नाचने लगेगी। बहुत बाजे बजने लगेंगे। नूपुर के छुमछुम शब्द सुन पड़ेंगे ॥ ४४ ॥

पुनि ऊपर में जाय कै, देखिय कौतुक लास।
कर गहि कल को फेरिये, आवृत होय अकास ॥ ४५ ॥
पुनि दूसर कल फेरिये, उदय होय शशि तार।
यहि विधि कौतुक अमित कोउ, वरनि न पावै पार ॥४६॥

शब्दार्थः--लास=नृत्य। आवृत=ढकना। तार=तारागण।
भावार्थः--फिर ऊपर वाले खंड में जाकर नृत्य कौतुक देखिए। हाथ से पकड़ कर कल घुमाइये तो आकाश ऐसा ढक जायगा मानो अन्धेरी रात हो गई हो ॥ ४५ ॥

फिर दूसरा कल घुमाइयेगा तो चन्द्रमा तथा तारागण उदय होंगे। इस प्रकार श्री कनक भवन के कल वाले अनन्त प्रकार के तमाशे कौतुकशाला में बने हैं। कोई वर्णन कर पार नहीं पाने को ॥ ४६ ॥

इति श्रीजनकराज किशोरीशरण विरचितायां श्रीसीताराम
सिद्धान्तानन्य रस तरंगिण्यां चित्र कौतुकागार
वर्णनो नाम तृतीय स्तरङ्गः।



❀ चतुर्थ तरङ्ग ❀

* ललित मयूरावरण नामक प्रथमावरण *

(इस आवरण में विविध वाहन शालाएँ हैं)



प्रथमावरन सात तेहि, भिन्न भिन्न मनि वरन।
संज्ञा भिन्न सुजानियें, यथा चिह्न अनुहरन ॥ १ ॥
प्रथम श्वेत फाटिक मनी, तरुन तरनि इव कान्ति।
अति विशाल अति उच्च पर, लसत कँगूरन पाँति ॥ २ ॥
वरनौं यथा कँगूर विधि, सो विशुद्ध मन हेरु।
तेहि विधि सातों पर निरखु, भिन्न सुवरन पखेरु ॥ ३ ॥
चतुर दिशा लोकित चतुर, बिस्तृत फनि आकार।
ता मधि विद्रुम मनि कलित, रंभा कुसुम सुढार ॥ ४ ॥
ता पर मधुर मयूर छवि, शोभित नृत्य सुभाव।
मुख लच्छा मोतीन को, चहुँ फन में सोइ भाव ॥ ५ ॥

शब्दार्थः--वरन (वर्ण)=रंग। संज्ञा=नाम। अनुहरन=मुताबिक। फाटिक मनी=स्फटिक मणि। तरुन तरनि=दोपहर के सूर्य। कान्ति=प्रकाश। हेरु=देखो। पखेरु=पक्षी। लोकित=दीख पड़ते हैं। विद्रुम=मूंगा। रंभा कुसुम=केले का फूल। सुढार=सुडौल। फनि=सर्प का फन।

प्रसंगः--तीसरी तरंग तक मध्यवर्त्ती शयन कुञ्ज का वर्णन कर, अब यहां से श्रीकनक भवन के युगल सप्तावरणों का वर्णन करते हैं। दूसरे सप्तावरण का वर्णन ग्यारहवीं तरंग से प्रारम्भ करेंगे। यहां पहले सप्तावरण का वर्णन हो रहा है।

भावार्थः--प्रथम सप्तावरण में प्रत्येक आवरण की दीवाल अलग-अलग रंग वाली मणि की बनी है। सातों आवरण के नाम भी अलग-अलग हैं। आवरण के ऊपर स्थित कंगूरों पर जैसे चिह्न हैं, उन्हीं के मुताबिक उस आवरण का नाम भी है॥ १॥

प्रथमावरण स्फटिक मणि का बना है। मध्याह्न-कालीन प्रचंड सूर्य के समान उससे प्रकाश छिटक रहा है। बहुत लम्बे चौड़े और ऊंचे परकोटे पर कंगूरों की पंक्ति सुशोभित हो रही है॥ २॥

अब जिस प्रकार से कंगूरों की रचना है, उसका वर्णन करते हैं। इसको शुद्ध हृदय करके ध्यान दृष्टि द्वारा देखिए। इसी प्रकार सातों परकोटों के भिन्न-भिन्न रंग एवं अलग अलग पच्चियों को देखिये ॥ ३॥

प्रत्येक कंगूरे का निचला भाग चार फण वाला है। चारों फणों के रुख चारों दिशाओं की ओर फिरे हैं। उन चारों फणों पर एक-एक मूंगे द्वारा रचित कृत्रिम केले का सुडौल फूल है॥ ४॥

प्रत्येक फूल पर नृत्य भाव से पंख फैलाये हुए कृत्रिम मधुर मनोहर मयूर बैठा है। उसके मुख में मोतियों का गुच्छा है। चारों फणों पर ऐसे ही मयूर स्थित हैं॥५॥

सम विशालता उच्चता, सातों की उर आनु।
चामीकर अवनी सुसम, अन्तराल षट जानु॥ ६॥
* चौक चारिहूँ दिशन में, छै चौके चौबीस।
ताकी छवि वरनत बहुत, हारे गिरा फनीस॥ ७॥
चौक चौक प्रति वेद मिति, नब्बे अरु छै द्वार।
ताको छवि वरनौं कहा, सुषमा लसत अपार॥ ८॥

शब्दार्थः - चामीकर = सुवर्ण। अवनी = भूमि। अन्तराल = दो आवरण परकोटों की मध्य वाली भूमि। चौक = सहन, घिरावे के भीतर वाली जगह। गिरा = सरस्वती। फनीश = शेषजी। वेद = चार। मिति = संख्या।

भावार्थः - सातों आवरण वाले कोट महलों के विस्तार तथा ऊँचाई बराबर हैं, ऐसा ध्यान हृदय में लाइये। सातों आवरणों के अभ्यन्तर वाली भूमि छः हैं, जो भूमि एक ही प्रकार से स्वर्णमयी है, ऐसा जानिये॥ ६॥

---

* प्रस्तुत ललित मयूरावरण में पूरव सिंह चौक, दक्षिण शार्दूल चौक, पश्चिम मृगभान चौक और उत्तर गजराज चौक हैं। इन चारों चौकों में देश देशान्तरों की राजकन्यायें निवास करती हैं। (देखिये अनन्यरस तरंगिणी वार्त्तिक)।

अन्तराल के मध्य प्रत्येक आवरण में चारों दिशाओं में चार-चार चौक हैं। इस हिसाब से छः अन्तरालों में चौकों की संख्या (६×४=२४) चौबीस हुई। उनकी अपार शोभा वर्णन करते-करते श्रीशेष सरस्वती जैसे वक्ता भी हार गये ॥ ७ ॥

प्रत्येक चौक में चार संख्यक द्वार हैं। चौबीसों चौकों के द्वार इस हिसाब से छयानबे (९६) हुये। उन द्वारों की शोभा का कहाँ तक वर्णन करें, इसकी परमा शोभा का परावार नहीं ॥ ८ ॥ यहां तक सात आवरणों के अन्तराल, चौक तथा द्वारों का वर्णन एक साथ हुआ।

नौ खंडे नभ लौ छुवत, चोक चतुर प्रासाद।
ताकी छवि उर धारिये, त्यागि सबै इमि स्वाद ॥ ६ ॥
नौ खंडे नौ रंग के, अति विचित्र मनि गोक।
तासु सुछवि छलकत अधिक, लखि लज्जित श्रीलोक ॥१०
ललित झरोखे जाल बहु, छज्जे झालरि सोह।
तोरन कलस बिचित्र अति, ध्वज पताक मन मोह ॥११॥
परदा परे विचित्र रँग, कहुँ मनि मुक्ता जाल।
तहँ निवसत अलिगन अमित, समय समय सियलाल ॥१२

शब्दार्थः चतुर=चारों तरफ वाले। प्रासाद=महल। इमि=ऐसे ही। स्वाद=चाह। गोक=झरोखा। श्रीलोक=रमावैकुंठ। तोरन=वन्दनवार।

भावार्थः--प्रत्येक चौक के चारों तरफ वाले नौ खंडे महल इतने ऊँचे हैं, मानो आकाश को छू रहे हों। अन्य सभी वस्तुओं की चाह को छोड़कर भावुक उसी की शोभा हृदय में धारण करें ॥ ९ ॥

नवों खंडों में एक-एक खंड एक-एक रंग की मणि के निर्मित हैं। मणिमय झरोखे आश्चर्य शोभा वाले हैं। इनकी छबि इतनी अधिक उमड़ रही है, जिसे देखकर रमाबैकुण्ठ भी लज्जित हो रहा है ॥ १० ॥

इन महलों में असंख्य रमणीय जाल झरोखे बने हैं। छज्जों में झालरें सोह रही हैं। वन्दनवार, अति-विचित्र कलश एवं ध्वजा-पताकाएँ मन को मोहने वाली हैं ॥ ११ ॥

उन महलों के द्वारों पर चित्र विचित्र रंग वाले परदे पड़े हैं। उनके छोर में कहीं मणि की, कहीं मोती की जाली लगी है। इन महलों में देश देशान्तरों की राजकन्यायें, जो श्रीमिथिलेश राजकिशोरी जू के अलि-पद पर प्रतिष्ठित हैं, निवास करती हैं। समय-समय पर विहारार्थ श्रीसिय जू लाल जू के सहित पधारती हैं ॥ १२ ॥

बिछे बिछौना मखमली, विविध रंग सकलाद।
ताकी बनक प्रकार बहु, निरखि रमासन बाद ॥ १३ ॥
कहुँ सिंहासन मनि रचित, कहुँ मसलन्द विचित्र।
कहुँ पर्यंक सुहावने, सुखप्रद योषित मित्र ॥ १४ ॥

शब्दार्थः--सकलाद = दुलाई । वनक = बनावट, सजधज । रमासन (रमा + आसन) = धन की अधिष्ठात्री लक्ष्मी जी की सम्पत्तिशाली बैठक । वाद = वृथा, तुच्छ । योषित = नायिका । मित्र = पति ।

भावार्थः--उन महलों में मखमल के मुलायम बिछौने बिछे हैं। नाना रंग की दुलाइयां रखी हैं। इनकी बनावटें असंख्य प्रकार की हैं। इस भोगैश्वर्य को देखकर लक्ष्मीजी का समृद्धिशाली आसन भी अपने को तुच्छ मानता है ॥१३

कहीं मणि निर्मित सिंहासन सजे हैं, कहीं चित्र विचित्र मसलन्द रखे हैं, कहीं सुहावने पलंग बिछे हैं, जो नायिका रमण प्रीतम जू के लिये अति सुखदायक है ॥ १४ ॥

तनी चान्दनी बादले, कहुँ कमखाव सुरंग ।
कहुँ अतलस बहु रंग को, कहुँ इक कहुँ दुइ रंग ॥१५॥
लच्छे लटकत पाट के, कलित सुकंचन तार ।
मनि मानिक मुक्तान के, फुन्दे सघन अपार ॥ १६ ॥

शब्दार्थः--बादला = सोने या चान्दी के तार के साथ बुना वस्त्र। कमखाव = सोने के तार से कलावत्तू किया हुआ रेशमी वस्त्र। अतलस = अनमोल रेशमी वस्त्र। पाट = रेशम।

भावार्थः--उन महलों की छतों में कहीं बादला, कहीं कमखाव,

कहीं अतलस की चान्दनी तनी है। कोई चान्दनी एक रंग वाली, कोई दो रंग वाली, और कोई बहुत रंग वाली हैं ॥ १५ ॥

उन चान्दनियों में सोने के तार से सुसज्जित रेशम के झब्बे तथा मणि, माणिक्य एवं मोतियों के असंख्य सघन फुदने लटक रहे हैं ॥ १६ ॥

परदे कहूँ सुरंग रँग, कहूँ नील रँग देखु।
कहूँ पीत दिनकर द्युती, कहुँ विचित्र बहु पेखु ॥१७॥
रचना तिन परदान में, कनक रूप के तार।
तिनके बूटे बेल बहु, मनि बहु रंग अपार ॥ १८ ॥
तिन परदन के प्रान्त में, कनक किंकनी जाल।
जब छोरत अलि कर गही, तब रव होत रसाल ॥ १९ ॥
सम रँग परदन पाँति बहु, सम रँग मणि बहु जाल।
जनु सोहत प्रासाद के, कंठ विविध रँग माल ॥ २० ॥

शब्दार्थः--सुरंग = लाल। दिनकर = सूर्य, यहां उदयकालीन सूर्य मंडल से तात्पर्य है। द्युति = आभा। पेखु = देखिये। कनक = सोना। रूप = चाँदी। प्रान्त = छोर। रव = ध्वनि। रसाल = मधुर। प्रासाद = महल। किंकिनी = घुंघरू। जाल = समूह।

भावार्थः--ध्यान दृष्टि से देखना चाहिये कि कहीं तो लाल रंग के, कहीं नील रंग वाले, कहीं उदयकालीन सूर्य-मंडल की आभा लिये हुये पीले रंग के, परदे पड़े हैं।

कहीं देखिये कि अनेक रंग मिश्रित चित्र विचित्र परदे लगे हैं॥ १७॥

उन परदों के वस्त्र सोने चाँदी के तार से रचित हैं। उनमें जो बेल बूटे कढ़े हैं, वे अनेक रंग वाली मणियों के हैं, सो अनन्त हैं॥ १८॥

उन परदों के छोर में सोने के घुंघरू समूह लगे हैं। जब सखी उन्हें हाथ से पकड़ कर हटाती है, तब उनसे मधुर-मधुर ध्वनि होने लगती है॥ १९॥

अनेक परदों की पंक्ति एक ही प्रकार के रंग वाली है। अनेक मणिमय जाल झरोखे भी एक ही प्रकार के रंग वाले हैं। सो वे ऐसे फब रहे हैं मानो महल के कंठ में अनेकों रंग वाली माला सोह रही हो॥ २०॥

युगल पाँति प्रश्नोत्तरी, अन्तराल प्रति सौध।
विविध रंग मनि वेदिका, विविध रचित मनि पौध॥२१॥

शब्दार्थः--प्रश्नोत्तरी = आमने सामने समान रचना वाले। सौध = महल। रचित = कृत्रिम। पौध = छोटे पेड़।

भावार्थः--चौक के बाहर अन्तराल में जो स्थल हैं, उनमें कही दो पंक्तियों वाले महल हैं। दोनों पंक्तियों में आमने-सामने वाले महल समान रचना वाले हैं। कहीं नाना रंगों वाली मणिमयी वेदिकाएं बनी हैं, तो कहीं नाना प्रकार मणिरचित कृत्रिम वृक्ष लगे हैं॥ २१॥

शोभित सुघर सुचौक में, चहुँ फेर दालान।
अति विचित्र सब खंड में, शोभित चित्र वितान ॥२२॥
बजत चौक प्रति चौघड़े, घन समान रवकार।
झाँझ सहनाई भेरि बहु, बाजन अपर अपार ॥ २३ ॥

शब्दार्थः--सुघर=सुन्दर । दालान=बारामदा। चौघड़े= नगारे। भेरि=दुंदुभि । अपर=दूसरे, अन्यान्य। अपार=असंख्य।

भावार्थः--सुन्दर रमणीक चौक में जो चारों तरफ नौखंड महल हैं, उनके बाहर चारों तरफ बरामदे सोह रहे हैं। सब खंडों वाले बरामदों में चित्रित चंदोवे टंगे हैं, जो आश्चर्य शोभा वाले हैं ॥ २२ ॥

प्रत्येक चौक के सिंह द्वार पर स्थित नौबत खाने में नगारे, दुंदुभि, झाँझ, सहनाई तथा अनान्य असंख्य बाजे बज रहे हैं। नगारे की ध्वनि बादल गर्जन के समान गंभीर है ॥ २३ ॥

अन्तराल प्रासाद सब, सत खंडे उर आनु।
ताको वरनन का करौं, जनु विचित्र रथ भानु ॥ २४ ॥

शब्दार्थः--उर आनु=हृदय में भावना करें। भानु=सूर्य।
भावार्थः--चौक के बाहर वाले स्थल में जो उपर्युक्त प्रश्नोत्तरी महल हैं, वे सब सात तल्ले वाले हैं। ऐसी भावना हृदय में करें। इन महलों का वर्णन क्या किया जाय?

प्रकाशमान मणि निर्मित होने से वे ऐसे लगते हैं मानो आश्चर्यजनक सूर्य के रथ हों।

कनक रचित मनि खचित तेहि, मध्य तड़ाग अपार।
घाट विशाल विचित्र अति, चहुँदिशि बँगले चार ॥२५॥
फूले पद्म प्रकार बहु, शोभित रंग अनेक।
पीत नील आरक्त पुनि, श्याम अरुन शुचिरेक ॥ २६ ॥
पद्माकर के मध्य में, चित्रित बँगला सोह।
ताकी सुषमा निरखि के, विधि हरिहर मन मोह ॥ २७ ॥
बोलत खग बहु मधुर सुर, भँवर मधुर सुर गुंज।
को बरने या रम्यता, मनहुँ परम सुख पुंज ॥ २८ ॥

शब्दार्थः--पद्माकर = कमल सरोवर। सुषमा = शोभा। रम्यता = सुन्दरता। आरक्त = लाल। शुचिरेक = सफेद।

भावार्थः - चौक और अन्तराल वाले महलों के बीच बीच में असंख्य सरोवर हैं। उनमें सोने के रचित एवं मणि-जटित चित्राम वाले घाट चारों तरफ बने हैं तथा प्रत्येक सरोवर के चारों तट पर चार बंगले हैं ॥२५॥

उन सरोवरों में बहुत प्रकार के कमल खिले हैं। वे अनेक रंग के सोह रहे हैं। कोई कमल पीला, कोई नीला, कोई लाल, कोई श्याम और कोई उजला है ॥२६

उन कमल सरोवरों के बीच-बीच में चित्राम वाले एक-एक बँगले सोह रहे हैं। उनकी शोभा देखकर त्रिदेवों का मन भी मुग्ध हो जाता है ॥ २७ ॥

उन सरोवरों में बहुत प्रकार के जलपक्षी मधुर-मधुर स्वर से कलरव कर रहे हैं। भ्रमर का गुञ्जार भी सुहावना है। यहां की सुन्दरता का वर्णन कौन करे ? मानो सब परमानन्द की राशि हों ॥ २८ ॥

बापी बहुत विचित्र विधि, विविध रंग मनि कुंड।
तामें कलधर गज बहुत, वारि बहावत सुंड ॥ २९ ॥

भावार्थः - अनेक प्रकार की मणियों से चित्र खचित बहुत सी बावलियाँ हैं। नाना रंग की मणियों से रचित अनेक कुंड हैं। उनमें कल वाले बहुत से कृत्रिम हाथी हैं, जो कल के सहारे अपनी सूंड द्वारा जल इधर-उधर फेंकते रहते हैं ॥ २९ ॥

घोड़े गज रथ पालकी, तिन के बहु रखवार।
भिन्न-भिन्न तिनके सदन, छेका अपर अपार ॥ ३० ॥
प्रति तुरंग पच्चीस जन, पुनि गज प्रति पच्चास।
रथ प्रति घोड़न को मिती, तथा करनि रथ खास ॥ ३१ ॥
सो सब मध्य किशोर वय, वसन लसन मनि दाम।
लसत अंग लावन्यता, लखि सिहात बहु काम ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः सदन=घर। छेका=घिरी हुई पशुशाला। अपर= दूसरे। मिती=संख्या। करनि=हाथियों के। दाम= माला। सिहात=मोहित होना।

भावार्थः--इस आवरण में बहिर्द्वार वाले (क्योंकि भीतर अन्तःपुर है) पशुशाला हैं। घोड़े, हाथी, रथ, पालकी

तथा इनके असंख्य रक्षक इसी आवरण में स्थित हैं। रक्षकों के सदन अलग-अलग बने हैं। उनके सदन के द्वार आवरण में बाहर की ओर हैं। पुनः दूसरी-दूसरी असंख्य पशुशालायें भी पृथक-पृथक बनी हैं ॥ ३० ॥

एक-एक घोड़े के रक्षा निमित्त पच्चीस-पच्चीस साईस हैं। पुनः प्रत्येक हाथी के लिये पच्चास पीलवान हैं। हयरथ के रक्षार्थ, जितने घोड़े वाले रथ हैं, उनके पच्चीस गुणा व्यक्ति समझिये। वही हिसाब खास गज-रथ का भी है ॥ ३१ ॥

वे सभी रखवारगण मध्य किशोरावस्था सम्पन्न हैं। सभी वस्त्राभूषण एवं मणिमाला से समलंकृत हैं। इनके अङ्ग-अङ्ग में इतनी लुनाई भरी है, जिसको अवलोकन कर अनन्त कामदेव मोहित हो रहे हैं ॥ ३२ ॥

यहि विधि प्रथमावरण कीं, कहि कछु रचना लेश।
तेहि विधि सप्तावरण की, रचना लखव सुदेश ॥ ३३ ॥
नाम सु यहि आवरण को, ललित मयूरावरन।
तथा अपर को जानिये, यथा सुखग अनुहरन ॥ ३४ ॥

शब्दार्थः--लेश = थोड़ा सा। सुदेश = सुन्दर।

भावार्थः-इस प्रकार प्रथमावरण की रचना का थोड़ा सा वर्णन हुआ। इसी प्रकार सातों आवरण की सुन्दर रचना की भावना करियेगा ॥ ३३ ॥

इस आवरण का नाम है ललित-मयूरावरण। इसी प्रकार अन्य आवरणों के नाम कंगूरों पर स्थित पक्षियों के अनुसार जानियेगा ॥ ३४ ॥

इति श्रीमज्जनक राजकिशोरीशरण विरचितायां श्रीसीताराम सिद्धान्तानन्य रस तरंगिण्यां प्रथमावरण वर्णनो नाम चतुर्थ स्तरङ्गः ।

❀ पञ्चम तरङ्ग ❀

❀ राजहंसावरण नामक द्वितीयावरण ❀

(सुमन चौकों में सुमन शृङ्गार)



द्वितीय नीलावरण पर, लसत कंगूरे लाल।
तापर अद्भुत राजहीं, राजहंस की माल ॥ १ ॥
पुनि दूसर अवकास में, उभय पाँति प्रासाद।
तहँ निवसहिं सिय सहचरी, जेहि लखि रति बहुवाद ॥२॥

शब्दार्थः--माल = पंक्ति। अवकास = खाली जगह। वाद = वृथा, तुच्छ।

भावार्थः--दूसरे आवरण के परकोटे नीलमणि रचित हैं। इन पर लाल रंग के कंगूरे सोह रहे हैं। इन कंगूरों पर राजहंस की पंक्ति सुशोभित हो रही है। अतः इसका नाम राजहंसावरण पड़ा ॥ १ ॥

पुनः इस द्वितीयावरण में चार प्रधान चौक एवं फूल उपचौकों से बची हुई जगह (अवकास) में महलों की प्रश्नोत्तरी दो पंक्तियाँ हैं। इन महलों में श्रीसिया स्वामिनी जू की सहचरियाँ निवास करती हैं, जिन सहचारियों की सुन्दरता देखकर काम पत्नी रति भी अपने को तुच्छ मानती हैं ॥ २ ॥

वार्त्तिक अनन्य रस तरङ्गिणी के अनुसार इस आवरण में पूर्व ओर मुदुचौक है, जिसमें नागकन्यायें दक्षिण दिशा आनन्द चौक में यक्ष कन्यायें, पश्चिम दिशा मंगल चौकमें गन्धर्व कुमारियाँ, तथा उत्तर दिशा उत्साहिनी चौक में किन्नर कुमारियाँ रहती हैं ॥

ताके मध्य प्रकार वहु, फूल वाटिका सोह।
ताकी सुछवि निहारि कैं, रितु बसन्त हूँ मोह ॥ ३ ॥
फूल सुसंज्ञिक चौक बहु, मनि सुखचित आवाल।
यथा जाति तेहि पाँति सम, कहूँ सेत कहुँ लाल ॥ ४ ॥
कहूँ नील आरक्त कहुँ, कहूँ पीत द्युति साज।
जनु अद्भुत आगार लखि, छाय रहो रितु राज ॥ ५ ॥

शब्दार्थः--संज्ञिक = नाम वाले। आबाल = क्यारी। द्युति = आभा। आगार = स्थल। आरक्त = सुर्ख।

भावार्थः--दो पंक्ति वाले महलों के बीच-बीच में अनेक तरह की फुलवारियाँ सोह रही हैं। उनकी शोभा देखकर बसन्त ऋतु भी मुग्ध हो जाती है ॥ ३ ॥

उन पुष्प वाटिकाओं में फूल के नामानुसार बहुत से चौक हैं। उन फूलों की क्यारियाँ मणि जटित हैं। जिस जाति के फूल हैं, उन्हीं की पंक्ति बनी है। कहीं उजले फूलों की पंक्ति, कहीं लाल फूलों की ॥ ४ ॥

फूलों की कहीं नीली, कहीं सुर्ख और कहीं पीली

आभा छाई है। मानो आश्चर्य स्थल देखकर ऋतुराज वसन्त वहां छावनी डाले हो ॥ ५ ॥

कहूँ सेवती चौक कहुँ, लसत मुक्त छवि चौक।
कहूँ गुलाब सुचौक मनु, यहि वसन्त रितु ओक ॥ ६ ॥
जुही चौक कहुँ मालती, चौक सुचम्पा चौक।
चौक चौक प्रति कुंज सो, जनु बहु सुषमा ओक ॥ ७ ॥
कहूँ केतकी चौक पुनि, कहुँ मन्दार सुचौक।
यथा रंग सम सुमन की, जुटी नोक सम नोक ॥ ८ ॥

शब्दार्थः--सेवती = सफेद गुलाब। मुक्त = मोतिया बेला। ओक = निवास स्थान।

भावार्थः--कहीं सेवती का, कहीं छविमय मोतिया बेला का और कहीं गुलाब का चौक है। इन चौकों की शोभा देखकर मालूम पड़ता है कि बसन्त ऋतु का निजी निवास स्थान यहीं है ॥ ६ ॥

कहीं जूही का, कहीं मालती का तथा कहीं चम्पा का चौक है। प्रत्येक चौक में एक-एक कुञ्ज बना है, मानो अपार शोभा का भवन हो ॥ ७ ॥

कहीं केतकी चौक है, पुनः कहीं मन्दार चौक है। समान रंग वाले पुष्प इतने सघन हैं कि एक की समान नोक दूसरे से जुटी है ॥ ८ ॥

स्वेत सुमन के चौक में, नील मनो की कुंज।
नील कुसुम के चौक में, स्वेत मनी सुख पुंज ॥ ६ ॥
रक्तकुसुम के चौक में, कुंज श्याम मनि सोह।
श्याम कुसुम के चौक में, कनक कुंज मन मोह ॥१०॥
पीत कुसुम के चौक में, मरकत कुंज विराज।
यहि विधि प्रति रँग सोहने, अति अद्भुत छवि साज ॥११

भावार्थः--उजले फूल चौक में नीलमणि का कुंज बना है। नीले फूल के चौक में श्वेतमणि का कुंज ऐसा फब रहा है कि वह श्रीयुगल बिहारी जी के लिये सुख की राशि बन गई है ॥ ६ ॥

लाल फूल चौक में श्याम मणि का कुंज खूब जेब दे रहा है। श्याम पुष्प चौक में सोने का रचित कुंज मन मोहने वाला है ॥ १० ॥

पीले फूल चौक में मरकत मणि का कुंज विशेष शोभा दे रहा है। इसी प्रकार फूल और कुंज के रँग पारस्परिक शोभा बढ़ाने वाले हैं, जिससे यहां अति आश्चर्यजनक शोभा हो रही है ॥ ११ ॥

पुनि तहँ ललित लतान की, कुंजें बनी अपार।
पुनि द्रुम कुंज अनेक तहँ, मधुकर मृदु रवकार ॥१२॥
परभृत अमित सुगावहीं, नटत मयूर मयूरि।
जल खग कूजत कुंज में, रह्यो मधुर रव पूरि ॥ १३ ॥

शब्दार्थः-रवकार=गुंजार करने वाले। परभृत=कोयल।

भावार्थः--पुनः वहां असंख्य सुन्दर सुन्दर लता कुंजें हैं, अगणित द्रुमकुजें हैं। उन लता द्रुमों के पुष्पों पर भ्रमर मधुर-मधुर गुंजार कर रहे हैं॥ १२॥

असंख्य कोकिलाएँ गान कर रही हैं। मोर मोरनी नाच रहे हैं। कुञ्जों में जलपत्ती भी कलरव कर रहे हैं, (क्योंकि कुञ्ज के सन्निकट में ही जलाशय भी हैं), इस प्रकार बड़ी ही रमणीय ध्वनि से वह स्थल मुखरित हो रहा है॥ १३॥

मनिन रचित बहु दीर्घका, कूप तड़ाग विशाल।
फूले कंज अनेक रंग, नील पीत सित लाल॥ १४॥

शब्दार्थः-दीर्घका = बावली। सित = उजला। तड़ाग = सरोवर।

भावार्थः--वहां मणिमय घटों से रचित असंख्य बावली, कूप और विशाल सरोवर हैं। उनमें बहुत रंगों के कमल खिले हैं। कोई नीले, कोई पीले, कोई उजले और कोई लाल रंग के कमल हैं॥ १४॥

तहाँ नागरी नवल बहु, परम एकान्तिक मान।
करत केलि बहु रंग सौं, नटत लेत मृदु तान॥ १५॥
बहु अलि ललि अरु लाल हित, गूहत सुमन सिंगार।
कोउ अलि कुसुम कलीन की, राखत सेज सँवार॥ १६॥
चुनत चमेली फूल कोउ, कोउ रुचि रचत सुहार।
पहिरावत सियलाल उर, निरखत तन धन वार॥ १७॥
कोउ गुलाब गजरा गुहत, कोउ सेवती सुमाल।
कोउ तुर्रे कलँगी कोऊ, धरि निरखत छवि जाल॥१८॥

भावार्थः--उस स्थल को पुरुषों के लिये अगम्य अतः ऐकान्तिक मानकर असंख्यक नवला प्रवीणा नायिकाएँ प्रेमानन्द में निर्भर होकर स्वच्छन्दता पूर्वक क्रीड़ायें करती हैं। मधुर स्वर से तान आलाप कर नृत्य करती हैं ॥ १५ ॥

बहुत सी सखियाँ श्रीयुगलकिशोर चितचोर जू के निमित्त फूलों के वस्त्र भूषण रचती हैं। कोई सखी युगल विहार के अर्थ फूल-कलियों की सेज सँवार कर रखती हैं ॥ १६ ॥

कोई चमेली फूल उतारती है, कोई उस फूल से सुन्दर माला रचकर बनाती हैं। उस गजले को श्रीयुगल प्रियतम के हृदय में धारण कराकर उस शृङ्गारित शोभा को तन, मन, धन निछावर करके अवलोकन करती है ॥ १७ ॥

कोई सखी गुलाब का गजला गूंथ रही है, कोई सेवती की सुन्दर माला गूंथती है। कोई फूल के तुर्रे कलंगी रचकर श्रीप्राण प्यारे जू के माथे पर सँवारती है और मन को जालवत् फंसाने वाली छवि को अवलोकन करती है ॥ १८ ॥

कोउ जूही की चन्द्रिका, स्वामिनि को पहिराय।
पिय के सिर धारन करत, कुसुम किरीट बनाय ॥ १९ ॥
कोउ पहुँची कंकन गुहत, चुनि चुनि पीत चमेलि।
कोउ फूलन गुजरी रचत, प्यारी के हित हेलि ॥ २० ॥

कोउ फूलन साटी रचत, कोउ पिय हित प्रावार।
कोउ कुंजे रचि सुमन की, सुमन सेज सुखकार ॥ २१ ॥
सबनि भक्ति ऊरी करत, पिय प्यारी तहँ आय।
प्रेम सहित अलिगन सकल, नटत सुगाय बजाय ॥ २२ ॥

शब्दार्थः-गुजरी = कलाई का भूषण। हेलि = सखी। साटी = साड़ी। प्रावार = उपरना दुपट्टा। ऊरी = अङ्गीकार।

भावार्थः--कोई सखी जूही की चन्द्रिका रचकर श्रीस्वामिनी जू तथा पुष्प का मुकुट रचकर श्रीप्रियतम जू के माथे पर धारण कराती है ॥ १६ ॥

कोई सखी श्रीप्रिया जू के निमित्त पीली चमेली चुन चुन कर उसी की पहुँची और कंकण रचती है। कोई गुजरी नामक कलाई पर धारण कराने वाला भूषण रचती है ॥ २० ॥

कोई सखी श्रीप्रियाजू के लिये फूलों की साड़ी बनाती है, कोई श्रीलालजू के निमित्त फूलों का दुपट्टा रचती है। कोई सुमन कुंज की रचना कर उसमें सुखदायिनी सुमन सेज सवारती है ॥ २१ ॥

श्रीयुगल किशोर जू सखी प्रति अमित रूप से पधारते हैं तथा उनकी प्रेम पूर्ण सेवा को सहर्ष अङ्गीकार करते हैं। श्रीयुगल जीवन धन जू की इस कृपा पर सखियाँ प्रेमोन्मत्त होकर नाना यंत्र बजाकर गाती और नाचती हैं ॥ २२ ॥

इति श्रीमज्जनक राजकिशोरीशरण विरचितायां श्रीसीताराम सिद्धान्तानन्य रस तरंगिण्यां द्वितायावरण वर्णनो नाम पञ्चम स्तरङ्गः।

❀ षष्टम तरङ्ग ❀

तृतीयावरण में मृगपत्ती विनोद तथा ललित युगल नामावली



अब तीसर आवरण लखु, पीत वरन छवि देत।
लसत कंगूरे नील पर, हंस कलित मनि स्वेत ॥ १ ॥
पुनि तीसर आवरण में, प्रश्नोत्तर युग पाँति।
लसत सुमनिमय महल की, अतिहि मनोहर कान्ति ॥२॥

भावार्थः--अब ध्यान दृष्टि से तीसरे आवरण को देखिये। परकोटे पीले रंग वाले सुशोभित हो रहे हैं। उन पर नीलमणि के कंगूरे हैं, तिन पर श्वेतमणि के कृत्रिम हंसों की पंक्ति शोभा दे रही है। हंस तीन प्रकार के होते हैं हंस, राजहंस और कलहंस। दूसरा राजहंसावरण था, यह श्वेत हंसावरण होना चाहिये, पर वार्तिक अनन्यरस तरङ्गिणी के अनुसार तीसरे को कपोतावरण कहते हैं ॥ १ ॥

पुनः तीसरे आवरण के अन्तराल में मणिमय महलों की दो उक्तियाँ हैं। इन दोनों पंक्तियों के आमने सामने वाले महल (प्रश्नोत्तर) समान आकार प्रकार वाले हैं। इनकी कान्ति (प्रकाश) अति मनहरण है ॥२॥

पुनि तहँ चहुँदिशि चारि वन, पद्माकर पुनि चार।
फूले कंज अनेक रँग, नील पीत अरुनार ।३॥
मनिमय घाट विचित्र अति, रत्न वेदिका सोह।
बोलत खग बहु मधुर सुर, जेहि सुनि मुनि मन मोह ॥४॥
नारिकेल वन पूर्व दिशि, दत्तिण पुंग विशाल।
पच्छिम सोह रसाल वन, उत्तर श्याम तमाल ॥ ५॥
सदा त्रिसंपति युत रहत, सफल सफूल सपर्ण ।
नील मनी दुति पत्र की, स्कन्ध सुवर्ण सवर्ण ॥ ६ ॥

शब्दार्थः--पद्माकर = कमल से परिपूर्ण सरोवर। अरुणार = लाल। विचित्र = अनेक चित्र खचित। पुंग = सुपारी। रसाल = आम। त्रिसम्पति = पत्ते, फूल और फल यही तीन सम्पत्ति वृत्तके होते हैं। सपर्न = पत्ते युक्त। स्कन्ध = नीचे से फूटने वाली मोटी डाल। सुवर्ण = सुनहला। सवर्ण = रंग वाला।

भावार्थः--पुनः इस तीसरे आवरण में चारों तरफ चार बन हैं। प्रत्येक बन के मध्य में एक-एक कमल-सरोवर होने से ये भी चार हैं। उन सरोवरों में नीले, पीले, लाल आदि अनेक रंगों के कमल खिले हैं॥ ३॥

सरोवरों के घाट मणिजटित हैं। उन पर अनेक चित्राम खचित हैं। सरोवर तट पर बहुत सी रत्न-रचित वेदिकाएँ सुशोभित हो रही हैं। बहुत से जल एवं थल वाले पत्ती मधुर-मधुर स्वर से कलरव कर

रहे हैं। इस दिव्य विहार देश के पक्षियों के स्वर इतने मनोरम हैं कि सब इन्द्रिय-स्वाद जीते हुये मुनियों के मन को भी मुग्ध कर देते हैं॥ ४॥

इस आवरण के पूर्व ओर नारियल बन, दक्षिण तरफ बड़ा भारी सुपारी-बन, पश्चिम दिशा में आम-बन तथा उत्तर ओर श्याम रंग वाले तमाल वृक्षों के बन हैं॥ ५॥

इन बनों के वृक्ष फल, फूल और पत्ते युक्त तीनों सम्पति से सदा सम्पन्न रहते हैं। पत्रों की कान्ति नील-मणि वाली है तथा कंधे वाली मोटी डालें सुनहले रंग की हैं॥ ६॥

चातक हंस चकोर बहु, पारावत सुक सारि।
सारस कंक सुकंठ बहु, वरटा हंस कि नारिं॥ ७॥
सारस योषित लक्ष्मणा, कारंडव कादम्ब।
चाष मुहुष वत्तिक कुरर, हारिल बहु निकुरम्ब॥ ८॥
मोर मयूरी बहुत खग, अपर गने को नाम।
लखि अद्भुत बन रम्यता, मुनि मन पैठत काम॥ ९॥
कूदत मृग मंजीर पद, बजत छमका छंक।
युत्थ युत्थ मिलि दौरहीं, सुनत शब्द आतंक॥ १०॥

शब्दार्थः-चातक=पपीहा। पारावत=कबूतर। सुक=सुग्गा। सारि=मैना। सारस=लम्बी गर्दन और बड़े पैर

वाला एक बड़ा पक्षी। कंक=बगुला। सुकंठ=कोयल। वरटा=हंसिनी। योषित=पत्नी। लक्ष्मणा=हंस पत्नी का नाम है। कारंडव=हंस। कादम्ब=काला पंख वाला कलहंस। चाष=नीलकंठ। मुहुष=महोखा-नामक पक्षी। कुरर=क्रौंच, कराँकुल। निकुरम्ब=समूह। रम्यता=सुन्दरता। मंजीर=नूपुर। आतंक=डर। अपर=दूसरे।

प्रसंगः-(इस आवरण के सरोवरों एवं बनोंमें रहने वाले पक्षियों के नाम बताये जा रहे हैं। ये भी उद्दीपन विभाव हैं।)

भावार्थः--बहुत से पपीहे, हंस, चकोर, कबूतर, सुग्गे, मैना, सारस, बगुले, कोयल, हंसपत्नी वरटा, सारस पत्नी लक्ष्मणा, हंस, कलहंस, नीलकंठ, महोखा, बत्तख, क्रौंच, हारिल आदि पक्षियों के अनेक झुण्ड हैं ॥७८॥

मोर, मोरनी आदिक बहुत से पक्षी हैं। और और पक्षियों के नाम कौन गिनकर बतावेगा? बन की विचित्र सुन्दरता को देखकर इन्द्री-जीत मुनि के मन में भी काम का प्रवेश हो जाता है॥ ९॥

पैर में नूपुर बन्धे हुये हिरण जब छलाँग भरते हैं, तो उससे छुम-छुम आवाज होती है। कोई बाधक शब्द सुनकर डर जाते तथा झुण्ड-झुण्ड मिलकर दौड़ने लगते हैं॥ १०॥

तिन तड़ाग के मध्य में, मनिमय कुंज विशाल।
नौका पटु पाटीरमय, खेलत तहँ ललि लाल॥ ११॥

खेलि नवारे लाल सिय, कुंजन करत प्रवेश ।
नृत्य गान करि बाल बहु, रिझवति सिय रसिकेश ॥१२॥
पुनि तहँ की यूथेश्वरी, अमित मधुर फल ल्याय ।
भेंट करति सिय लाल को, फिरि बकसीसें पाय ॥ १३ ॥
पुनि सिय रघुवर रसिक मनि, हास विलास समेत ।
चीखि चिखावत परस्पर, निज कर सखियन देत ॥ १४॥
सखियन युत सिय श्याम चढ़ि, नावन आये पार ।
विहरत रम्याराम में, कौतुक करत अपार ॥ १५ ॥

शब्दार्थः - पटु=उद्देशयोपयोगी, काम के लायक । पाटीर=चंदन । नवारे=नाव को बीच धारा में चक्कर कटवाना । रसिकेश=रसिक शिरोमणि रघुनन्दन जू । बकसीसें=इनाम, पुरष्कार । रम्याराम=मनोरम बाग ।

भावार्थः--प्रत्येक उपर्युक्त सरोवर के बीच-बीच में एक-एक बड़ा कुञ्ज बना है । पुनः उस सरोवर में उद्देश्योपयोगिनी चंदन की नाव है । उस पर श्रीलड़ैतीलाल जू नवारे खेलते हैं ॥ ११ ॥

नवारे खेलकर श्रीप्रिया प्रियतम जू तड़ाग के मध्य वाले कुञ्जों में प्रवेश करते हैं । वहां बहुत सी नवीना नायिकाएँ नाच गाकर श्रीसिय जू तथा श्रीरसिकेन्द्र विहारी जू को रिझाती हैं ॥ १२ ॥

पुनः उस कुंज की कुंजेश्वरी अनन्त प्रकार के मीठे

फल लाकर श्रीयुगल मनभावन जू को नजर करती है। पुनः उनसे भूषण वसन आदि प्रसादी रूपमें पारितोषिक पाती है ॥१३

फिर श्रीसिय जू एवं रसिक चूड़ामणि श्रीरघुनन्दन जू हास विलास पूर्वक उन फलों को स्वयं आरोगते हैं तथा परस्पर में एक दूसरे को पवाते हैं। अपने करकमल से प्रसादी सखियों को प्रदान करते हैं ॥ १४ ॥

सखियों के सहित श्रीयुगल मनहरण जू नाव पर चढ़, रमणीय बना में बिहार करते हैं एवं अनन्त प्रकार के खेल करते हैं ॥ १५ ॥

कोउ सखि पिय करताल दै, भागी चपल सुभाय।
दशरथ सुत तिहि दौरि गहि, छोड़ी ताहि नचाय ॥ १६ ॥
सो अमर्ष मन मानि कै, बोली सखि मुस्काय।
अब भागो मो निकट ते, छाड़ौ तुमहि नचाय ॥ १७ ॥
पुनि भागे तिहि निकट ते, रघुनन्दन दै ताल।
सो चपला अति दौरि के, गहि ल्याई नृपलाल ॥ १८ ॥
पिय के दोउ कर करगही, बोली सो मृदु बाल।
नाचो तुम नृपनन्द सब, सखी बजावैं ताल ॥ १९ ॥
पुनि सखि ताल बजाय कै, नाच नचायो श्याम।
यह लीला अदभुत निरखि, मन सिहात रति काम ॥२०॥

शब्दार्थः--करताल दै=हाथ से ताली बजाकर। अमर्ष=क्रोध। सिहात=पाने को ललचाते हैं।

भावार्थः--कोई चंचल स्वभाव वाली सखी श्रीप्रियतम जू के आगे हाथ से ताली बजाकर भग गई। श्रीचक्रवर्ती कुमार जू ने दौड़कर उसे पकड़ लिया और नचाकर छोड़ा ॥ १६ ॥

वह सखी मन ही मन तो झुंझला गई, परन्तु प्रेमाधिक्य के कारण ऊपर से मुस्क्याती हुई बोली--"हे चपल चितचोर, अब तो मेरे पास से भगो। मैं तुम्हें नचाकर ही छोड़ूँगी ॥ १७ ॥

फिर क्या था, श्रीरघुनन्दन जू उसके मुख के सामने ताली बजाकर भग चले। वह चंचलता वाला फुर्त्ती से दौड़कर श्रीराजदुलारे जू को पकड़ लाई ॥ १८ ॥

अपने दोनों हाथों से श्रीप्रीतम जू के करकमल पकड़कर, वह कोमलाङ्गी वाला मधुर मनोहर बचन बोली--हे श्रीअवधेशलालजू, तुम नाचो तो सभी सखियाँ ताली बजावैं ॥१६

तदुपरान्त उस सखी ने ताली बजा बजा कर श्याम सलोने जू को नचाया। इस प्रकार की अनोखी लीला देखकर कामदेव और रति उस सुख को पाने के लिये तरस रहे हैं ॥२०

पुनि यक सुन्दर नवल तिय, पिय पट खैंचि अचंग।
तुरतहिं कूदी कुंड में, श्यामहु ताके संग ॥ २१ ॥
पुनि सिय युत अलिगन अमित, देखत कौतुक रंग।
ख्याल खेलावत बचन कहि, श्रम कराइ तिहि अँग ॥२२॥
हे नवनागर कहि सखी, कोइ बोली मृदु बैन।
वह दिखात वा नागरी, झलकत वाके नैन ॥ २३ ॥

रघुवर वाके वचन सुनि, खोजत वारिज नील।
भँवर सहित सो अनुसरत, दृगही के समसील ॥ २४ ॥
कोउ कर भोरु कहँ लखो, मोहन राम कुमार।
वई दिखात वा नागरी, झलकत वाके वार ॥ २५ ॥
तब रघुनन्दन दौरि कै, ढूढ़त नील सेवाल।
चन्द्रमुखी चहुँ ओर सब, हँसत बजावत ताल ॥ २६ ॥

शब्दार्थः--अचंग = औचक में। भ्रम कराइ = भुलावा देकर। नागरी = प्रवीणा। वारिज = कमल। अनुसरत = नकल मालूम पड़ता है। समसील = समान। करभोरु = धोखा देकर। बार = केश।

भावार्थः--उसके बाद एक सुन्दरी नवला नायिका औचक श्रीप्राण प्यारे जू का पीताम्बर खींचकर फौरन कूंड में कूद पड़ी। इस पर श्यामसुन्दर भी उसके साथ ही साथ उसमें कूद पड़े ॥ २१ ॥

तब अनन्त सखियों के सहित श्रीसिय जू उस प्रेमानन्द मय तमाशे को अवलोकन करने लगीं। उस जलमें कूदने वाली नायिका के अंगों का भुलावा देने वाले बचन कह-कह कर प्यारे को खेल खेला रही हैं ॥ २२ ॥

(रस लम्पट लाल जू माधुर्य्यानन्द के रसास्वादन के निमित्त द्विविध लीला करते हैं। १ मुग्ध और २ विदग्ध ॥ मुग्ध लीला करते समय आप ऐसे बन जाते हैं, मानो बड़े भोले भाले हों, नो छो कुछ नहीं जानते हों। पुनः विदग्ध लीला

काल में आप चतुर चूड़ामणि हैं। सो यहां मुग्ध लीला हो रही है।)

कोई सखी भ्रमर युक्त नील कमल की ओर संकेत करती हुई मधुर बचन से कहती है-'हे नवचतुर जू, देखिये! देखिये!! जल में छिपी हुई वह चतुरी वहां दिखाई पड़ रही है। देखिये न, वहां उसके नयन झलक रहे हैं॥ २३॥

श्रीरघुनन्दन मनहरण जू उसके बचन सुनकर नील कमल की ओर लपक कर उसे ढूँढ़ने लगे, क्योंकि भ्रमर के साथ वह ठीक नयन ही के समान मालूम पड़ता है॥ २४॥

कोई सखी उन्हें धोखे में डालकर कहती है-हे मनमोहन रमणशील जू, आप किधर ताक रहे हैं? वह देखिये, वह नागरी वहां दीख रही है। उसका केश दिखलाई पड़ रहा है॥ २५॥

श्रीरघुनन्दन जू नीले सेवार की ओर दौड़कर वहां उसे खोजने लगे। इस पर चन्द्रवदनी सखियाँ चारों ओर से ताली बजा बजाकर हँस रही हैं॥ २६॥

पुनि बोली यक नागरी, झूठ न कहुँ सिय नाथ।
वह दिखात वा सुघर अलि, दरसत वाके हाथ॥ २७॥
सुनि ताके प्रिय वचन पिय, परसत पदम सुलाल।
पुनि जल भीतर पैठि कै, गहि ल्याये सोइ वाल॥ २८॥
तिहि निज कर पट छोरि कै, आय खड़े सिय पास।
सो नवला अति लाज भरि, कंठ वारि करि वास॥ २६॥

पिय सु दिवायो तासु पट, करि विनती सब नारि।
पुनि सखियन पिय को लख्यो, भूषन वसन सवाँरि ॥३०॥

भावार्थः--तब तक चतुर सखी बोली, हे श्रीजानकी-रमण जू, मैं आपसे झूठ नहीं कहती हूँ। वह देखिये, वह नागरी सखी वहां दिखाई दे रही है। उसका हाथ दीख रहा है ॥२७॥

श्रीप्रियतम जू उसकी प्रिय वाणी सुन हाथ के धोखे से लाल कमल को छूते हैं। पुनः जल के भीतर घुसकर उस नवला को आप पकड़ लाये ॥ २८ ॥

उस सखी के वस्त्र अपने कर कमल से खोलकर उसे नग्ना बना श्रीप्रिया जू के सन्निकट आकर खड़े हो गये। वह बाला अति लज्जित होकर अपने गुप्तांगों को छिपाने के निमित्त कंठ भर जल में खड़ी है ॥ २९ ॥

सभी सखियों ने प्रार्थना करके प्रियतम जू से उसका वस्त्र दिलवाया। तदुपरान्त श्रीप्राणनाथ जू को नवीन भूषण-वसन से अलंकृत कर उनकी सुछवि अवलोकन करने लगीं ॥३०

सखियन पद मंजीर धुनि, सुनि आये मृग वृन्द।
उसकारति भगि जात पुनि, गहति पानि रचिफन्द ॥३१
बहुतक पिय प्यारी सुछवि, निरखत जिमी चकोर।
पिय निरखत तिनके नयन, सिय दृग सम दृगकोर ॥३२।
बहु पद पंकज घ्रान करि, कूदि छुवत मृदु पानि।
परानन्द सुख अनुभवत, करि निज जातिक बानि ॥३३॥

पीठ फेरि कर कंज दोउ, सब कहँ करत सनाथ।
मेवा त्रिविध मँगाय कै, देत सुमुख निज हाथ ॥ ३४ ॥
निकट बुलावत सबन कहँ, लै लै तिनके नाम।
हे मनरंजन रमनमन, दृग उपमा अभिराम ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ:--मंजीर=नूपुर। उसकारति=छेड़ छाड़ करती है। पानि=हाथ। घ्रान=सूंघना। बानि=स्वभाव। अभिराम=सुखद।

भावार्थ:--सखियों के चरण नूपुर की संगीतमयी ध्वनि सुनकर श्रवण रसिक मृगों के झुण्ड आ गये। जब छेड़-छाड़ करती हैं, तो भग जाते हैं। तब हाथों से फन्दे बनाकर उन्हें पकड़ती हैं ॥ ३१ ॥

वहां बहुत से मृग श्रीप्रियतम प्रिया जू की सुछवि चन्द्र चकोरवत अवलोकन कर रहे हैं। श्रीप्राण प्यारे जू श्रीसिय जू के नयनकोर की समता वाले होने कारण उन मृगों के नयन देख रहे हैं ॥ ३२ ॥

बहुत से मृग श्रीयुगल किशोर जू के चरण कमल सूंघते हैं, पुनः अपनी जाति के स्वभावानुकूल उछल-उछल कर उनके कोमल करकंज छूते हैं और परमानन्द सुख का अनुभव करते हैं ॥ ३३ ॥

श्रीयुगल ललन जू, अपने कर कमलों से उनकी पीठ सुहलाते हुये उन्हें कृतार्थ कर रहे हैं। नाना भांति के मेवा मँगाकर उनके मुख में अपने करकंज से खिलाते हैं ॥ ३४ ॥

उन मृगों को लाड़ प्यार वाले नामों से सम्बोधित करके अपने पास बुलाते हैं। किसी को मनरंजन, किसी को मनरमण और किसी को सुखद-नयन उपमान कहकर पुकारते हैं ॥३५॥

पुनि आये बहु मोर गन, निरखत श्यामा श्याम।
सिय निरखत तिहि कंठ छवि, पिय वपु सम अभिराम ॥३६
कल कलाप रघुनन्द तिहि, निरखत चित्त लगाय।
प्यारी के कच हस्त सम, छवि वाकी दरसाय ॥ ३७ ॥
परसत पद बहु नृत्य करि, उड़ि उड़ि करि सुख ख्याल।
फेरि फेरि कर सबनि पर, मोद देत सिय लाल ॥ ३८ ॥
अँजुलिन भरि भरि अन्न बहु, जासु सुधा सम स्वाद।
ताहि चुगावत लाल सिय, चुगत करत मृदु नाद ॥३६॥

शब्दार्थः--वपु=शरीर। अभिराम=मनोरम। कल= सुन्दर। कलाप=मोर पंख। कच=केश। हस्त=हाथ। नाद=शब्द।

भावार्थः-उसके बाद बहुत से मोरों के झुण्ड आये। श्रीप्रिया-प्रियतम जू उसकी छवि देख रहे हैं। श्रीप्रिया जू की दृष्टि उसकी कंठ-शोभा की ओर है क्योंकि वह श्रीप्राण-बल्लभजू के श्रीविग्रह के समान मनोरम श्यामवरण की है ॥३६

श्रीरघुनन्दन मनहरण जू मोर के सुन्दर पंख को एकाग्र मन से देख रहे हैं। पंख का श्यामांश श्रीप्रिया जू के केश के समानहै। पुनः स्वर्णिम धब्बे श्रीप्रियाजू के करकंज सम हैं ॥३७

मोरगण बहुत भांति से नाचकर श्रीयुगल किशोर जू के पादारविन्द स्पर्श करते हैं। उड़-उड़ कर सुखदायक कौतुक करते हैं। श्रीलड़ैतीलाल जू सबों के शरीर पर करकंज फेर कर, उन्हें परमानन्द सुख प्रदान करते हैं ॥ ३८ ॥

पुनः युगल मनभावन जू अमृत के समान स्वादिष्ट बहुत प्रकार के अन्न उन्हें अंजुलियों में भर-भर कर खिलाते हैं। वे दाने चुगते हैं और मधुर कलरव ध्वनि भी करते हैं ॥३९

पुनि आये बहु हंस गन, स्वच्छ वरन गति दच्छ।
चरण अरुण चोचहुँ अरुण, राजहंस उपलच्छ ॥ ४० ॥
पिय प्यारी छवि निरखि कै, मानस मगन मराल।
गमन प्रिया के गमन सम, निरखि मगन मन लाल ॥ ४१॥
नटत नदत कौतुक करत, रीझत राम कुमार।
सिय जु रीझि सित–पच्छ कहँ, देत मुक्त बहु हार। ४२॥
कीर कदम्बक कोटि बहु, नील पीत सित लाल।
मनहुँ विबुध वृष्टी करत, पुष्प रंग बहु माल ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः--स्वच्छ = सफेद। वरन = रंग। गति = सुन्दर ढंग से चलने में। दच्छ = कुशल। उपलच्छ = बोधक। मानस-मगन = (यह द्विअर्थक श्लिष्ट हैं) १ मन आनन्द में डूबा हुआ, २ मान सरोवर में डूबे रहने का सुख (क्योंकि मान सरोवर हंसों का प्रिय निवास स्थल है।) नटत = नाचते हैं। नदत = बोलते हैं। सितपच्छ = हंस। मुक्त = मोती। कीर - सुग्गा। कदम्बक = झुण्ड। विबुध = देवता।

भावार्थः--तदुपरान्त बहुत से मोरों के झुण्ड आये। ये सफेद रंग वाले हैं। सुन्दर ढंग से चलने में बड़े कुशल हैं। इनके पैर लाल हैं तथा चोंच भी लाल ही हैं। ये राजहंस जाति के बोधक हैं॥ ४० ॥

श्रीप्रिया प्रियतम जू की बाँकी झाँकी अवलोकन कर ये मन ही मन इतने आनन्द में डूबे हैं, मानो मान सरोवर में गोता लगा रहे हा। श्रीलाल जू इन्हें देखकर इसलिये आनन्द मग्न हैं कि इनकी चाल श्रीप्रिया जू की सुढंग चलन से मिलती जुलती है॥ ४१ ॥

हंसगण नाचते हैं, कलरव ध्वनि करते हैं, अनेक ख्याल करते हैं। इस पर श्रीअवधेश लाल जू रीझ रहे हैं। श्रीप्रिया जू उन हंसों पर प्रसन्न होकर बहुत सी मोती-मालायें देती हैं। (क्योंकि मोती हंस का प्रिय आहार है।)॥ ४२ ॥

पुनः असंख्य सुग्गों के झुण्ड आये। उनमें बहुत तो नीले रंग वाले हैं, बहुत पीले, बहुत सफेद और बहुत से लाल हैं। आकाश से उड़ते हुये जब पृथ्वी पर उतरते हैं तो ऐसा मालूम पड़ता है, मानो देवगण अनेक रंगों की फूल मालायें बरसा रहे हों॥ ४३ ॥

❀ अथ ललित युगल नामावली ❀

उड़ि उड़ि बैठत अलिन के, अंगन पर शुक वृन्द।
चुगा चुगावत कहत बहु, सिय रघुवर सुखकन्द॥ ४४ ॥

कहहु जयति श्रीजानकी, जयति अवध नृप नन्द।
जयति अंग कमनीय अति, जयति काम मद कंद ॥ ४५ ॥
जय मिथिलेश सुता पती, जय अवधेश कुमार।
जयति सुनैना-नन्दिनी, जय जानकि उर हार। ४६ ॥
निमि कुल कुमुद सुचन्द्रिका, जय रसिकेश सुजान।
जयति जानकी रमन जय, रघुकुल कमल सुभान ॥ ४७ ॥
कहहु कीर बानी मधुर, प्रेम सहित प्रिय लाल
जयति सुछविनिधि स्वामिनी, जय रघुवर छविजाल ॥४८
कहहु कीर मृदु वचन वर, जनकसुता दृग तार।
जयति राजमनि रसिकमनि, जय शोभा बहु मार ॥ ४९ ॥

शब्दार्थः सुखकन्द = सुख बरसाने वाले। कमनीय = सुन्दर। कंद = भंजन करने वाले। उरहार = हृदय का हार। सुचन्द्रिका = चान्दनी। सुभान = सुन्दर सूर्य्य। दृगतार = नयनों की पुतली। मार = कामदेव।

भावार्थः--सुग्गों के झुण्ड सखियों के अङ्गों पर उड़ उड़ कर बैठ जाते हैं। सखियाँ उन्हें दाने चुगाती हैं और साथ-साथ पढ़ाती भी हैं कि हे सुग्गे, सुख बरसाने वाले श्रीसिय रघुवर बोलो ॥ ४४ ॥

हे सुग्गो, पढ़ो "श्रीजानकी जू की जय", "श्रीअवधेश-नन्दन जू की जय।" "अतिशय कमनीय अंग वाले की जय", "अपनी सुन्दरता से काम के रूपाभिमान को भंजन करने वाले की जय हो" ॥ ४५ ॥

श्रीमिथिलेशनन्दिनी-प्राणप्रीतम जू की जय, श्रीअव-धेश कुमार जू की जय । श्रीसुनयनानन्दिनी जू की जय। श्रीजानकी जू के हृदयहार (आलिंगनकाल में) की जय हो ॥४६

निमिवंश रूपी कुमुदिनी को चन्द्रज्योत्स्ना की भांति प्रफुल्लित करने वाली श्रीप्रिया जू का जय हो। प्रीति रीति में प्रवीण श्रीरसिक शिरोमणि जू की जय। श्रीजानकी रमण जू की जय। रघुवंश रूपी कमल बन को सूर्य्यवत विकशित करने वाले श्रीरघुनन्दन जू की जय ॥ ४७ ॥

हे सुग्गो, प्रेम पूर्वक मीठी वाणी द्वारा श्रीसियलाल जू के नामोच्चारण करो। छविसिन्धु श्रीसिय स्वामिनी जू की जय बोलो। छविपुंज श्रीरघुवर जू की जय कहो ॥ ४८ ॥

हे सुग्गे, परमोत्तम कोमल बचन द्वारा बोलो श्रीजानकी जू के नयन-पुतली वत प्राण प्यारे जू की जय, राजेश्वर शिरोमणि जू की जय। रसिक शिरोमणि जू की जय। अनन्त कामदेव की शोभा वाले की जय हो ॥ ४६ ॥

जय लालन ललना रमन, जय लालन उर माल ।
जय लालन जटि कुंज बहु, जय ललना गन पाल ॥ ५० ॥
कहु शुक कौशल्यासुवन, जयति सुनैना बाल ।
कहु जय मिथिलाधिप लली, जयति अवधपति लाल ॥५१
कहु शुक जू बानी मधुर, मधुर लड़ैती लाल ।
मधुर मधुर द्रुम कुंज में, लीला मधुर रसाल ॥ ५२ ॥

हे शुक सुन्दर वदन तुव, बोलहु सुन्दर वैन।
जयति कमल नयनी सिया, रघुबर पंकज नैन ॥ ५३ ॥
हे शुक सुन्दर वदनवर, बोलहुँ सुन्दर वैन।
सुन्दरता निधि लाड़िली, सुन्दर राम सुनैन ॥ ५४ ॥
ललित तुंड बोलहुँ ललित, वचन ललित रघुचन्द।
ललित जानकी जनकजा, ललित अली गन वृन्द ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ:--लालन=प्यार करने योग्य। ललना-रमन=नायिकाओं के साथ विहार करने वाले। उर-माल=आलिंगनकाल में नायिका के हृदय पर मालावत प्रिय लगने वाले। जटि कुंज बहु=अनन्त रूप से अनन्त कुञ्जों की शोभा बढ़ाने वाले। ललना गन पाल=नायिका बृन्द को रसपान कराकर हृष्ट-पुष्ट बनाने वाले ॥ ५० ॥

रसाल=रसमयी। वदन=मुख। वैन=वाणी। पंकज नैन=कमल-दल नयन वाले। सुन्दरता निधि=सौन्दर्य सिन्धु। सुनैन=सुन्दर नयन वाले। ललित तुंड=सुन्दर चोंच वाले सुग्गे। ललित=मन भावन, प्रिया ॥ ५१-५५ ॥

भावार्थ अति सरल होने से नहीं लिखे गये। आगे भी केवल आवश्यक शब्दार्थ मात्र लिखे जायेंगे।

अरुन वदन बोलहु अरुन, पंकज सम पद पानि।
अधर अरुन वन्धुक सुमन, जयति जानकी जानि ॥ ५६ ॥
हे शुक सुख प्रद वचन वद, राम सुसुन्दर श्याम।
गौरांगी जनकात्मजा, सुषमा बहु रति काम ॥ ५७ ॥

हे शुक सुखप्रद वचन बद, राम सिया सियराम।
राम सिया सिय राम कहु, राम सिया सियराम ॥ ५८ ॥
हे शुक सुखप्रद वचन वद, सुखप्रद शोभा धाम।
जय जन पालक जानकी, जय जन रंजन राम ॥ ५६ ॥

शब्दार्थः--अरुन वदन = लाल चोंच वाले सुग्गे। अरुन पंकज सम पद पानि = जिनके चरण एवं हाथ लाल कमल के समान सुकुमार रसीले और सुगन्ध युक्त हैं। वन्धुक सुमन = दुपहरिया नामक फूल। जानकी जानि = श्रीजानकी जू के प्राण बल्लभ। सुखप्रद = सुख देने वाले। वद = कहो। सुषमा = परमाशोभा। जनपालक = आश्रितों को भरण-पोषण, सार सम्हार करने वाली। जन रंजन = अपने भक्तों को सुख देने वाले।

हे शुक सुखप्रद वचन वद, जय जानकि रघुबीर।
जय जानकि रघुबीर कहु, जय जानकि प्रिय धीर ॥६०॥
हे शुक सुख कर वचन वर, बोलहु परम सुजान।
जयति गुणालय जानकी, जयति राम गुन खान ॥६१॥
हे शुक सुखकर वचन बर, बोलहु तुम गुण ऐन।
जयति राम सिय राम सिय, निज जन कहँ सुख दैन ॥६२।
हे शुक सुखकर वचन वर, बोलहु यह सुख धाम।
जयति राम रमनी सिया, सिया रमन श्रीराम ॥ ६३ ॥

शब्दार्थः--रघुबीर = पंच प्रकार की बीरता से युक्त। विद्याबीर, दयाबीर, दानबीर, पराक्रमबीर, धर्मबीर। सुखकर =

सुख देने वाले। परम सुजान = नाम जापक सर्वश्रेष्ट ज्ञानवान हैं, अतः उन्हें परम सुजान कहा। गुणालय = दिव्य गुणगणों के भण्डार। गुणऐन = "रटैं जौन नाम तामें आवै गुण राम के।" अतः नाम जापक सर्व शुभ-गुण-भवन हैं। सुखदैन = सुख देने वाले। सुखधाम = नाम जापकों के द्वारा सबको सुख प्राप्त होता है, अतः वे सुख के भवन हैं। रमनी (रमणी) = आनन्ददायिनी पत्नी। रमन (रमण) विहरणशील पति।

हे शुक सुखकर वचन वर, बोलहुँ मधुरे वैन।
जयति राम सिय राम सिय, राम सिया कहि चैन ॥ ६४ ॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राम कहो सीता कहो, सीता कहु पुनि राम ॥ ६५ ॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
जयति जयति श्रीजानकी, जयति जयति श्रीराम ॥ ६६ ॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
जनकनन्दिनी जानकी, दशरथनन्दन राम ॥ ६७ ॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
जनकसुता श्रीजानकी, दशरथसुत श्रीराम ॥ ६८ ॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
जनक लली श्रीजानकी, दशरथ लालन राम ॥ ६९ ॥

शब्दार्थः--वचन वर = सभी वाणियों में परमोत्तम वाणी नामोच्चारण है। मधुरे वैन = मीठी वाणी। कहि चैन =

नामोच्चारण द्वारा ही सुखशान्ति का अनुभव होता है। "विश्राम स्थानमेकम्"।

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
जनक लाड़िली जानकी, दशरथ लाड़िल राम ॥ ७० ॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
जयति सुनयना-नन्दिनी, कौशिला-नन्दन राम ॥७१॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
जयति सुनयना सुख निधी, कौशिल्या सुखधाम ॥७२॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
जनकसुता दशरथ सुवन, अमित भुवन अभिराम ॥ ७३ ॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
रति छवि निन्दक जानकी, काम विनिन्दक राम ॥७४॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राम रसिक श्री जानकी, सिया रसिक श्रीराम ॥ ७५ ॥

शब्दार्थः--लाड़ली = लाड़ प्यार के योग्य पुत्री। नन्दिनी = सुख देने वाली। सुखनिधि = सुख के भंडार। अमित भुवन अभिराम = अनन्त ब्रह्माण्डों में सर्व प्रिय (को अस जीव जन्तु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्राण प्रिय नाहीं॥) रति छवि निन्दक = अपनी सुन्दरता के आगे रति को तुच्छ समझने वाली। रसिक = रसपान करने वाली।

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
जय जय रघुवर जानकी, जय रघुवर सियराम ॥ ७६ ॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
रघुवर सुखप्रद स्वामिनी, जानकि सुखप्रद राम ॥ ७७ ॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
रामरंजनी जनकजा, जानकिरंजन राम ॥ ७८ ॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राम प्रेम निधि जानकी, सिया प्रेम निधि राम ॥ ७९ ॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राम रूप रत जानकी, जानकि छवि रत राम ॥ ८० ॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
पिया छवी पागी सिया, सिय छवि पागे राम ॥ ८१ ॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
जनकसुता श्रीराम मय, जनकसुता मय राम ॥ ८२ ॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राम प्रिया श्रीजानकी, जानकि प्रियतम राम ॥ ८३ ॥

शब्दार्थः--रंजनी = प्रसन्न करने वाली। प्रेमनिधि = प्रेम के समुद्र। रत = आसक्त। पागी = अत्यन्त अनुरक्त हुई। मय = तदाकार वृत्ति वाली।

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राम रूप धर जानकी, जानकि छविधर राम ॥ ८४ ॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राम सिया श्रृङ्गार रुचि, सिय श्रृङ्गार रुचि राम ॥ ८५ ॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राम कामप्रद जानकी, जानकि कामद राम ॥ ८६ ॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
जनकसुता रामाश्रया, जनकसुताश्रय राम ॥ ८७ ।
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राम राम रट जानकी, सिया सिया रट राम ॥ ८८ ॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
सिया मुदित लखि राम छवि, मुदित सिया छवि राम ॥८९
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राम नयन वस जानकी, जानकि दृग वस राम ॥ ९० ॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
सिय गुन गावत राम के, सिय गुन गावत राम ॥ ९१ ॥

शब्दार्थः--राम रूप धर जानकी = कभी-कभी श्रीप्रिया जू लाल जू का श्रृङ्गार धारण करती हैं और श्रीप्रीतम जू प्रिया जू का। श्रृङ्गार रुचि = अपने हाथों से श्रृङ्गार करने की प्रबल इच्छा। कामप्रद = काम विषयक मनोरथ पूर्ण करने वाली। रामाश्रया = श्रीप्रियतम जू ही प्राणाधार हैं जिनके।

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राम रिझावत जानकी, जानकि रिझवति राम ॥ ९२ ॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राग सिखावत जानकी, रामहिं सिय कहँ राम ॥ ९३ ॥

भावार्थः--श्रीप्रियाजू श्रीरघुनन्दन जू को राग सिखाती हैं, श्रीलाल जू प्रिया जू को।

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राम सिया दृग नृत्यही, सिय नृत्यहि दृग राम ॥ ९४ ॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
वसन सँवारत परस्पर, राम सिया सियराम । ९५ ॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
रघुवर मन वस जानकी, जानकि मन वस राम ॥ ९६ ॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
जनकसुता को ध्यान कर, राम जनकजा राम ॥ ९७ ॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
रघुवर मन विहरै सिया, अंग सिया मन राम ॥ ९८ ॥

भावार्थः--श्रीरघुवर जू के मन में श्रीप्रिया जू के सर्वांग बसे हैं, उसी प्रकार श्रीप्रिया जू के मन में प्यारे के सब अंग विलस रहे हैं।

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राम वाम दिशि जनकजा, सिय दक्षिण दिशि राम । ९९॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राम कहत बस जानकी, जानकि कह वस राम ॥१००॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
सिय आनन पूरण शशी, दृग चकोर किय राम ॥१०१॥

भावार्थः--श्रीप्रिया जू का मुख पूर्णचन्द्र समान हैं, उस पर प्यारे के नयन चकोर बने हैं।

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
दृग चकोर किय जानकी, पूरण शशि मुख राम ॥१०२॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
सिया मगन सुनि राम गुन, सिय गुन सुनतहि राम ॥१०३
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राम शब्द सुनि मगन सिय, सिया शब्द सुनि राम ॥१०४
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
रघुवर मनमोहनि सिया, सिय मन मोहन राम ॥१०५॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राम परम धन जानकी, जनकसुता धन राम ॥१०६॥
हे शुक सुखकर बचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
रघुवर जीवन जानकी, जानकि जीवन राम ॥१०७॥
हे शुक सुखकर बचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राम प्रेम प्यासी सिया, सिया प्रेम के राम ॥१०८॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राम सुखालय जानकी, सिया सुखालय राम ॥१०९॥

शब्दार्थः--सुखालय = सुख के भवन।

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
सिय हित शिव कोदंड अति, कठिन सुखंड्यो राम ॥११०॥

शब्दार्थः--कोदंड = धनुष।

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
जयमाला पहिराय सिय, लोक विजय किय राम ॥१११॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
सिय वर वामा पाय मन, मगन भये श्रीराम ॥११२॥

शब्दार्थः--वर वामा=उत्तम पत्नी।

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
अतिहि मगन मन जनकजा, प्रियतम पाय सुराम ॥११३

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
आये सहित बरात श्री, अवधपुरी सिय राम ॥११४॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
मगन नारि नर अवध के, निरखि सिया युत राम ॥११५

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
कौशल्यादिक मगन मन, पुत्रवधू लखि वाम ॥११६॥

शब्दार्थः--वाम=सुन्दरी।

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
किय निवास निज महल में, जनकसुता युत राम ॥११७॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
अतिहि प्रेम युत परसपर, विहरति जानकि राम ॥११८॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
चौपर खेलत चतुर दोउ, जनकसुता अरु राम ॥११९॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
वीन बजावत लाड़िली, नटत लाड़िले राम ॥१२०॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राम नटनि मोहति सिया, सिया नटनि लखि राम ॥१२१

शब्दार्थः--नटत=नाचते हैं। नटनि=नृत्य।

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
सखी बजावत बाजने, नटत जानकी राम ॥१२२॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
करि कौतुक सिय राम को, सियहिं हँसावत राम ॥१२३॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
दिय अंशन भुज परस्पर, नटत जानकी राम ॥१२४॥

शब्दार्थः अंशन भुज=गलबहियाँ।

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
जनकसुता छवि निरखि के, तन धन वारत राम ॥१२५॥
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
तन धन वारति जानकी, लखि अद्भुत छवि राम ॥१२६
हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
विरचि विभूषण कुसुम को, सियहि सिंगारत राम ॥१२७॥

भावार्थः--श्रीप्रीतम जू अपने करकंज से फूलों के भूषण वसन बनाकर श्रीप्रिया जू का श्रृङ्गार करते हैं॥१२८॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
रचित कुसुम शृंगार सिय, पहिरि मगन मन राम ॥१२९

भावार्थः--श्रीप्रिया जू के करकंज से बनाये गये फूलों के भूषण-वसन पहन कर श्रीप्राणवल्लभ जू आनन्द मग्न हो जाते हैं ॥ १२८ ॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
मुकुर दिखावत परस्पर, रसिक मनी सियराम ॥१३०॥

शब्दार्थः-मुकुर=दर्पण। रसिकमनी=रसिक शिरोमणि।

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
पान पवावत परस्पर, शोभा निधि सिय राम ॥१३१॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
अलक सँवारत परस्पर, कमलनयन सियराम ॥१३२॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
जनकसुता मुख निरखि के, शशिहि विनिन्दत राम ॥१३३

भावार्थः-श्रीप्रिया जू के मुखारविन्द की शोभा देखकर श्रीप्रियतम जू चन्द्रमा के अवगुण बताकर उसे उनकी समता के अयोग्य ठहरा रहे हैं ॥ १३३ ॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
शशिहि विनिन्दति जनकजा, लखि मयंक मुखराम ॥१३४

शब्दार्थः--मयंक मुख=मुख चन्द्र।

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
जनकसुता के दृग निरखि, पंकज निन्दत राम ॥१३५॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
कमल विनिन्दति जनकजा, कमल नयन लखि राम ॥१३६

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
जनकसुता की छवि निरखि, रतिहि विनिन्दत राम ॥१३७

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
जनकसुता लखि रामछवि, अतिहि विनिन्दति काम॥१३८

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
देत कमलमुख परस्पर, कौर सिया पिय राम ॥१३९॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
मनि मुक्ता बहु वारहीं, निरखि सिया छवि राम ॥१४०॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
सावन सुभग हिंडोलना, सियहिं झुलावत राम ॥१४१॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
लली झुलावत मुदित मन, झूलत रसनिधि राम ॥१४२॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
झूलावत अलिगन अमित, संग झुलत सियराम ॥१४३॥

भावार्थः--असंख्य सखियाँ झुला रही हैं। युगल मनहरण साथ-साथ झूलते हैं तथा कभी कभी दोनों प्रेमवश सखियों को भी साथ बैठाकर झुलाते हैं।

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
नील वसन पहिरे सिया, पीत वसन पिय राम ॥१४४॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
पिय सिर सोहत चन्द्रिका, पिय किरीट अभिराम ॥१४५

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
सुमन मुक्त मनि दाम उर, पहिरे सिय पिय राम ॥१४६॥

भावार्थः--श्रीसिय जू एवं प्राण प्यारे रघुनन्दन जू अपने-अपने हृदय पर पुष्प माला, मोती माला और मणिमाला धारण किये हुये हैं॥ १४७ ॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
अलिगन गावत गीत मृदु, मगन होत सिय राम ॥१४७॥

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
लसत सुछवि सियराम की, घन दामिनि अभिराम ॥१४८

भावार्थः--श्रीप्रिया प्रीतम की एकत्र झाँकी ऐसी फब रही है जैसे घनश्याम और विजली की जोड़ी मनोरम होती है। घनदामिनि का जैसा नित्य संयोग है, जैसे दामिनि कौंधकर अन्धेरी रात में भी अपने साथ रहने वाले घनश्याम का दर्शन करा देतीहै, उसी भांति इन युगल की मनोहारिणी लीलाहै ॥१४८

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम।
राम सिया विहरत दोऊ, शरद रैन सुखधाम ॥१४९॥

शब्दार्थः--शरद रैन=आश्विन के शरदपूनो वाली रात। सुखधाम=सुखदायक रास महल।

हे शुक सुखकर वचन वर, रटहु निरन्तर नाम ।
सिय पिय कहत सुहोत हिय, पूरन सुख अभिराम ॥१५०॥

भावार्थः इस भांति श्रीयुगलकिशोर जू की माधुर्यानन्द-मयी लीला तथा पारस्परिक प्रेमाधिक्य का अनुसन्धान करते हुये युगलनाम जपने से जापक के हृदय में पूर्ण अखंड परमानन्द का संचार होता है ॥ १५० ॥

ललित युगल नामावली, युगल नाम मनि दाम ।
लसत सदा उर रसिक के, निरखि निरखि अभिराम ॥१५१

भावार्थः--उपर्युक्त दिव्य गुणगण परिचायिका, पारस्परिक स्नेहाधिक्य व्यञ्जिका एवं माधुर्यानन्ददायिनी युगल विहार लीला अभिगर्भिता युगल नामावली मणिमाला की भाँति रसिक भक्तों के हृदय की शोभा बढ़ाने वाली है। दर्शनार्थियों के लिये ऐसे नाम जापक के दर्शन सुखवर्द्धक हैं ॥ १५१ ॥

इति श्रीमज्जनकराज किशोरीशरण विरचितायां श्रीसीताराम सिद्धान्तानन्य रस तरङ्गिण्यां श्रीसीताराम युगल नामावली वर्णनोनाम षष्टम स्तरङ्गः ।



❀ सप्तम तरङ्ग ❀

चतुर्थ आवरण में गेन्द, गंजीफा, जलकेलि आदि ललित हास विलास वर्णन



अब चतुर्थ आवरण लखु, मनि मेचक दुति दाम।
लसत कंगूरे पीत पर, कीर माल अभिराम ॥ १ ॥

शब्दार्थः - मेचक = श्याम। कीर = सुग्गा। माल = पंक्ति। अभिराम = मनोहर।

भावार्थः--अब इस सातवीं तरंग में श्रीकनक भवन के चौथे आवरण का वर्णन हो रहा है। इसे पाठक ध्यान दृष्टि द्वारा देखें। परकोटे श्याममणि विनिर्मित है, जिनसे प्रकाश पुंज छिटक रहे हैं। परकोटे के कंगूरे पीत रंग वाले हैं। इन कंगूरों पर कृत्रिम सुग्गों की मनोहारिणी पंक्ति सुशोभित हो रही है। अतः इसको शुकावरण कहते हैं ॥ १ ॥

वार्तिक अनन्य रस तरङ्गिणी के अनुसार इस आवरण में पूर्व ओर जलक्रीड़ा तड़ाग एवं नृत्य चौक हैं, दक्षिण तरफ शतरंज तथा चकई चौक, पश्चिम दिशा में भँवर और गेन्द चौक और उत्तर में गंजीफा और चौपड़ चौक हैं।

पुनि चतुर्थ अवकाश में, युग्म पंक्ति सम जानु।
अद्‌भुत सुछवि विराजहीं, मन्द होत रथभानु ॥ २ ॥

भावार्थः--पुनः चतुर्थ आवरण में चौकों के अतिरिक्त अन्तराल में सभी आवरणों की भांति सात तल्ले वाले दो पंक्तियों में आमने-सामने एक ही प्रकार की बनावट वाले महल हैं। इनकी आश्चर्य शोभा तथा प्रकाश के सामने सूर्य-रथ भी तेजहीन मालूम पड़ता है ॥ २ ॥

❀ महल वर्णन ❀

मध्य चौक सौवर्णमय, चित्रित मनि बहु रंग।
नव खंडे प्रासाद के, भिन्न निरखु तिहि अंग ॥ ३ ॥
प्रथम खंड सौवर्णमय, नील पीत सित लाल।
अरु मेचक यह पंच मनि, बनी चित्र बहु जाल ॥ ४ ॥
द्वितीय खंड नीलाभ मनि, रेखित कनक विचित्र।
गुह गवाक्ष गांगेय मय, जनु घन दामिनि मित्र ॥ ५ ॥

शब्दार्थः--सौवर्ण=सोना। प्रासाद=महल। रेखित=चित्रित। गुह=आलमारी। गवाक्ष=झरोखा, रोशनदान। गांगेय=स्वर्ण मणि। मित्र=सूर्य।

भावार्थः--चारो अन्तरालों के बीच बीच में चौक हैं। उनकी भूमिका सोने की है, जिस पर नाना रंग वाली मणियों के चित्राम बने हैं। चौक के चारों तरफ नौ तल्ले वाले महल हैं। नवो तल्लों के अंग उपांग अलग-अलग रंग वाले हैं ॥३॥

पहले तल्ले की दीवाल सोने की हैं। इस पर नील, पीत,

श्वेत, लाल और श्याम-इन पाँच रंगों की मणियों के अनेक चित्र समूह एवं जाल झरोखे बने हैं ॥ ४ ॥

दूसरा तल्ला नील प्रकाशमयी मणि निर्मित है। उस पर सोने के अदभुत चित्रांकित हैं। आलमारी और झरोखे सुवर्ण-मणिमय हैं। मालूम पड़ता है बादल (नीली दीवार) बिजली (सुवर्ण चित्र) तथा सूर्य (स्वर्ण मणिमय आलमारी, झरोखे) एकत्र जुटे हों ॥ ५ ॥

तृतिय आर्द्र आरक्त मनि, चित्र विलेखित नील।
बिच बिच बूटे बेलि द्रुम, चामीकर छविशील ॥ ६ ॥
जाल गवाक्ष झरोख तहँ, शुभ्र रंग छवि साज।
घन चित्रित जनु दामिनी, ता मधि हंस विराज ॥ ७ ॥

शब्दार्थः-आर्द्र आरक्त=ताजे रक्त के समान गाढ़ा लाल रंग का। विलेखित=खचित। बेलि=लता। द्रुम=वृक्ष। चामीकर=सोना। छविशील=शोभा सम्पन्न। गवाक्ष=रोशनदान। झरोखा=खिड़की। हंस=सूर्य्य।

भावार्थः--तीसरा तल्ला गाढ़े लाल रंग की मणि से रचित है। उस पर नीलमणि के चित्र खचित हैं। बीच-बीच में स्वर्ण के शोभायमान बूटे, लता और वृक्षोंके चित्र बने हैं ॥६

उसमें जाल, रोशनदान तथा खिड़की उजले रंग की मणि से रचित हैं, जिसे बड़ी शोभा हो रही है। मालूम पड़ता है बिजली (स्वर्णिम बेल-बूटे वृक्षों) पर श्याम बादल (नील-मणिमय चित्र) के चित्र बने हैं तथा उसके मध्य में सूर्य (उजले जाल झरोखे) शोभा सज रहा हो ॥ ७ ॥

चौथ खंड पुनि हरित मनि, पद्मराग मनि चित्र।
बिच बिच बूटें पीत रंग, शोभित अतिहि विचित्र ॥ ८ ॥
लसत गवाक्ष विचित्र रँगु, ललित झरोखा जाल।
छज्जन कलित कँगूर पर, शोभित मनि खग माल ॥ ९ ॥

शब्दार्थः--पद्मराग मणि = मानिक। कलित = सुन्दर। मनिखग = मणि रचित कृत्रिम पक्षी। माल = पंक्ति।

भावार्थः--चौथे तल्ले की दीवार हरितमणि रचित है। उस पर लाल माणिक्य के चित्राम बने हैं। बीच-बीच में पीले रंग की मणि के बेल-बूटे कढ़े हैं जिनसे आश्चर्य शोभा हो रही है ॥ ८ ॥

उनमें अनेक रंगों के सुन्दर सुन्दर रोशनदान, जाल, झरोखे सोह रहे हैं। छज्जों पर जो सुन्दर कंगूरे हैं, उन पर मणि के कृत्रिम पक्षियों की पंक्ति शोभा दे रही है ॥ ९ ॥

पंचम लखु मनि पीतमय, मरकत चित्र विचित्र।
लसत ललित शोभा तेहि, घन चित्रित जनु मित्र ॥१०॥
अब लखु षष्टम खंड सो, श्वेत चित्र मनि नील।
जाल झरोखा पीत रँग, अति अदभुत छविशील ॥ ११ ॥
सप्तम सकल सुरंग मनि, रेखित रंग विचित्र।
घन रेखित सन्ध्या समय, पावस ऋतु के मित्र ॥ १२ ॥
अब अष्टम अदभुत निरखु, नील मनीमय भित्त।
भक्ति बिमल वैराग्य सों, करि पवित्र निज चित्त ॥ १३ ॥

रेखित चामीकर चतुर, बिच बिच विद्रुम बूट।
चपला चित्रित सघन घन, उपमा अतिहि अनूठ ॥ १४ ॥

शब्दार्थः--मित्र = सूर्य्य। सुरंग=नारंगी के समान रंग। विद्रुम = मूंगा। चपला = विजली।

भावार्थः--पाँचवे तल्ले को ध्यान में देखिये। पीतमणि की दीवार पर श्याममणि के अद्भुत चित्राम बने हैं। उनकी मनोहारिणी शोभा ऐसी मालूम पड़ती है, मानो सूर्य्य (पीत दीवार) पर श्याम बादल (मर्कतमणि) के चित्र बने हो ॥१०

अब छठे तल्ले का ध्यान कीजिये। श्वेत रंग की दीवार पर नीलमणि के चित्र खचित हैं। जाल झरोखे पीले रंग के हैं। अतिशय आश्चर्य शोभा से सम्पन्न हैं ॥ ११ ॥

सातवें तल्ले की समूची दीवार नारंगी रंग की है। कई रंगों के चित्राम बने हैं। उसकी ऐसी छवि हो रही है, जैसे पावस कालीन सन्ध्या समय डूबते हुये सूर्य की किरणों के कारण बादलों के ऊपर कई रंग दीख पड़ें ॥ १२ ॥

अब आठवें तल्ले की आश्चर्यजनक शोभा देखिये। नीलमणिमयी दीवार है। विमल वैराग्य एवं विशुद्धाभक्ति के द्वारा अपने चित्त को पवित्र बनाकर, इस दिव्यदेश का ध्यान करना चाहिये, अन्यथा ध्यान पथ में ये सारी दिव्य चीजें नहीं आने को ॥ १३ ॥

उपर्युक्त नीली दीवार पर बड़ी चतुराई पूर्ण कारीगरी द्वारा सोने के चित्राम बनाये गये हैं। बीच-बीच में मूंगे के

बेल-बूटे बने हैं। इसकी अद्भुत उपमा दे रहे हैं। मानो सघन श्याम बादल पर बिजली के चित्राम हों। बिजली स्वाभाविक चंचला होती है, यहां चित्र रूप में निश्चला है। यही अनूठापन है॥ १४॥

नववें नौ रंग मनि जटित, रचना राज सुदेश।
हृदय निरन्तर ध्यान यह, करत उमेश रमेश॥ १५॥

शब्दार्थः--राज=शोभित हो रहा है। सुदेश=सुन्दर। उमेश=श्रीशिवजी। रमेश=श्रीविष्णु।

भावार्थः--अब नवमें तल्ले का ध्यान बताते हैं। इसमें नौ रंगों की मणियों से जटित सुन्दर रचना खूब शोभा दे रही है। इन दिव्य महलों का ध्यान अपने-अपने हृदय में श्रीशिव विष्णु जैसे ईश्वर वर्ग सदा किया करते हैं॥ १५॥

फूल वृक्ष फल वृक्ष बहु, चित्रित यथा स्वरूप।
कीर मयूरादिक सकल, तिन पर पक्षि अनूप॥ १६॥
छज्जन पर छाजत सुछवि, मनिमय खग बहु रंग।
देखिय सो अचरज अधिक, बोलत पवन प्रसंग॥ १७॥
छज्जन मोतिन झालरी, मनि तोरन सुविचित्र।
ध्वज पताक कंचन कलस, मनहु उदय बहु मित्र॥ १८॥

शब्दार्थः--प्रसंग=लगने से। तोरन=वन्दनवार। मित्र=सूर्य।

भावार्थः--ऊपर की पंक्तियों में दीवालों के जो चित्राम कहे गये हैं, उनमें बहुत से फूल के वृक्ष हैं, बहुत से फल वृक्ष हैं।

इनके जैसे स्वरूप होते हैं, हूबहू उसी प्रकार चित्रों में प्रदर्शित हैं। उन वृक्षों पर सुग्गे, मयूरादिक अनुपम पक्षी चित्रित हैं ॥ १६ ॥

महलों के छज्जों पर मणि के कृत्रिम अनेक रंग के पक्षियों की शोभा छा रही है। हवा लगने से वे कृत्रिम पक्षी अपनी स्वाभाविक बोली में चहचहाते हैं। यद्यपि यह उनमें लगे हुये यंत्रों की खूबी है, फिर भी बाहर से देखने वालों को बड़ा आश्चर्य होता है ॥ १७ ॥

छतों से मोतियों की झालरें लटक रही हैं। मणिमय विचित्र वन्दनवार बन्धे हैं। ऊपर ध्वजा पताकायें फहरा रही हैं। स्वर्ण के कलश बने हैं, सो ऐसे प्रकाशयुक्त फब रहे हैं, मानो असंख्य सूर्य्य उगे हों ॥ १८ ॥

द्वार पिधान विचित्र रँग, कहूँ नील कहुँ पीत।
कहूँ लाल कहुँ रक्त अति, कहुँ मेचक कहुँ सीत ॥ १९ ॥
कंचन तार सुकलित सो, बूटे लिखे विचित्र।
मनिन सितारे तासु मधि, उदय तार ससि मित्र ॥२०॥
कनक जाल मनि जाल बहु, मुक्तन जाल विराज।
कंचन किंकिनि सबनि में, मधुर मधुर रव साज ॥ २१ ॥

शब्दार्थः--पिधान=पर्दा । सीत=सफेद। सितारे= गोल-गोल छोटी चमकी। रव=आवाज।

भावार्थः--द्वारों पर अनेक रंगों के परदे लगे हैं। कहीं

नीला, कहीं पीला, कहीं लाल, कहीं रक्तवर्ण का, कहीं श्याम, कहीं सफेद परदे पड़े हैं ॥ १६ ॥

उन परदों पर सोने के तार से निर्मित विचित्र बेल-बूटे कढ़े हैं। उनके बीच-बीच में मणियों की चमकी लगी है। क्या मालूम पड़ता है, मानो अनेक सूर्य, चन्द्रमा और तारागण एकत्र उगे हों ॥ २० ॥

परदों के छोर में कहीं सोने की, कहीं मणियों की, कहीं मोतियों की जाली लगी हैं। सबों में सोने के घुंघरू लगे हैं। हटाने, लगाने समय मीठी-मीठो आवाज होती है ॥ २१ ॥

अन्तराल प्रसाद युग, पच्छ पाँति इक रंग ।
बनी विचित्र समेत सब, अपिधानादिक अंग ॥२२॥

शब्दार्थः--युग पच्छ=दोनों ओर। इक रंग=प्रश्नोत्तरी ढंग से। अपिधानादिक=परदे इत्यादि। प्रासाद=महल।

भावार्थः--चौक के बाहर अन्तराल में दोनों ओर से पंक्तिवद्ध महल प्रश्नोत्तर रूप में (समान आकार प्रकार वाले) बने हैं। इन महलों के परदे आदि सभी अंग विचित्र रीति से बने हैं ॥ २२ ॥

यहि पद्माकर वापिका, फूल वाग बहु रंग।
कूजत सारस हंस गन, गुंजत मृदु रव भृंग ॥२३॥
बनि विचित्र ढिग बैठकें, वेदी चित्र विसाल ।
कोउ आच्छादित राजहीं, कोउ छादित मनि जाल ॥२४॥

शब्दार्थः--पद्माकर = कमल सरोवर। रव = ध्वनि। भृंग = भ्रमर। आच्छादित = छत वाले। छादित = छाया की हुई।

भावार्थः--इस आवरण में बहुत से सरोवर, बावली, नाना रंगों के पुष्पों की वाटिकायें बनी हैं, जिनमें सारस, हंस गण कलरव कर रहे हैं। भ्रमर मधुर स्वर से गुंजार कर रहे हैं॥ २३॥

समीप ही में चित्र खचित विशाल वेदिकाएँ तथा विचित्र बैठकें बनी हैं। कोई तो छत वाले छायादार हैं, किसी-किसी के ऊपर मणि की जाली बनी है॥ २४॥

चित्रित मनि खंभावली, रंभावलि दरसाय।
रमत लली लालन तहाँ, बहु गुन छवि सरसाय॥२५॥
रमत अलीगन अमित तहँ, सौध रक्षिका वृन्द।
समय समय निवसत तहाँ, जानकि कौशल चन्द॥२६॥

शब्दार्थः--रंभावलि = कदली स्तम्भ की पंक्ति। सौध = महल। रक्षिका = रखवारी करने वाली। वृन्द = यूथ। चन्द = चन्द्रमावत आह्लादक।

भावार्थः--उपर्युक्त महलों में मणि चित्राम से खचित खंभों के समूह अलग से कदली स्तम्भों की पंक्ति की भाँति दीख पड़ते हैं। इनमें श्रीप्रिया प्रियतम जू विहार करते हैं। उनकी सुमधुर लीलाओं में बहुत से दिव्य गुणगण अभिव्यञ्जित होते हैं तथा अपार सुन्दरता निखर पड़ती है॥ २५॥

उपर्युक्त महलों की रखवारी करने वाली असंख्य सखी गण यूथ की यूथ वहां विहरती रहती हैं। समय-समय पर श्री-जनकराजदुलारी जू तथा कौशल प्रदेश को आह्लादित करने वाले श्रीराघव जू भी उनके मध्य में निवास करते हुये रमण करते हैं ॥ २६ ॥

बिछे पलंग विचित्र बहु, अति कोमल पय फेन।
बिछे बिछौना पाटमय, मनहुँ निन्द के ऐन ॥ २७॥
बिछे गलोचे रेशमी, रंग रंग के भिन्न।
कहुँ करपास विचित्र अति, कहूँ तथा मनि चिन्ह ॥२८॥
कहुँ पाटी पाटीरमय, शीतल परम सुगन्ध।
बिछी विशाल सुकक्ष में, प्रान्त पाटमय बन्ध ॥ २६ ॥

शब्दार्थः--पयफेन=दूधफेनवत सफेद और कोमल। पाट=रेशमी। करपास=सूती। मनिचिन्ह=मणि आकृति के छींट वाले। पाटी=शीतलपाटी। पाटीरमय=चन्दन सिंचित। प्रान्त=छोर। कक्ष=कमरा।

भावार्थः--उन महलों में अनेक प्रकार के चित्र विचित्र पलंग बिछे हैं। उन पर दूधफेन के समान उज्ज्वल और सुकोमल रेशमी बिछावन बिछे हैं। उन पर पौढ़ते ही निन्द आने लगती है, मानो निन्द का निवास ही हो ॥ २७ ॥

फर्श के ऊपर कहीं भिन्न-भिन्न रंग के रेशमी गलीचे, कहीं अति विचित्र सूती गलीचे बिछे हैं। कहीं-कहीं उपर्युक्त गलीचों पर मणियों की बूटेदार छींटें बनो हैं ॥ २८ ॥

कहीं-कहीं बड़े-बड़े कमरों के फर्श पर अति शीतल सुगन्धित, चन्दन से अभिषिंचित, शीतलपाटी बिछी है, जिसके छोर रेशम के सूत से बन्धे हैं ॥ २९ ॥

छत बीतान सुवसन की, बनि विचित्र बहु रंग।
करगाहा पट्ट पाट के, कलधर उड़त विहंग ॥ ३० ॥
कहुँ वितान सो चित्रमय, वसन सरिस दरसाय।
मनि खंभा रंभा अधिक, रवि संभा सरसाय ॥३१॥

शब्दार्थः--बीतान (वितान)=चंदोवा। करगाहा= झालर। कलधर=कलपुर्जे वाले कृत्रिम। विहंग=पक्षी। संभा=समान प्रकाशमान।

भावार्थः - छतों में भीतर से रंग विरंग के चित्र विचित्र उत्तमोत्तम वस्त्रों के चन्दोवे तने हैं। उनमें झालरें चतुराई पूर्वक रेशम की बनी हैं। कलपूर्जे द्वारा कृत्रिम पक्षी उन पर उड़ते देख पड़ते हैं ॥ ३० ॥

कहीं छतों में चन्दोवों के चित्र बने हैं। अलग से देखने पर वस्त्र के बने चन्दोवों का भ्रम होता है। कदली थंभ से भी अधिक रमणीक मणिमय खंभों से सूर्य के समान प्रकाश सोह रहा है ॥ ३१ ॥

❀ विविध खेल ❀

कहूँ नागरी वृन्द बहु, फूलन गेन्द बनाय।
खेलत बहु कौतुक करत, दौरि दौरि झुकि जाय ॥ ३२ ॥

खैंचि चलावत परस्पर, हँसत बजावत तार ।
कोउ चपला इव चंचला, करत कुसुम की मार ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ: - तार = ताली । चपला = विजली ।

भावार्थः--कहीं-कहीं कौतुक कुशला नायिकायें यूथ की यूथ फूलों का गेन्द बनाकर खेलती हैं। खेलने के समय बल-खाती हुई दौड़ती हैं तथा और भी अनेक ख्याल करती हैं ॥ ३२

गेन्द को कसकर एक दूसरे की ओर फेंकती हैं। ताली बजा-बजा हँसती हैं । कोई-कोई विजली के समान चंचल स्वभाव वाली हैं, वे आपस में एक दूसरे पर फूलों का बौछार करती हैं ॥ ३३ ॥

कहुँ गावत बहु रंग भरि, बाजन विविध बजाय ।
तीन ग्राम सातो स्वरन, मूर्च्छन इकइस लाय ॥ ३४ ॥

भावार्थः--कहीं प्रेमानन्द में निर्भर होकर नाना वाद्य यंत्र बजाती हुई गान करती हैं। गान में संगीत के तीनों सप्तक (ग्राम), १ निषाद, २ ऋषभ, ३ गान्धार, ४ षड्ज, ५ मध्यम, ६ धैवत और ७ पंचम-इन सातों स्वरों के तथा इक्कीस मूर्च्छनाओं के प्रयोग करती हैं ॥ ३४ ॥

कहुँ मत्त यौवन भरी, करति केलि जल पैठि ।
कहुँ खेलति चन्द्रानना, चौपर चौक सुबैठि ॥ ३५ ॥
कहुँ गंजीफा ख्याल रत, कहुँ सतरंजी साज ।
खेलत सब सिय सहचरी, रति सों अधिक विराज ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः--चन्द्राननी=चन्द्रमुखी नायिका।

भावार्थः--कहीं युवावस्था के मद से उन्मत नायिकायें जल में घुसकर जलक्रीड़ा करती हैं। कहीं चन्द्रमुखी सखी चौपड़ चौक में बैठकर चौपड़ खेलती हैं॥ ३५॥

कहीं गंजीफा खेलने में लगी हैं, कहीं शतरंज का खेल हो रहा। श्रीसिय स्वामिनी जू की सभी सहचरियाँ इस प्रकार के आमोद प्रमोद में विविध खेल कौतुक करती हैं। इनकी सुन्दरता रति से अनन्त गुणाधिक है॥ ३६॥

इति श्रीमज्जनकराज किशोरीशरण विरचितायां श्रीसीताराम सिद्धान्तानन्य रस तरङ्गिण्यां ललित हास विलास वर्णनोनाम सप्तम स्तरङ्गः।



❀ अष्टम तरङ्ग ❀

पाँचवें सारसावरण में महलादि की ललित शोभा वर्णन



लखु पंचम अवकाश में, पिङ्गल वर्णावरण ।
तापर माल कंगूर को, लसत श्यामता वरण ॥ १ ॥
कलित कँगूरन पर लसत, मनिमय सारस माल ।
पुनि पंचम अवकाश में, रचना सकल विशाल ॥ २ ॥

शब्दार्थः--आवरण=कोट । माल=पंक्ति । कलित=सुन्दर ढंग से निर्मित । विशाल=विस्तार । पिङ्गल=पीला । अवकाश=आवरण ।

भावार्थः--अब पाँचवें आवरण का ध्यान कीजिये । परकोटे पीले रंग के हैं । छज्जों पर कंगूरों की पंक्ति श्याम रंग की सुशोभित हो रही है ॥ १ ॥

सुनिर्मित कंगूरों पर मणिमय कृत्रिम सारस पत्ती की पंक्ति सुशोभित हो रही है । (अतः इसका नाम सारसावरण है) पुनः इस पाँचवें आवरण के अन्तराल की समस्त रचनायें सुविस्तृत हैं ॥ २ ॥

मध्य चौक मनहरन अति, वरन वरन मनि खंभ ।
चहुँ फेर मनि वेदिका, रचना परम अचंभ ॥ ३ ॥

उर्ध्व खंड नौ रंग नौ, प्रथम हंस गुन देखु।
चित्रित चामीकर रुचिर, विच बिच नील विशेषु ॥ ४ ॥
द्वितीय नील गुन कान्ति बहु, पद्मराग कृत जाल।
बिच बिच बूटे पीत गुन, ता मधि विन्दुक लाल ॥ ५ ॥
तृतिय पीत गुन वाल रवि, सम शोभित अति कान्ति।
ता मधि शोभित वाटिका, चित्र द्रुमन की पाँति ॥ ६ ॥

शब्दार्थः अचंभ=आश्चर्यजनक। उर्ध्व खंड=ऊपर वाले तल्ले। हंस=सूर्य। गुण=रंग। चामीकर=सोना। कान्ति=प्रकाश। पद्मराग=माणिक्य। वाल रवि=उदय-कालीन सूर्य मंडल। वाटिका=चित्रांकित फुलवारी। द्रुमन=वृक्षों की।

भावार्थः--चारो तरफ अन्तरालों के बीच में जो चार चौक हैं, उनकी रचना अतिशय मनोहारिणी है। चौक के चौतरफा वाले नौ खंडे महलों की खंभावली विभिन्न रंग वाली मणियों से रचित हैं। चारो ओर मणिमयी वेदिकायें बनी हैं, जिनकी रचना अति आश्चर्यजनक है ॥ ३ ॥

चौक महल के ऊपर नौ तल्ले हैं। नवो तल्ले नौ रंग वाले हैं। पहला तल्ला सूर्य के समान उज्ज्वल रंग का तथा प्रकाशयुक्त है। इसकी दीवारों पर सोने के सुन्दर चित्राम बने हैं। बीच-बीच में नीलमणि की रचना होने से विशेष शोभा सम्पन्न हो गये हैं ॥ ४ ॥

दूसरा तल्ला नीले रंग का है। उसमें बहुत प्रकाश है।

लाल माणिक्य के उसमें जाल झरोखे बने हैं। बीच-बीच में पीले रंग के बेल-बूटे कढ़े हैं। उन बूटों के मध्य-मध्य में लाल-लाल बून्दें जड़ी हैं ॥ ५ ॥

तीसरा तल्ला उदयकालीन सूर्यमंडल के समान सुनहला एवं अति प्रकाशमान सोह रहा है। उन दीवालों पर सुन्दर फुलवारी तथा उनमें स्थित वृक्षों की पंक्ति चित्रांकित हैं ॥ ६ ॥

चौथ हरित गुन मनि रचित, चामीकर चित्राम ।
बिरचित रचना मंदिरन, विहरत नागर वाम ॥ ७ ॥
पंचम पद आरक्त गुन, मरकत चित्रित प्रान्त ।
ता मधि चित्रित नारि नर, होय यथारथ भ्रान्त ॥ ८ ॥
षष्टम खंड सुसुभ्र गुन, गुनित नील गुन प्रान्त ।
बिच बिच बूटं रक्त गुन, अरुन विचित्र उपान्त ॥ ६ ॥
मध्य चित्र अति चित्रमय, प्रमदा गन जल रंग ।
बहु नग्ना मग्ना सलिल, लग्ना लालन अंग ॥ १० ॥

शब्दार्थः रचना मन्दिरन = मंदिरों के चित्र । नागर = नायक । वाम = नायिका । पद = तल्ला । प्रान्त = किनारा । भ्रान्त = भ्रम, धोखा । सुशुभ्र = अति उज्ज्वल । गुनित = रचित । उपान्त - किनारे का अन्तिम छोर । चित्रमय = आश्चर्य रूप । जलरंग = जल क्रीड़ा करती हुई । मग्ना = डूबी हुई । लग्ना = लिपटी हुई ।

भावार्थः - चौथे तल्ले की दीवार हरे रंग की मणि से विनिर्मित है। उस पर सोने के चित्राम बने हैं। चित्राम में

मन्दिर समूह बने हैं। प्रत्येक मन्दिर में एक-एक रूप से चतुर चूड़ामणि श्रीराघव जू एक-एक नायिका के संग रंग करते हुये चित्रित हैं॥ ७॥

पाँचवे तल्ले की दीवार लाल रंग की बनी है। चारो तरफ किनारे-किनारे श्याम मणि के चित्राम बने हैं। उनमें नायक नायिका के जो चित्र बने हैं, उनके अवलोकन से भ्रम होता है कि ये स्वयं नागर नागरी ही हैं, चित्र नहीं हैं॥ ८॥

छठे तल्ले की दीवाल श्वेत रंग की मणि से रचित है। किनारी नील रंग से रचित है। बीच-बीच के बेल-बूटे लाल रंग के हैं। किनारे का अन्तिम छोर अरुण रंग होने से अद्भुत शोभा छा रही है॥ ९॥

उपर्युक्त दीवालों की किनारी का वर्णन करके, अब दीवालों के मध्यबर्त्ती चित्रों का वर्णन करते हैं। मध्य वाले चित्र तो आश्चर्य रूप ही हैं। नायिकायें जलक्रीड़ा कर रही हैं। बहुत सी वनितायें नंगी होने के कारण लज्जा निवारणार्थ जल में डूबी हैं। वहाँ गोप्य स्थल समझकर प्यारे श्रीरघुलाल जू से सर्वाङ्ग समालिंगित हैं, पर जल निर्मल होने के कारण बाहर वाली भी वह केलि स्पष्ट देख रही है॥ १०॥

पुनि सप्तम श्रृङ्गार रस, वरन अरुन गुन प्रान्त।
पीत रंग अति रुचिर तिहि, शोभित उभय उपान्त॥११॥
शोभित अरुन सुप्रान्त पर, नील पीत मनि वेलि।
श्वेत हरित रेखित दोऊ, शोभा सकल सकेलि॥१२॥

मध्य नदी सरयू लिखी, ता मधि नौका केलि।
उभय कूल अदभुत लिखे, रचना सकल सकेलि ॥१३॥

शब्दार्थः--शृङ्गार रस बरन=शृङ्गाररस का रंग श्याम है। उभय उपान्त=दोनों तरफ की किनारियों के अन्तिम छोर। बेलि=बेलबूटे। रेखित=चित्र बने हैं। सकेलि (द्वि-अर्थक है)=१ इकट्ठा करके, २ केलि के सहित। कूल=किनारे।

भावार्थः--पुनः सातवें तल्ले की दीवाल श्याम वर्ण की है। किनारी लाल रंग की है। किनारियों के दोनों छोर पीत रंग के होने से नीलपति के साथ लाल रंग अति शोभायमान हो रहा है॥ ११॥

उपर्युक्त लाल किनारी पर नीली पीली मणियां के बेल-बूटे कढ़े हैं। श्वेत एवं हरित दोनों मणियों के बीच-बीच में चित्राम बने हैं। बीच वाले चित्राम में मालूम पड़ता है कि सारी शोभा बिटुर कर यहीं इकट्ठी हो गई है॥ १२॥

प्रसङ्गः--सप्तम खंड की दीवालों के किनारे उपकिनारे के रंग चित्रों का वर्णन करके, अब उन दीवालों के मध्य भाग वाले चित्रों की चर्चा हो रही है।

मध्य भाग में सरिताम्बरा श्रीसरयूजी का चित्र बना हैं। उनका मध्य धारा में नौका जल विहार चित्रित है। श्री-सरयू जी के दोनों तट आश्चर्य ढंग से चित्रित हैं। इन सारी रचनाओं में नायिकाओं के संग श्रीरघुनायक जू की केलि ही प्रदर्शित है। (सकेलि=सकेलि)॥ १३॥

अष्टम अदभुत–रस वरन, रस सिँगार गुन प्रान्त ।
दुहुँ उपान्त वत्सल वरन, प्रान्त चित्र गुन शान्त ॥१४॥
दोउ उपान्त श्रृङ्गार गुन, चित्रित चतुर सुवेलि ।
मध्य सबारी चतुर विधि, लिखी मधुर रंग रेलि ॥१५॥
नवम नवल गुन दास्य सम, नौ रँग मनी सँवारि ।
जाल झरोख गवाक्ष बहु, ध्यान धरत कामारि ॥१६॥

शब्दार्थः--अदभुत रस वरन=अद्भुत रस का रंग पीला होता है । वत्सल वरन=वात्सल्य रस का गाढ़ा लाल रंग होता है । शान्तगुन=शान्त रस का रंग श्वेत होता है । दास्यगुन=चित्र विचित्र । कामारि=श्रीशिवजी । मधुर रंग=ऐकान्तिक केलि । रेलि=भरपूर करके ।

रसों के रंग के विषय में शास्त्रीय प्रमाणः--

श्यामो भवति श्रृङ्गारः सितो हास्यः प्रकीर्तितः ।
कपोतः करुणश्चैव रक्तो रौद्रः प्रकीर्तितः ॥
गौरो वीरस्तु विज्ञेयः कृष्णश्चैव भयानकः ।
नील वर्णस्तु वीभत्सः पीतश्चैवाद्भुतः स्मृतः ॥

--इति भरतमुनि कृत नाट्य शास्त्र षष्टम अ० श्लोक ४२,४३॥

"श्वेतश्चित्रो ऽरुणः शोणः श्मामः"--क्रमशः शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और श्रृङ्गार रस के रंग श्रीहरि भक्ति रसामृत सिन्धु की पञ्चमी स्थायिभाव लहरी श्लोक ६६ में बताये गये हैं ।

भावार्थः--आठवें तल्ले की दीवाल पीली है । किनारी

श्याम रंग की है। किनारी के दोनों छोर गाढ़े लाल रंग के हैं। किनारी में चित्राम श्वेतमणि कृत हैं ॥ १४ ॥

किनारी के दोनों छोरों में चतुराई पूर्वक जो बेल-बूटे चित्रित हैं, वे श्याम रंग वाली मणि से रचित हैं। दीवाल के मध्य भाग में घोड़े, हाथी, रथ और पालकी-चारों प्रकार की सवारियों के चित्र बने हैं। ऐकान्तिक केलियों के चित्राम भरपूर बने हैं ॥१५॥

नवमें तल्ले की दीवाल नौ प्रकार की मणियों के मिश्रण से सम्हाल पूर्वक चित्र विचित्र (दास्य रस वर्ण) बनी है। इसी प्रकार असंख्य जाली, खिड़की, रोशनदान भी बने हैं। इन महलों का ध्यान काम शत्रु श्रीशिवजी भी करते हैं, अथवा इन महलों का ध्यान करते ही ध्याता जित-काम बन जाता है ॥ १६ ॥

परदे परे विचित्र रँग, बिछे बिछौना खास।
तनी चान्दनी विविध रँग, पट्ट पटमय हथवास ॥ १७ ॥
अन्तराल मन्दिर मधुर, उभय अवलि सम सोह।
गोख झरोखे जाल बहु, रचना मुनि मन मोह ॥ १८ ॥
उभय अवलि के मध्य में, अति विशाल अवकास।
चामीकर चपला चला, चपल कला बहु वास ॥१९॥
चहुँ आसा मेवान के, कुट कलाप सम सोह।
सफल सफूल सपर्न नित, ऋतु वसन्त सन्दोह ॥ २० ॥

शब्दार्थः--पटु=चतुराई पूर्वक निर्मित । पाटमय=रेशम की । हथवास=झालर । अवलि=पंक्ति। गोख=छोड़ी खिड़की । झरोखा=बड़ी खिड़की। चामीकर=सोने की। अचला=पृथ्वी, भूमि । चला=लक्ष्मी । चपल=क्षण भंगुर। कला=ऐश्वर्य। आशा=दिशा । कुट=वृक्ष, (वृक्षो महीरुहः शाखी विटपी पादपस्तरुः । अनोकहः कुटः शालः पालाशी द्रु द्रुमागमाः ॥-इत्यमरे) कलाप=समूह । संदोह=समूह ।

भावार्थः--चौक वाले नौ खंड महलों के द्वारों पर नाना रंग बिरंग के परदे पड़े हैं। खाश श्रीप्रिया प्रीतम जू के उपयोगार्थ बिछावन बिछे हैं। नाना रंग के चन्दोवे तने हैं, उनमें चतुराई पूर्वक निर्मित कपड़े की झालरें लगी हैं ॥ १७ ॥

चौकों के बाहर अन्तराल के महल बड़े सुन्दर (मधुर) हैं, महलों के दोनों पंक्तियाँ समान बनावट वाली हैं। उन महलों में जाल झरोखे गोखे आदि की अनन्त रचनायें मुनियों के मन को भी मोहने वाली हैं ॥ १८ ॥

चौक के बाहर अन्तराल में जो दो पंक्तियों के सतखंडे प्रश्नोत्तरी महल बने हैं, उनके बीच में खाली जगह बहुत बिस्तृत है। वहां स्वर्णमयी (चामीकर) भूमि (अचला) है। उस स्वर्णमयी भूमि में ऐसे बहुमोल मणिगण जड़े हैं, मानो लक्ष्मी (चला की अनन्त (बहु) विभूति (कला) जो प्रकृति मंडल के लिये क्षण भंगुर (चपल) है, यहाँ स्थायी रूप से निवास करती हो ।

अथवा, उस दिव्य विहार देश में ऐसी अनन्त (बहु) नायिकायें वास करती हैं, जो पातिव्रत्य में (अचला) अडिग हैं, श्रीप्रियतमजू के साथ केलि-कौतुक करने में चंचला (चला) हैं तथा कोक कला में चपल हैं ॥ १६ ॥

इस पाँचवें आवरण के अभ्यन्तर चारों दिशाओं में मेवाओं के वृक्ष समूह समान भाव से शोभायमान हो रहे हैं। ये नित्य पत्ते, फूल और फल से सम्पन्न रहते हैं। मानो मेवा-वृक्ष के व्याज से बसन्त समूह अनंत रूप से यहाँ बसे हों ॥२०॥

सारस हंस चकोर बहु, कल कपोत रट रंग।
पुष्करिणी पुष्कर विमल, पुष्कर स्वादित भृंग ॥ २१ ॥
रत्न रचित वीनाह सुठि, अमित सोह उदपान।
दीर्घ दीर्घिका दिव्य द्युति, रचना सकल निधान ॥ २२ ॥
श्रोनि मात्र जल में बनी, रचना ऊर्ध्व प्रयन्त।
सकल सकल रत्नन जटित, नकल अकल भावन्त ॥२३॥

शब्दार्थः--कल=सुन्दर। रट=कलरव करते हैं। रंग=प्रेमानन्द में। पुष्करिणी=कमल सरोवर। पुष्कर=१ जल, २ कमल। भृंग=भ्रमर। वीनाह (विनाह)=कुएँ के मुख का जालीदार ढकना। उदपान=कूप। दीर्घ=बड़ी-बड़ी। दीर्घिका=बावली। द्युति=कान्ति, प्रकाश। निधान=भंडार। श्रोनि (श्रोणि)=कटि, कमर। (कटिः श्रोणिः ककुद्मती--इत्यमरे)। ऊर्ध्व=ऊपर। प्रयन्त (पर्यन्त)=तक:

सकल=सब, कलायुक्त। नकल=रचना। अकल=बुद्धि। भावन्त=प्रिय लगती है।

भावार्थः—असंख्य सारस, हंस, चकोर, कपोत आदि पक्षी प्रेमानन्द में निर्भर होकर कलरव करते हैं। कमल से भरे सरोवर का जल निर्मल है। उन कमलों के मरकन्द का भ्रमर-गण आस्वादन कर रहे हैं॥ २१॥

अनन्त शोभायमान कूप हैं, उन पर सुन्दर रत्न रचित जालीदार ढक्कन पड़े हैं। बड़ी-बड़ी बावलियों की कान्ति दिव्य एक रस बनी रहती है। इन सबों की सुन्दरता देखकर यही अनुमान होता है कि समस्त शिल्पकलाओं का मूल भंडार यही हैं॥ २२॥

कमर भर जल से लेकर ऊपर तक घाट की रचना बनी है। सारी रचनायें समस्त उत्तमोत्तम कलाओं से युक्त रत्नों से बनी हैं, जो बुद्धि को अति प्रिय लगती हैं॥ २३॥

बने जलोर्द्धग जंत्र जहँ, प्रति भित्ती अनुकूल।
चामीकर कल फेरिये, चढ़े वारि करि हूल॥ २४॥
हेम रूप के हौद बहु, भर तामें जल आय।
मधुर स्वच्छ मुक्ता वरन, स्वाद सुधा सरसाय॥ २५॥

शब्दार्थः - जजोर्द्धग=जल को ऊपर ले जाने वाला। जंत्र=कल। भित्ती=दीवाल। अनुकूल=जैसी दीवाल है, वैसा ही सीधा कल है, जिससे उसमें चिपका रहे। वारि=जल। करि हूल=कोलाहल पूर्वक। हेम=सोना। रूप=चान्दी।

भावार्थः — महलों की प्रत्येक दीवाल से चिपक कर सटे हुये असंख्य जल को ऊपर चढ़ाने वाले स्वर्ण के कल बने हैं, जिनके द्वारा नवों खंडों के प्रत्येक कमरे में जल पहुँचता है। कल घुमाने पर जल कोलाहल पूर्वक वेग से ऊपर को चढ़ जाता है ॥ २४ ॥

सोने चान्दी के बहुत से हौज बने हैं। उनमें भी जल आकर भर जाता है। जल मोती के रंग का निर्मल है। इसका स्वाद अमृत के समान है ॥ २५ ॥

कक्ष कक्ष प्रति दक्ष अलि, लक्षन लक्ष अपार।
जानकि जान सुजान हित, सब अँग रखैं सँवार ॥ २६ ॥
बिछे गलीचे पाट पटु, लटु मुक्ता मनि सोह।
रवि मयंक मंडल कलित, छत वितान सो जोह ॥ २७ ॥
विरचित चामीकर चतुर, बिछे पलंग अपार।
कनक तार कल कलित रुचि, पाटमई नींवार ॥ २८ ॥
विछे बिछौना नर्म अति, सेज वंध पट डोर।
मोतिन मय फुन्दे बने, चहुँ पायन चहुँ ओर ॥ २९ ॥

शब्दार्थः--कक्ष = कमरे। दक्ष = कैंकर्य कुशला, कला कुशला। लक्षन लक्ष = लाखों की लाखों। अपार = असंख्यक। जानकिजान = श्रीजानकी जू तथा श्रीप्राणवल्लभ जू। सुजान = प्रीति रीति के मर्मज्ञ। सब अंग = अपने सर्वांग शृङ्गार को, सर्वांग पूर्ण सेवा सामग्रियों को। पाट = रेशमी। पटु = उपयोग में सर्वांग पूर्ण। लटु (लट्टू) = लटकाने के गुच्छे। रवि

मयंक मंडल कलित=सूर्य मंडल तथा चंद्र मंडल के चित्र (साक्षातवत्) बने हुये। वितान=चन्दोवा। चामीकर= सोना। चतुर=चतुराई से बने। कनक=सोना। कलित= निर्मित। नोवार=पलंग बुनने वाली मोटी चौड़ी पट्टी।

भावार्थ:--उन महलों के प्रत्येक कमरे में कैंकर्य एवं सर्व कलाओं में कुशला सखियाँ निवास करती हैं। ऐसी सखियाँ लाखों की लाखों असंख्य हैं। सर्वज्ञ शिरोमणि श्रीप्रिया प्रीतम जू के सेवार्थ अपने अंगों को वस्त्रालंकारों से तथा सर्वांग पूर्ण सेवा उपकरणों को सम्हाल कर रखे रहती हैं॥ २६॥

सर्वज्ञ शिरोमणि (सुजान) कहने का तात्पर्य पाँचवी तरंग के अन्तिम दोहे में पहले ही कह आये हैं कि:--

"सबनि भक्ति ऊरी करत, पिय प्यारी तहँ आय।"

प्रत्येक सखी के महल में सुन्दर रेशमी गलीचे बिछे हैं। छत में सूर्य मंडल एवं चन्द्र मंडल के अनुकरण वाले चित्रामों से अलंकृत चन्दोवा तना हुआ ध्यान में देखियेगा। पुनः उन चन्दोवों में मोती तथा मणि के लट्टू लटक रहे हैं॥ २७॥

वहाँ सोने से चतुराई पूर्वक रचित असंख्य सुन्दर पलंग बिछे हैं। पलंग रेशमी निवार से बुने हैं उस निवार पर सोने के तार का सुन्दर सुरुचि पूर्ण कलावत्तू किया हुआ है॥ २८॥

पलंगों पर सुकोमल बिछावन बिछे हैं। शय्या रेशमी डोरी से कसी हुई हैं, जिससे खूब तनो रहे। पलंग के चारों पावों में चारों ओर से मोतियों के झब्बे बन्धे हैं॥२९॥

तहँ प्रमदा कल गावहीं, होत महा प्रतिध्वान।
स्वर नभ मंडल छावहीं, सुनि मयूर नटवान ॥ ३० ॥
द्वार द्वार परदा परे, मनिमय जाल विचित्र।
तांग्न मोतिन झालरी, उदय चित्र बहु मित्र ॥ ३१ ॥
बने घाट कासार के, चामीकर चहुँ पास।
फूले बहु कह्लार तहँ, मधुकर मुखर प्रकास ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः--प्रमदा=यौवनोन्मत्त नायिकायें। कल=सुन्दर। प्रतिध्वान=वायु मंडल में टकराकर लौटी हुई आवाज। नटवान=नृत्य करने लगते हैं। मित्र=सूर्य। कासार=सरोवर। कह्लार=सफेद कमल। मुखर=गुंजार करते हुये।

भावार्थः--उपर्युक्त महलों में यौवनोन्मत्त नायिकायें संगीत रीति से सुन्दर गान करती हैं। उसकी बड़ी भारी प्रतिध्वनि होती है। वह ध्वनि आकाश मंडल में छा जाती है। सुनकर मयूर वृन्द घनगर्जन के भ्रम से नाचने लगते हैं ॥३०॥

प्रत्येक दरवाजे पर परदा पड़ा है। परदे के प्रान्त में नाना रंग के मणिमय जाल लगे हैं। ऊपर वन्दनवार वन्धा है। मोतियों की झालरें लटक रही हैं। चन्दोवे में जो सूर्य के चित्र बने हैं, सो मालूम पड़ता है मानो बहुत से साक्षात् सूर्य उगे हों ॥ ३१ ॥

सरोवर में चारों तरफों से सोने के घाट बन्धे हैं। जल

में बहुत से सफेद कमल खिले हैं। उन कमलों पर भ्रमरों की भनभनाहट प्रकट हो रही है ॥ ३२ ॥

दादुर झींगुर गावहीं, नटत मयूर मयूरि ।
नभ छाई कारी घटा, रही रम्यता पूरि ॥ ३३ ॥
अलि वीना लै गावहीं, मत्त राग मल्हार ।
प्यारे को हिय ध्यान करि, सजल नैन कल्हार ॥ ३४ ॥
चहुँ दिशि दमकत दामिनी, सुखमय वन सुखधाम ।
मधुर मधुर बून्दें परत, विरह बढ़ावत वाम ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ--रम्यता=सुन्दरता ।

प्रसङ्ग:--उस दिव्य देश में श्रीयुगलकिशोर जू के इच्छानुकूल ऋतुओं के आविर्भाव तिरोभाव होते रहते हैं। इस समय अकस्मात् पावस ऋतु आ गई है।

भावार्थः मेढ़क, झींगुर का गान होने लगा। मोर-मोरनी नाचने लगे। आकाश में श्याम घटा छा गई। सर्वत्र पावस कालीन रमणीयता परिपूर्ण होगई ॥ ३३ ॥

सखियाँ वीणा लेकर बजाती हैं और पावस से उद्दीप्त प्रेम से उन्मत्त होकर मलार राग गाती हैं। इस आवरण में श्रीप्रिया प्रीतम जू तो समय-समय पर ही पधारते हैं। उनकी अनुपस्थिति में हृदय में श्रीप्राणनाथ जू का ध्यान करती हैं और विरहाधिक्य के कारण उनके कमलनयन प्रेमाश्रु से परिपूर्ण हो जाते हैं ॥ ३४ ॥

चारो ओर बिजली कौंधने लगी। पावस कालीन शोभा

से बन तथा महल सब अधिक सुखदायक प्रतीत होने लगे। छोटी-छोटी फुहारें पड़ने लगीं। इससे नायिकाओं का विरह और भी अधिक प्रज्वलित हो रहा है ॥ ३५ ॥

फूले फूल अनेक रँग, परभृत शब्द सुनाय।
अति सुगन्ध मारुत बहै, ऋतु वसन्त सरसाय ॥ ३६ ॥
देव–कुसुम एला अमित, वेला वास चमेलि।
मत्त फिरे मधुकर तहाँ, पियहि मिलन को हेलि ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः-परभृत = कोयल। मारुत = वायु। देवकुसुम = लवँग। एला = इलायँची। हेलि = सखी।

प्रसंगः--देखते-देखते वसंत ऋतु आगई। श्रीयुगल-किशोर जू की इच्छा जैसी होती है, वही ऋतु उस समय प्रस्तुत हो जाती है।

भावार्थः--बसंत ऋतु छा गई। रंग विरंग के फूल खिल उठे। कोकिल की काकली सुन पड़ने लगी। उस देश के पवन में नित्य सहज सुगन्ध बनी रहती है. पर इस समय वसंत के संयोग से और भी अधिक सुगन्ध से भर कर पवन डोलने लगा ॥ ३६ ॥

लौंग, एलायँची, वेला, चमेली आदिकों की अत्यधिक सुगन्ध से मतवाले बनकर भ्रमर मड़राने लगे। उसी भांति बसन्त की रमणीयता से विरहोदीप्त सखियाँ प्राण प्यारे श्री-रघुराजदुलारे जू से मिलने की चटपटी में उन्मत्त की भांति इधर उधर फिर रही हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीमज्जनकराज किशोरीशरण विरचितायां श्रीसीताराम सिद्धान्तानन्य रस तरङ्गिण्यां महल, वापी, तड़ाग कूप ललित शोभा वर्णनोनाम अष्टम स्तरङ्गः।

❀ नवम तरङ्ग ❀

षष्टम पारावतावरण में महारासोत्सव विधान



अब षष्टम पाटल वरन, सुचि गुन लसत कंगूर।
मनि कपोत कल हंस गुन, रही माल सम पूर॥ १॥

शब्दार्थः--पाटल=गुलाब। शुचि गुण=सफेद रंग। कपोत=कबूतर। कलहंस गुन=चितकबरा रंग। माल=माला समान पंक्तिवद्ध।

भावार्थः--अब छठे आवरण का ध्यान कीजिये। परकोटे गुलाबी रंग के हैं। उन पर कंगूरे सफेद रंग के सुशोभित हो रहे हैं। कंगूरों पर बैठे हुये मणि के कृत्रिम कबूतर चितकबरे रंग के हैं। कबूतरगण माला के समान पंक्तिवद्ध चारो ओर भरे हैं। इसलिये इसका नाम कपोतावरण है॥ १॥

पुनि षष्टम अवकाश में, रचना रंग विचित्र।
चौक अमित अद्भुत बने, लीला ललित पवित्र॥ २।
मध्य चौक गोपुर चतुर, मध्य सुभूमि विचित्र।
चामीकर नौ मनि खचित, मनहु उदय बहु मित्र॥ ३॥

शब्दार्थः--पवित्र=शृङ्गार रस मयी (पवित्र, शुचि आदि शृङ्गार के ही नामान्तर हैं)। गोपुर=बड़ा फाटक। चतुर=चार।

भावार्थः--पुनः षष्टावरण के अन्तराल वाली भूमि में नाना रंग की रचनायें हैं। और आवरणों में तो प्रधान रूप से चार ही चौक हैं, परन्तु इसमें असंख्य हैं। जैसे--भोजन चौक, शृङ्गार चौक, गन्धर्व चौक, फाग चौक, सांझी चौक, झूलन-चौक, चौपड़ चौक गंजीफा चौक, चन्द्रिका चौक, तमिस्रा चौक, चंग चौक, चकई चौक, गेन्द चौक, लट्टू चौक, कौतुक चौक, विश्राम चौक, जल क्रीड़ा कुंज, उपनेपथ्य चौक, उप-भोजन चौक तथा शयन कुंज।

इन चौकों की रचना आश्चर्य शोभा सम्पन्न है। इन चौकों में श्रीयुगल मनभावन जू भाँति-भाँति की महारासादिक मधुर मनोहर लीलायें करते हैं ॥ २ ॥

चारो ओर के मध्य-मध्य वाले प्रधान चौकों के सामने चारो तरफ एक-एक बड़ा फाटक है। अन्तराल वाली भूमि स्वर्णमयी है, जिसमें नौ रंग वाले मणिगण जटित हैं। ये मणिगण इतने प्रकाशमान हैं, जिनके देखने से मालूम पड़ता है मानो भूमि के ऊपर असंख्य सूर्य उग आये हैं ॥ ३ ॥

दच्छिन गोपुर ते निरखु, क्रम ते सब आगार।
तहँ लीला सिय लाल की, सहित अमित परिकार ॥ ४ ॥

शब्दार्थः--आगार = महल। परिकार (परिकर) = सखी यूथ।

भावार्थः--दक्षिण फाटक की ओर से भीतर वाले चौकों की सुछवि ध्यान में एक ओर से क्रमपूर्वक अवलोकन कीजिये।

(अग्निकोण में भोजन चौक; दक्षिण दिशा में शृङ्गार, गन्धर्व और ब्यारू चौक; नैऋत्य कोण में फाग चौक; पश्चिम ओर झूलन, चौपड़, गंजीफा और चन्द्रिका चौक; वायव्य कोण में तमिस्त्रा चौक; उत्तर ओर चंग, चकई, गेन्द और लट्टू चौक; तथा पूर्व दिशा में विश्राम, जलक्रीड़ा, उपनेपथ्य और शयन चौक हैं।--(इति वार्तिक अनन्य रस तरङ्गिणी।)

इन चौकों में श्रीप्रिया प्रीतम जू अनन्त सखिगणों के सहित मधुर लीलाएँ करते हैं। (उन लीलाओं का आगे वर्णना होगा) ॥ ४ ॥

चहूँ फेर प्रासाद वर, वरन वरन के गोक।
वरन वरन के जाल बहु, निरखत चित्त विशोक॥ ५ ॥
सीपज सिन्धुज गिरिज गज, शीशज भूमिज भूरि।
तिन मनि गन की झालरें, छज्जन में रहि पूरि ॥ ६ ॥
कलश कंगूरे कनक मनि, तिन पर कलित विहंग।
बोलत बात प्रसंग सब, बने यथारथ अंग॥ ७ ॥
पट पिधान पच रंग के, मनिमय द्वार कपाट।
फुन्दे गज मोतीन के, बन्धन पाट बराट ॥ ८ ॥

शब्दार्थः--प्रासाद = महल। वरन = रंग। गोक - छोटी खिड़की। सीपज = सीप से उत्पन्न होने वाले मोती। सिन्धुज = समुद्रसे निकाला गया। गिरिज = पर्वतसे प्राप्त। गज शीशज = हाथी के मस्तक से जायमान मुक्ता। भूमिज = भूमि से जाय-

मान । भूरि = बहुत । कलित = कृत्रिम । वात प्रसंग = हवा लगने से । बिहंग = पक्षी । पिधान = परदा । वराट = डोरी ।

भावार्थः-- इस आवरण के अन्तराल एवं चौकों में चारों ओर से उत्तमोत्तम महल बने हैं। उन महलों में रंग विरंग के गोखे, झरोखे और जाल बने हैं। इन दिव्य वस्तुओं को ध्यान में देखने से चित्त शोक रहित हो जाता है ॥ ५ ॥

उपर्युक्त महलों के छज्जों से अनेक प्रकार की मणियों से रचित झालरें झूल रही हैं । इन मणियों में कुछ सीप से, कुछ समुद्र से, कुछ पर्वत से, कुछ हाथी मस्तक से और कुछ भूमि से प्रकटे हैं ॥ ६ ॥

ऊपर स्वर्ण एवं मणिगण रचित कलश कंगूरे सोह रहे हैं। उन पर कृत्रिम-पक्षी बैठे हैं। उन पक्षियों के अंग प्रत्यंग इस ढंग से बने हैं, मानो कृत्रिम नहीं, सच्चे पक्षी ही हों। हवा लगने पर अपनी-अपनी यथार्थ बोली में कलरव करने लगते हैं ॥ ७ ॥

द्वारों पर पांच रंग के वस्त्रों के परदे पड़े हैं। किवाड़ मणि निर्मित हैं । गजमुक्ता के गुच्छे लटक रहे हैं। गुच्छे रेशमी डोरे से बन्धे हैं ॥ ८ ॥

❀ भोजन चौक की ललित लीला ❀

तहाँ अलीगन अमित युत, पाक प्रवीना नाम ।
सो तहँ की यूथेश्वरी, भोजन चौक ऽभिराम ॥ ९ ॥

शोभित चित्रित चौक मधि, वेदी परम विचित्र।
ता पर शोभित पद्म यक, वत्सल वरन पवित्र ॥ १० ॥
दल-संख्या सोइ कमल की, क्रम ही ते अब देखु।
षट दश दल आवृत प्रथम, दुगुन कोटि वृत लेखु ॥ ११ ॥
षोडश दल के मध्य में, चौकी रतन जराव।
रासोद्यत सियराम के, भोजन लीला भाव ॥ १२ ॥

शब्दार्थः--पाक प्रवीना=रसोई बनाने में कुशला। अभिराम=सुखदायक। पद्म=कमल। वत्सलवरन=वात्सल्य रस का रंग गाढ़ा लाल होता है। रासोद्यत=रास के लिये प्रस्तुत।

भावार्थः-भोजन चौक बड़ा ही मनोरम है। वहां की यूथेश्वरी श्रीपाक प्रवीणा नाम वाली हैं। वह अपनी असंख्य सखियों के सहित वहां की सेवा के निमित्त निवास करतीहै॥९

अनेक मणिमय चित्रामों से युक्त उस भोजन चौक के मध्य में एक मणिमयी विचित्र वेदिका है। उस पर पवित्र-शुचि) शृङ्गार रसोद्दीपक गाढ़े लाल रंग का एक कृत्रिम कमल सुशोभित हो रहा है॥ १० ॥

उपर्युक्त कमल के दलों की संख्या अब सिलसिलेवार रूप से देखिये। प्रथमावरण षोडशदलका, दूसरा बत्तीस दल का, तीसरा चौंसठ दल का है, इसी प्रकार असंख्य आवरण वाला वह कमल है॥ ११ ॥

सब से ऊपर वाले षोडश दल के मध्य में एक रत्न

जटित चौकी बिछी है। रास के लिये तत्पर श्रीयुगलकिशोर जू रास के पूर्व यहीं विराजमान होकर सुख-विस्तारिणी लीला करते हुये भोजन करते हैं ॥ १२ ॥

पद्म वितरदी मध्य में, शोभित श्यामा श्याम।
दल दल प्रति अलिगन अमित, शोभित शोभा दाम ॥१३
पाक प्रवीना प्रेम निधि, निज परिचारि समेत।
परिकर युत ललि लाल को, भोजन परुस सहेत ॥ १४ ॥

शब्दार्थः--वितरदी = कर्णिका । दाम = माला। परिचारि = किंकरी। परिकर = साथ में आई हुई सखिवृन्द। सहेत = लाड़ प्यार के साथ।

भावार्थः--कमल कर्णिका के मध्यस्थ आसन पर श्री-लड़ैती लालजू विराजमान हैं। कमल के प्रत्येक दल पर अपने अपने दर्जे के अनुसार असंख्य सखियाँ विराजी हैं, मानो शोभा ही श्रीयुगल ललन जू को चारो ओर मालाकार रूप से घेर कर बैठी हो ॥ १३ ॥

प्रेम के अपार सिन्धु के समान वहां की श्रीपाक प्रवीणा नाम्नी यूथेश्वरी अपनी किंकरियों के संयुक्त श्रीलली लाल जू तथा साथ में आई हुई सखियों के लिये बड़े लाड़ प्यार से भोजन सामग्रियाँ परोस रही हैं ॥ १४ ॥

मोदक मधुर प्रकार बहु, शीघ्र जलेबी सेव।
खाजे खुग्मा पूप रुचि, मगद बने बहु भेव ॥ १५ ॥

घेवर गोभा रसन के, मेवन भर्यो कसार।
फेनी पय पूरी मधुर, मेवा पगे अपार ॥ १६ ॥
बीज पाग बहु भाँति के, मिसरी गरी सलादु।
परसत कोटिन नागरी, कहि मृदु बचन सुखादु ॥ १७ ॥
बने मधुर मेसूव पय, पाग सु वस्तु अनेक।
चपल चतुर चहुँदिशि निरखि, परुसत सहित विवेक ॥१८
पापर पापरि माठरी, वेसन सेव सलोन।
तरकारी बहु भाँति की, पूगी सुरुचि समोन ॥ १९ ॥
हँसि हँसि परसति लाल को, कमलमुखी वरवैन।
करि अनुभाव अनेक विधि, हँसत श्याम रस ऐन ॥२०॥

शब्दार्थः-मोदक = लड्डू। शीघ्र जलेबी = ताजी जलेबी। पूष = पूआ। रुचि = स्वादिष्ट। मगद = मूंग का लड्डू। भेत्र = भाँति। गोभा = पिरकिया। कसार = मीठा चूर्ण। फेनी = सूत के लच्छे के आकार की एक मिठाई। मेवापगे = मेवापाक। सलाद = पत्तों का अँचार। मेसूव = वेसन की बरफी। पय-पाग = दुग्ध पक्व। पापरि (पपड़ी) = सोहन पपड़ी नामक मिठाई। सेव सलोन = नमकीन सेव। समोन = मोमदार, खास्ता। कमलमुखी = खिले कमल के समान प्रफुल्लित, सुगन्ध पूर्ण एवं सरस मुख वाली। वरवैन = मधुर मनोहर वचन बोलने वाली। अनुभाव = मुसकान, कटाक्ष आदि सरस चेष्टाएँ। रसऐन = रसिक रसज्ञ।

भावार्थ:—श्रीयुगलकिशोर चितचोर के थाल में जो भोजन पदार्थ परोसे जाते हैं, उनके नाम सुनिये। बहुत भाँति के मीठे लड्डू, ताजी जलेबी, गरमागरम मीठा सेव, खाजे, खुरमा, सुस्वादिष्ट मालपूआ, बहुत प्रकार के बने मूंग के लड्डू ॥ १५ ॥

घेवर (एक मिठाई), पिराक जिसमें सरस मेवे कसार आदि भरे हुये हैं, फेनी नामक मिठाई दूध मिली हुई और मीठी, अनन्त भाँति के मेवापाक ॥१६॥

बहुत प्रकार के बीजपाक, मिश्री, गरी, पत्तों का सलाद – इन सब वस्तुओं को असंख्य प्रवीणा नायिकाएँ परोस रही हैं। मधुर-मधुर बचनों से उनके स्वाद का बखान भी करती जाती हैं ॥ १७ ॥

बेसन की मिठाई, अनेक प्रकार की दुग्ध-पक्व वस्तुएँ बनी हैं। फुर्ती तथा चतुराई के साथ फेरने वाली चन्द्रमुखी नागरी चारों ओर दृष्टि डालकर बड़े विचार के साथ परोस रही हैं ॥ १८ ॥

पापड़, सोहन पपड़ी, मठरी, बेसन का नमकीन सेव, अनन्त प्रकार के व्यञ्जन, मोमदार सुस्वादु पूरी ॥ १६ ॥

उपर्युक्त वस्तुएँ कमल के समान मुख वाली तथा मधुर मनोहर वचन उच्चारण करने वाली नागरी, श्रीलाल जू को कटाक्ष मुसकान आदि सरस चेष्टायें प्रदर्शित करती हुईं, परोस रही हैं। इस पर रसिक रसज्ञ श्याम सुन्दर हँस रहे हैं ॥२०॥

पुनि अघौट पय कंद युत, कनक कटोरन राखि।
प्यावति लाड़िलि लाल को, अलो वचन मृदु भाखि॥२१॥
यहि विधि जानकि राम को, परिकर सकल सचेत।
रुचि सों ब्यारि कराइ के, कनक पात्र जल देत॥ २२ ॥
पाक प्रवीना नागरी, लै कर कंचन झारि।
सरयू जल अँचवाइ के, बीरी देति सुधारि॥ २३ ॥
अतर अनेक प्रकार के, घ्रान करत ललि लाल।
जुही चमेलि गुलाब की, पहिराई बहु माल॥ २४ ॥
कंचन पूरन कलस धरि, मंगल चौक सँवारि।
कनक थार आरति करति, सिंहासन बैठारि॥ २५ ॥
बरसत कुसुम अनेक रँग, अतर गुलाब फुहारि।
वारति मनि गन माल बहु, जय जयःशब्द उचारि॥२६॥

शब्दार्थः –अघौंट = उबालने पर जलने के बाद आधा और गाढ़ा रह जाय। पय=दूध। कंद=मिश्री। सचेत= सेवा में सावधान। कनक पात्र=सुवर्ण के गलास में। घ्रान करत=सूंघते हैं। पूरन=जल से भरे हुये। वारति=न्यौछावर करती है।

भावार्थः–भोजनोपरान्त एक सखी आधे औंटे हुए गाढ़े दूध में मिश्री मिलाकर तथा सोने के कटोरे में रखकर, उसे श्रीलड़ैतीलाल जू को मीठी वाणी कहकर, बड़े लाड़ प्यार से पिलाती है॥ २१॥

सेवा में सावधान रहने वाली सभी सखियाँ इस प्रकार से श्रीप्रिया प्रियतम जू को रुचि अनुकूल ब्यारी कराकर, सुवर्ण के गलास में पीने के लिये जल प्रदान करती हैं ॥ २२ ॥

यूथेश्वरी श्रीपाकप्रवीणा जी स्वयं अपने करकंज में सुवर्ण की झारी लेकर सरयू जल से आचमन कराती हैं, तदुपरान्त पान का बीड़ा सुन्दर रीति से लगाकर अर्पण करती हैं ॥ २३ ॥

तत्पश्चात् श्रीलली लाल जू को अनेक भाँति के इत्र सूंघाकर जूही, चमेली, गुलाब आदि सुगन्धित पुष्पों की माला पहनाती हैं ॥ २४ ॥

मंगल चौक पूरती हैं। जलपूर्ण सुवर्ण कलश रखती हैं। सिंहासन पर बिराजमान कराकर सुवर्ण थाल में आरती उतारती हैं ॥ २५ ॥

अनेक रंग के पुष्पों की पुष्पाञ्जली अर्पण कर रही हैं, गुलाब इत्रों का फुहारा बरसा रही हैं, मणि रत्नादि की माला न्योछावर करती हैं तथा युगल मनभावन जू के जय जयकार उच्चारण करती हैं ॥ २६ ॥

बजत बहुत पुनि बाजने, पणब नगारे भेरि।
शंख सहनाइ घंट बहु, झालर झाँझ मंजेरि। २७ ॥
करति आरती सुघर अली, निरखत अंग उमंग।
भरत अमित आनन्द उर, वारति रती अनंग ॥ २८ ॥
तृन तोरति फिर फिर लखति, घन दामिनि अभिराम।
चितवनि विहँसनि बोलनी, रसनिधि श्यामा श्याम ॥२९

जयति जयति जनकात्मजा, जयति जयति नृपनन्द।
गुनागार सुखसार जय, जय हरि हर अभिनन्द ॥३०॥
शुभ-गुन-निधि सुषमा सुनिधि, सुख-निधि रस-आगार।
हे सुजान ललि लाल जू, मेरे प्राण अधार ॥३१॥
जयति रास-साली जयति, वनमाली वन-धाम।
जय अजानु भुज नवल नट, जयति गान गुन ग्राम ॥३२॥

शब्दार्थ:--पणव = ढोल। भेरि = बड़ा नगारा, दुंदुभि। मजेरि = मंजीरा। सुघर = चतुरी, किंकर्य कुशला। उमंग = अतृप्त भाव से अधिकाधिक उत्साह पूर्वक। अनंग = कामदेव। अभिराम = मनोहर। गुणागार (गुण + आगार) = समस्त दिव्य गुणों की खान। अभिनन्द = वन्दनीय। रास साली = रास रचने वाले। बनमाली = बनमाला धारण करने वाले। बनधाम = प्रमोदबन विहारी। ग्राम = समूह।

भावार्थ:--ढोल, नगारे, दुंदुभि, शंख सहनाई, घंटा, झालर झांझ, मंजीरा आदि बहुत प्रकार के बाजे आरती काल में बज रहे हैं ॥ २७ ॥

चतुरी सखी आरती उतार रही है। साथ-साथ उमंग में भर कर श्रीयुगलकिशोर जू के अंग प्रत्यंग के दर्शन करती है। दर्शन जन्य अपार आनन्द हृदय में परिपूर्ण हो उठा है। युगल सौन्दर्य पर अनन्त रति और कामदेव को न्यौछावर कर रही है ॥ २८ ॥

बार-बार दर्शन करती है और नजर लगने के भय से

तृण तोड़ती है। दोनों की श्यामघन और विजली के समान मनोहारिणी जोड़ी है। क्या चितवनि, क्या मुसकनि, क्या मधुर बोलनि--सब में अपार रस भरा है। दोनों अपार रस के समुद्र हैं ॥ २९ ॥

जय जयकार के ललित शब्द उच्चार रही है। श्रीजनकराजदुलारी जू की जय जय हो! श्रीचक्रवर्ती राजदुलारे जू को जय जय! समस्त दिव्य गुणों के सिन्धु की जय! सुख के मूलतत्व की जय हो! श्रीशिव-विष्णु आदि ईश्वर वर्ग के भी वन्दनीय पूजनीय युगल मनभावन जू की जय ॥ ३० ॥

सभी कल्याण गुणों के समुद्र, परमाशोभा के समुद्र, सुख के समुद्र, रस के भवन, हे सर्वज्ञ शिरोमणि लली लाल जू, आप दोनों मेरे प्राणों के आधार हैं ॥ ३१ ॥

रास रचने वाले की जय हो! हे बनमाला धारण करने वाले, हे श्रीप्रमोदवन में विहारार्थ निवास करने वाले, आपकी बार-बार जय जय कार!! घुटने तक लम्बी भुजा वाले, हे नवल नटनागर, आपकी जय जयकार!! संगीत गुण-गणों के पुंज वाले श्रीयुगल ललन जू की जय हो! जय हो!! ३२ ॥

श्रृङ्गार चौक की प्रेमानन्द विस्तारिणी लीला

जयति परस्पर प्रेमनिधि, केलि कुशल कुलदीप।
विहरो वन श्रृङ्गार निधि, रासेश्वरन अधीप ॥ ३३ ॥
तासु विनय ऊरी करी, चले लाड़िली लाल।
हंस गवनि मृगपति ठवनि, अमित संग लिय बाल ॥३४॥

पुनि शृङ्गार सुचौक में, आये जानकि राम।
अर्घ्य पाद्य दै आरती, करति सुकोटिन वाम ॥ ३५ ॥
निरखु सुछवि तिहि चौक की, यथा नाम अनुकार।
वातायन बहु रंग के, मनिमय खंभ अपार ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः - कुलदीप=खान दान भर में आनन्द का प्रकाश करने वाले। शृङ्गार=रसिकता। निधि=भंडार। रासेश्वरन अधीप=रासविहारियों में सर्वश्रेष्ट। ऊरो=स्वीकार। मृगपति=सिंह। ठवनि=तौर तरीका। अर्घ्य=हाथ धुलाना। पाद्य=चरण धोना। वाम=सुन्दरी नवयुतियाँ। अनुकार=क्रियात्मक रूप। वातायन=झरोखा।

प्रसङ्गः--भोजन चौक में आरती उपरान्त जय जयकार हो ही रहा था कि इतने में शृङ्गार चौक से एक दूती श्रीयुगल-किशोर जू को बुलाने आ गई। वह भी जय जय घोष में सम्मिलित हो गई तथा उसी स्वर में अपना अभिप्राय भी चतुराई पूर्वक प्रकट कर रही है।

भावार्थः हे श्रीयुगल नवल ललन जू, आप दोनों के बीच एक दूसरे के प्रति समुद्रवत अपार अथाह प्रेम है। आप क्रीड़ाओं में प्रवीण हैं, अपने-अपने कुल के प्रकाशक हैं। आप तो स्वयं शृङ्गार (रसिकता) के भंडार ही हैं, अतः आपका शृङ्गार क्या करना है ? तथापि वन में चलकर विहार तो कर लीजिये। रास विहारियों में सर्व शिरोमणि होने के कारण

बन विहार आपके योग्य ही है और रास शृङ्गार करा लेना भी स्वाभाविक है ॥ ३३ ॥

श्रीलली लाल जू, उस दूती की प्रार्थना स्वीकार करके अनन्त सुन्दरियों को साथ लिये हुये भोजन चौक से शृङ्गार चौक के लिये चल पड़े। उस काल में आपके चलने की शैली हंसवत रमणीय तथा मुद्रा सिंह जैसी सुसोह रही हैं ॥ ३४ ॥

तत्पश्चात् श्रीयुगलकिशोर चितचोर जू, शृङ्गार चौक में पहुँच गये। वहां की असंख्य रमणियाँ, अर्घ्य पाद्य प्रदान करके आपकी स्वागत-आरती उतार रही हैं ॥ ३५ ॥

अब पाठक उस शृङ्गार चौक का ध्यान करें। जैसा नाम है, वैसा ही शोभा में सम्पूर्ण अन्तराल का इसे शृङ्गार ही समझिये। शृङ्गार चौक के महलों में अनेक रंगों के जाल झरोखे हैं तथा असंख्य मणिमयी खंभावली हैं ॥ ३६ ॥

अमित जोति जालावली, जगमगात चहुँ फेरि।
रंग रंग की झालरें, अमित रही छवि घेरि ॥ ३७ ॥
लटूटू लटकत मनिन के, मुक्तावलि मुख बन्ध।
पाट पिधान अनेक रँग, मृगमद सुरुचि सुगन्ध ॥ ३८ ॥
अटा घटा परसत छटा, छाय रही चहुँ ओर।
पाट लटा मोतिन सटा, नटा मोर मनि कोर ॥ ३९ ॥
छजे सजे मोतिन गजे, लजे छपा छवि देखि।
भजे उलूक द्विजेश जे, चित्र मित्र छवि पेखि ॥ ४० ॥

शब्दार्थ: जालावली = जालों के समूह। मुक्तावलि = मोतियों

का गुच्छा। पाट पिधान=रेशमी परदा। मृदमद=कस्तूरी। सुरुचि=मनोरंजन कारक। अटा=अटारी। घटा=बादल। पाट लटा=रेशम का झब्बा। नटा=नृत्य करते हुये। मनि-कोर=मणि रचित कृत्रिम। छजे=छज्जा, छत। मोतिन गजे=गजमुक्ता। छपा=रात्र। द्विजेश=पूर्ण चन्द्रमा। चित्र मित्र=चित्र लिखित सूर्य।

भावार्थः--जाल झरोखे का अत्यधिक प्रकाश चारों ओर जगमग कर रहा है। रंग बिरंग की झालरें झूल रही हैं, जिनमें अपार शोभा छाई हुई है॥ ३७॥

मणिगण रचित लट्टू लटक रहे हैं। उन लट्टुओं के मुख पर मोतियों के झब्बे लगे हैं। अनेक रंगों के रेशमी परदे द्वारों पर पड़े हैं। महलों में कस्तूरी आदि मनोरंजक सुगन्ध छिड़की है॥ ३८॥

अट्टालिकायें इतनी ऊँची है, मानो बादल को छू रही हों। उनकी ज्योति चारो दिशाओं में फैल रही है। उनमें मोती जड़े हुये रेशमी झब्बे लटक रहे हैं। मणि रचित कृत्रिम मोर नृत्य मुद्रा में छज्जों पर खड़े हैं॥ ३६॥

छज्जे गजमुक्ताओं से सुसज्जित हैं। चित्र में अंकित जो सूर्य्य हैं, उनमें इतना अधिक प्रकाश है कि उसकी शोभा देखकर रात्रि सकुचाकर छिप गई। पूर्णचन्द मन्द पड़ गया। उल्लू पक्षी यथार्थ सूर्य्य के धोखे से भाग गये॥ ४०॥

भामिनि हंसिव गामिनी, दामिनि द्युती अशेष।
विहरत निज निज धामिनी, कामिनि कला विशेष॥४१॥

शोभित चित्रित चौक मधि, चौकी चारु सुचारि।
ता मधि मंजुल वेदिका, चित्र विचित्र सँवारि ॥ ४२ ॥
चौकी पर भूषन वसन, नृत्य समय के साज।
लिये अलीगन अमित सो, साजत सिय नटराज ॥ ४३ ॥
सजत सुभूषन परस्पर, जनक लली रघुनन्द।
रतिहि सँवारत काम मनु, कामहि रती अनन्द ॥ ४४ ॥
चतुर अली चहुँदिशि खड़ी, देत सुधारि सुधारि।
सिय-भूषन पिय के सुकर, पिय के सिय कर धारि ॥४५॥

भावार्थः--भामिनि = कान्तिमयी सुन्दरी। हंसिव (हस + इव) = हंस के समान। गामिनी = सुढंग से चलने वाली। दामिनि = विजली के समान। द्युति = शरीर की आभा, चमक। धामिनि = महल में। कामिनि कला = कोक कला कुशला। साजत = धारण करते हैं। नटराज = नृत्य करने वालों में शिरोमणि।

भावार्थः--श्रृङ्गार चौक में श्रीयुगलकिशोर जू के सेवार्थ निवास करने वाली सखियों के वर्णन करते हुये कहते हैं। ये सुन्दरी ललना गण हंस के समान सुढंग से चलने वाली हैं। इनकी अंग-कान्ति पूरी विजली की दीप्ति के समान है। उस चौक के चारो तरफ वाले नौखंडे महलों में अपने-अपने निवास स्थल पर सर्व भोग्यैश्वर्य से सम्पन्न सानन्द निवास करती हैं। श्रीजानकीरमण जू के सुखार्थ ये कोक कला में विशेष रूप से पारंगता हैं ॥ ४२ ॥

नाना प्रकार के चित्रामों से समालंकृत उस श्रृङ्गार चौक के मध्य में एक चित्र-विचित्र सजी हुई सुन्दर वेदिका है। उस पर चार सुन्दर चौकियाँ रखी हैं ॥ ४२ ॥

उन चौकियों पर रासनृत्य-कालीन श्रृङ्गार करने के लिये वस्त्र, अलंकार इत्यादि सामग्रियाँ रखी हैं। उन वस्तुओं को असंख्य सखियाँ हाथों हाथ लिये हुई हैं। उन वस्तुओं को सखियों के करकंज से प्राप्त कर श्रीयुगलरास-रसिक जू परस्पर में एक दूसरे को धारण कराते हैं ॥ ४३ ॥

श्रीजनकनन्दिनी जू एवं श्रीरघुनन्दन जू परस्पर में एक दूसरे को भूषण पहनाते समय ऐसे सुशोभित हो रहे हों, जैसे कामदेव रति परस्पर में एक दूसरे का सानन्द श्रृङ्गार कर रहे हों ॥ ४४ ॥

उपर्युक्त रीति से श्रृङ्गार करने के लिये सहायिका रूप में कैंकर्यकुशला सखियाँ दोनों के चारो ओर खड़ी हैं। वे सखियाँ श्रीप्रिया जू के भूषण श्रीप्रियतम जू के करकंज में तथा श्रीप्रियतम जू के भूषण श्रीप्रिया जू के करकंज में सब सजाकर देती जाती हैं ॥ ४५ ॥

पहिरावत सिय को सुघर, रघुनन्दन पट नील।
जनु घन घन–पट दामिनिहि, पहिरावत रचि शील ॥ ४६
जनकलली रघुनन्द को, पहिरावति पट पीत।
सौदामिनि दामिनि--वसन, घनहि करत संवीत ॥ ४७ ॥
ज़नक लली सिर चन्द्रिका, धरत रसिक रघुनन्द।
अमिहित जनु पूरन ससिहि, फनि निज मनि दइ चन्द ॥४८

सोपज संवित मित्र–द्युति, मुकुट सिया निज हाथ।
पहिरावत रघुनन्द कहँ, लखि मोह्यो रति–नाथ ॥ ४९ ॥
मुकुट सिया पिय सिर धरत, अचरज उपमा लेत।
कनक लता जुग कमल धरि, रविहिं समिहि कहँ देत ॥५०।

शब्दार्थः-सुघर=कला कुशल। पट=वस्त्र। घनपट=काले बादल के समान नीलाम्बर। दामिहि=बिजली। रचि=सजकर। शील=मीठा स्वभाव। सौदामिनि=बिजली। दामिनि-वसन=बिजली की चमक वाला पीताम्बर। संवीत=पोशाक पहनाना, सजना। अमि=अमृत। फनि=सर्प। मित्र-द्युति=सूर्य्य के समान प्रकाशमान। अचरज उपमा=अद्भुतोपमालंकार में असंभव गुण दिखलाये जाते हैं। सीपज=सीप से जायमान मोती।

भावार्थः--श्रृङ्गार-कला-कुशल श्रीप्रियतम जू श्रीप्रिया-जू को नीलाम्बर पहना रहे हैं। इस पर कवि उत्प्रेक्षा करते हैं मानो घनश्याम (श्रीलाल जू) घनश्याम वसन (नीलाम्बर) विजली (श्रीप्रिया जू) को सम्हाल-सम्हाल कर सुशीशलता पूर्वक पहना रहा हो ॥ ४६ ॥

श्रीजनकनन्दिनी जू श्रीरघुनन्दन प्यारे को पीताम्बर पहना रही हैं। इस पर पूज्य कवि उत्प्रेक्षा करते हैं कि मानो विजली (श्रीप्रिया जू) दामिनि का ही वस्त्र बनाकर (विद्युत के समान चमकीला पीताम्बर) घनश्याम (श्यामसुन्दर लालजू(को पहना रही हो ॥ ४७ ॥

श्रीजनकलली जू के मनोहर माथे पर रसिक शिरोमणि श्रीरघुनन्दन जू चन्द्रिका धारण कराते हैं। इस पर कवि उत्प्रेक्षा करते हैं कि मानो कालानाग (श्याम भुजा) अमृत पाने के लोभसे पूर्ण चन्द्रमा (श्रीप्रिया मुख) को अपनी मणि (चन्द्रिका) भेंट कर रहा हो ॥ ४८ ॥

श्रीप्रिया जू अपने करकंज से श्रीरघुनन्दन प्राण प्यारे को ऐसा मुकुट धारण करा रही हैं, जो मोती से सुसज्जित है तथा जिसमें सूर्यवत प्रकाश भरा है। इस अलंकृत शोभा से सम्पन्न श्रीलाल जू की सुछवि देखकर कामदेव मोहित हो गया ॥ ४९ ॥

श्रीप्रिया जू श्रीप्राणबल्लभ जू के मनोहर माथे पर मुकुट धारण कराते समय अद्भुतोपमालंकार का दृष्टान्त उपस्थित करती हैं। मानो स्वर्णलता (श्रीप्रिया भुजा) दो कमल (दोनों लाल लाल तलहत्थी) के ऊपर सूर्य्य (मुकुट) को रखकर चन्द्रमा (श्रीप्यारे मुखचन्द्र) को अर्पण कर रही हो। यहां कमल पर सूर्य को रखना तथा चन्द्रमा को सूर्य अर्पण करना असंभव है, अतः उपर्युक्त अलंकार घटा ॥ ५० ॥

सिय उर गज मनि माल बहु, पहिरावत रघुलाल।
कनकलता पर उरग जुग, धरत मनहु उडु माल ॥ ५१ ॥
जनकलली रघुनाथ उर, पहिरावत मनि माल।
मनु दामिनि घन पर धरत, ललित तार की जाल ॥ ५२ ॥
पदिक हार राजीव दृग, सिय जू को पहिराय।
सिय पहिरावत लाल उर, उपमा अति दरसाय ॥ ५३ ॥

जनु दामिनि घनको घनहिं, दामिनि सहित विलास।
कवि कुज गुरु शनि माल रचि, देत सुछवी निवास ॥५४॥

शब्दार्थ:--गजमनि=गजमुक्ता। उरग=साँप। उडु-माल=ताराओं की पंक्ति। तार=तारागण। विलास=मनो-विनोद, आनन्द। कवि=उज्जवल रंग का शुक्र। कुज=लाल रंग का मंगल। गुरु=पीत रंग का वृहस्पति। शनि=काले रंग का शनिश्चर।

भावार्थ:--श्रीरघुलाल जू श्रीप्रिया जू के हृदय पर बहुत सी गजमुक्ताओं की माला धारण करा रहे हैं। मानो दो काले-नाग (दोनों श्याम भुजाएं) स्वर्णलता (श्रीप्रियावक्ष स्थल) पर तारागण (गजमुक्ता माला) धरते हों ॥ ५१ ॥

श्रीप्रिया जू श्रीप्रियतम जू के हृदय पर मणिमाला धारण कराती हैं। उस समय ऐसा प्रतीत होता है मानो बिजली (श्रीप्रिया जू) घनश्याम (प्यारे हृदय) पर सुन्दर तारागण की पंक्ति (मणिमाल) रख रही हो ॥ ५२ ॥

राजीव-नयन रघुनन्दन जू श्रीप्रिया जू को गोल पदिक का हार पहना रहे हैं। पुनः श्रीप्रिया जू श्रीलाल जू के हृदय पर चौकोण पदिक का हार धारण कराती हैं। उस समय की जो विलक्षण उपमा कवि के हृदय में स्फुरित हो रही है, उसे अगले दोहे में दिखा रहे हैं ॥ ५३ ॥

मानो घनश्याम तथा दामिनी परस्पर में एक दूसरे को विविध रंगों की मणिमाला रचकर शोभाधाम स्थल पर धारण

कराते हों। विविध रंगों में शुक्रवत शुभ्रमणि, मंगलवत लाल-मणि, वृहस्पति के समान पीतमणि तथा शनि के समान श्याम-मणि हैं। शोभाधाम स्थल दोनों के वक्षस्थल हैं ॥ ५४ ॥

प्रिया प्रीयतम परस्पर, नयनन अंजन देत।
कनक सलाका बोरि के, अद्भुत उपमा लेत ॥ ५५ ॥
कंचन लता तमाल दोउ, श्याम राग भरि कंज।
अलि युत उभय सरोज को, रुचि सों करत सरंज ॥५६॥
पिय सिय के सिर धरत हैं, सीस फूल द्युति जाग।
जनु ससि पर तम पुंज लखि, दीप बून्द धर नाग। ५७॥
पहिरावत सिय पीय को, मनि कुंडल निज हाथ।
कंचन लता तमाल पर, धरत रैन दिन नाथ ॥ ५८ ॥

शब्दार्थः--सलाका=सलाई । राग=रंग । उभय=दोनों। सरंज=रँगना। द्युति जाग=जगमग प्रकाश वाला। रैन=रात्रि। दिननाथ=सूर्य्य।

भावार्थः--श्रीप्रिया प्रियतम जू परस्पर में एक दूसरे के नयनों में सोने की सलाई से बोर-बोर कर काजर लगा रहे हैं। इस पर कवि के हृदय में एक अद्भुत उपमा फुर रही है ॥५५॥

उपमा यह है। स्वर्णलता (श्रीप्रिया जू) तथा तमाल-वृक्ष (श्रीप्रियतम जू) कमलों में (अपने-अपने करकंजों में) श्याम रंग भरकर (काजर लेकर) भ्रमर युक्त कमलों को (काली पुतली युक्त नयनों को) सुरुचि पूर्वक रँग रहे हों ॥ ५६ ॥

श्रीप्राण प्यारे जू प्रकाश से जगमगाते हुये शीशफूल लेकर श्रीप्रिया जू के शिर पर धारण करा रहे हैं। सो ऐसा मालूम पड़ता है मानो चन्द्रमा के ऊपर (श्रीप्रिया मुख पर) अन्धकार का समूह (केशावलि) देखकर काले नाग (प्यारे की श्याम भुजाएँ) उस पर दीपवृन्दवत प्रकाश करने वाली संजीवनी जड़ी (शीशफूल) रख रहे हों ॥ ५७ ॥

श्री प्रिया जू श्रीप्राणबल्लभ जू के सुभग श्रवणों में अपने कर-कंज से मणिकुंडल धारण करा रही हैं। इस पर उत्प्रेक्षा करते हुये कवि कहते हैं मानो स्वर्णलता (श्रीप्रिया जू) तमाल-वृक्ष के ऊपर (श्रीप्यारे के कानों में) रात्रि का समागम जान (जुलुफ की लट लटकी हुई देख) कर, उस वृक्ष पर सूर्य को (मणिकुंडल को) पधरा रही हो ॥ ५८ ॥

पहिरावत पिय सीय के, कंचन बन्दि सुअंग।
दिवस निशा के मध्य जनु, सोम सुरचत भुजंग ॥ ५९ ॥
जनक लली रघुनन्द को, नक मुक्ता पहिराव।
कनक लता जनु कमल पर, धरि मनि कीर चुगाव ॥६०॥
पिय पहिरावत प्यारि को, नक वेसरी सहेत।
युग मोती बिच श्याम मनि, अद्भुत उपमा लेत ॥६१॥
युग कवि मध्य सुमन्द पुहि, ताड़ित तार अति प्रीत।
अमिय लागि जनु उरग युग, ससिहि देत संवीत ॥ ६२ ॥
करन विभूषन पीय को, पहिरावति सिय गोरि।
मनहुँ कंज निज बीज गृह, ससि कहँ देत अँकोरि ॥६३ ॥

शब्दार्थः— बन्दी = लम्बी पट्टिका जो सम्पूर्ण ललाट के ऊपर रहती है। सहेत = प्रीति पूर्वक। कवि = शुभ्र वर्ण वाला शुक्र ग्रह। सुमन्द = श्याम रंग वाला शनि ग्रह। तड़ित = बिजली। संवीत = भेंट, उपहार। बीजगृह = कर्णिका (कर्णिका ही में कमल के बीज भरे रहते हैं)। अँकोर = उपहार, घूस।

भावार्थः—प्यारे श्रीप्रिया जू के ललाट के ऊपर सोने की बन्दी पहना रहे हैं, मानो सर्प (प्यारे की भुजा) दिन (गौर ललाट) और रात्रि (केश) के मध्य में सीमाबन्दी (बन्दी भूषण धारण करना) कर रहा हो, जिससे कि सीमा (बन्दी) के ऊपर रात्रि (केश) रहे, नीचे दिन (ललाट) रहे ॥ ५९ ॥

श्रीजनक दुलारी जू श्रीरघुनन्दन प्रियतम को नाशा-मणि पहना रही है, मानो स्वर्णलता (श्रीप्रिया जू) लाल कमल (अधर) पर मणि (नाशामणि) रखकर सुग्गे (नाशिका) को दाना चुगा रही हो ॥ ६० ॥

प्यारे श्री प्रिया जू को प्रीति पूर्वक बेशर पहना रहे हैं। बेशर की रचना बताते हुये कहते हैं कि दो मोती के बीच में एक श्याममणि स्वर्णतार में पोही हुई है। इस पर कवि को एक अद्भुत उपमा फुर रही है ॥ ६१ ॥

दो शुक्र (मोती) के बीच में एक शनि (श्याममणि) सोने के तार (तड़ित तार) में पोह कर, दो काले नाग (श्याम भुजाएँ) अमृत (मुख माधुरी) के लोभ से चन्द्रमा (प्रिया मुख) को रुश्वत में दे रहे हों ॥ ६२ ॥

गौरांगिनी प्रिया जू प्राण प्यारे जू के कानों में लौंग नामक कर्णभूषण पहना रही हैं। मानो कमल (प्रिया कर) चन्द्रमा (प्यारे के मुख समीप कान) को अपनी कर्णिका (लौंग) भेंट कर रहा हो ॥ ६३ ॥

सींक दुसाखी कनक की, कर–सरोज लै लाल।
रचत पत्रिका रुचिर अति, जनक लली के भाल ॥ ६४ ॥
रचत पत्रिका भाल में, उपमित वाहु विशाल ।
विनय लिखत ससि पत्र करि, वैनतेय कहँ व्याल ॥६५॥
रचत तिलक पिय भाल में, सिय तहँ अति उपमान।
जनु रति निज पति चाप में, कर जुग सर सन्धान ॥६६॥
देत सुजावक पद्म पद, सिय के निज कर लाल ।
चाहत करन प्रवेश जनु, अरुन कंज मधि व्याल ॥ ६७ ॥
सिय प्रीतम पद कंज में, देतु सुजावक रेख ।
मनहु लिखत घन पत्र में, विद्युल्लता सुलेख ॥ ६८ ॥

शब्दार्थः दुसाखी = दो नोक वाली। पत्रिका = चन्दन चित्राम। उपमित = उपमा के योग्य। ससि = चन्द्रमा। वन-तेय = गरुड़ जी। व्याल = सर्प। चाप = धनुष। सर = वाण। सन्धान = निशाना के लिये लगाना। सुजावक = सुन्दर महा-वर। पद्म = कमल। विद्युल्लता = विजली।

भावार्थः - श्रीलाल जू अपने कर-कंज में दो नोक वाली सींक लेकर श्री जनकनन्दिनी जू के ललाट पर अतिशय सुन्दर चन्दन-चित्राम लिख रहे हैं॥ ६४ ॥

श्रीप्रिया जू के भाल में चित्राम रचना काल में प्यारे की आज्ञानु लम्बित विशाल बाहु के लिये ऐसी उपमा कवि के हृदय में फुर रही है, मानो सर्प (प्यारे की भुजा) अर्द्धचन्द्र (प्रिया भाल) को पत्र बनाकर गरुड़ के पास प्रार्थना (चन्दन चित्राम) लिख रहा हो। प्रार्थना का भाव कि सर्प से गरुड़ की जो जातीय स्वभावानुकूल शत्रुता है उसे त्याग दे।) ॥६५॥

प्यारे के भाल में तिलक रचना करती हुई श्रीप्रिया जू के लिये एक सुन्दर उपमा फब रही है। मानो रति (श्रीप्रिया-जू) अपने पति के धनुष (प्यारे की भौंह) पर दो वाण (तिलक की उभय रेखायें) सन्धान कर रही हो ॥ ६६ ॥

श्रीलाल जू अपने ही कर-कंज से श्रीप्रिया जू के पादार-विन्द में महावर की रचना कर रहे हैं, मानो श्याम सर्प (प्यारे की श्याम भुजा) लाल कमल में (प्यारी के तलवे) में प्रवेश करना चाहता हो ॥ ६७ ॥

श्रीप्रिया जू श्रीप्राण प्यारे के पादारविन्द में महावर चित्राम बना रही हैं, मानो विजली (श्रीप्रिया जू) श्यामघन (प्यारे भाल) को पत्र बनाकर उस पर कोई सुन्दर निवन्ध लिख रही हो ॥ ६८ ॥

भुज भूषन भुज प्यारि के, पहिरावत रघुनन्द ।
जनु सिँगार रस सख्य कहँ, करि शृङ्गार अभिनन्द ॥६९॥
बाहु विभूषन लाल भुज, सिय पहिराय सप्रेम ।
मनहुँ सख्य शृङ्गार कहँ, भूषित करत सनेम ॥ ७० ॥

कटि किंकिनि सिय पीय को, पहिरावत छवि वन्त।
मनहुँ सख्य अरु वीर रस, शृँगार ही गहन्त ॥ ७१ ॥
क्षुद्र-घंटिका सीय को, पहिरावत रघुनन्द ।
मनहु उभय शृँगार रस, सख्यहिं मिलत अनन्द ॥ ७२ ॥
पाद विभूषन परस्पर, सजत सुश्यामा श्याम।
निरखि-निरखि छवि वारिये, कोटि कोटि रति काम ॥७३

भावार्थ:--श्रीरघुनन्दन प्यारे श्रीप्रिया जू की बाह में विजायठ कंकण आदि बाहु विभूषण पहना रहे हैं। मानो श्रृङ्गार रस सख्य रस का श्रृङ्गार करके उसका स्वागत (अभिनन्द) कर रहा हो। यहाँ प्यारे श्याम रंग वाले शृंगार रस के प्रतीक हैं तथा श्रीप्रिया जू पीतवरण वाले सख्य रस स्वरूपा हैं। रंग-साम्य होने से उपर्युक्त उपमा दी गई। भूषण धारण कराने काल में जो भुजा पकड़ते हैं, वही हाथ पकड़कर स्वागत करना है ॥ ६९ ॥

श्रीप्रिया जू श्रीलाल जू की भुजाओं पर भुज भूषण पहना रही हैं, मानो सख्य रस (पीत रंग वाली श्रीप्रिया जू) श्रृङ्गार रस (श्याम वरण प्यारे) को (सख्य श्रृङ्गार में पारस्परिक मैत्री होने के कारण) नियमानुकूल श्रृङ्गारित करता हो ॥ ७० ॥

श्रीप्रिया जू प्राण प्यारे जू को शोभायमान किंकिणी पहना रही हैं, मानो सख्य तथा वीर रस मिलकर श्रृङ्गार रस की कमर पकड़ रहे हों। किंकिणी दोनों भुजाओं से कमर

घेर कर धारण कराई जाती है, सो यहां प्यारी की पीतवरण वाली दोनों भुजाएँ सख्य रस है, तलहत्थी लाल रंग वाला वीर रस है और प्यारे की कमर श्याम रंग वाला शृङ्गार है॥ ७१ ॥

श्रीरघुनन्दन मनहरण जू श्रीप्रिया जू की कटि में क्षुद्र घंटिका (किंकिणी) पहना रहे हैं। मानो शृङ्गार रस (प्यारे की दोनों भुजायें) उभय वेश बनाकर सख्य रस (श्रीप्रिया-जू की कटि) को सानन्द अँकवार में लेकर परिरम्भण कर रहा हो॥ ७२ ॥

नूपुरादि चरण भूषण श्रीलली लाल जू परस्पर में एक दूसरे को धारण करा रहे हैं। इस प्रकार से समालंकृत युगल छवि को ध्यान में बारम्बार अवलोकन कीजिये और उस सुछविपर कोटि-कोटि रति कामदेवको न्यौछावर कीजिये। ७३

नट नागर नट नागरी, रचि नटि नट पट अंग।
निरखि युगल छवि वारिये, बहु रति नटिन अनंग ॥७४॥
अति विशाल मनि वेदिका, सुभग सिंहासन तास।
बिछे बिछौना अति सुखद, शोभित श्यामा श्याम ॥ ७५॥
धूप दीप नैवेद्य करि, सरजु सलिल अँचवाय।
अलि सिंगार ताम्बूल दै, विविध सुगन्ध सुँघाय ॥ ७६ ॥
गज मनि चौक सुपूरि कै, चामीकर घट चारु।
सरयू जल पूरित सुरभि, मंगल चिह्न अपारु ॥ ७७ ॥

सो सब निकट निधाय कै, बाजे विविध बजाय।
कनक थार आरति करति, सुम सुगन्ध वरसाय ॥ ७८ ॥

शब्दार्थः--नट नागर = प्रवीण नर्तक प्यारे । नट-नागरी = नृत्य-कला-कुशला श्रीप्रिया जू । नटि नट = नर्तक और नर्तकी । पट = वस्त्र । नटिन = नर्तक । ताम = उसमें । ताम्बूल = पान । घट = कलश । चारु = सुन्दर । पूरित = भरा हुआ । सुरभि = सुगन्ध युक्त । निधायकै = रखकर । सुम = सुमन, पुष्प ।

भावार्थः--नृत्य कला कुशल प्रिया प्रियतम जू ने नर्तकोचित घेर-घुमारदार वसन अपने-अपने मनोहर अंगों में सजकर धारण किया । इस युगल छवि को अवलोकन कर, उस शोभा पर कोटिन नर्त्तक काम रति को निछावर करने योग्य है ॥ ७४ ॥

एक बहुत बड़ी मणिमयी वेदिका है । उसके मध्य में एक सुन्दर सिंहासन है । उस पर सुखदायक कोमल बिछौना बिछा है । उस पर श्रीलड़ैतीलाल जू विराजे हैं ॥ ७५ ॥

उस शृङ्गार चौक की यूथेश्वरी श्रीशृङ्गारा अली जू ने श्रीयुगल मनहरण जू को धूप आघ्रान कराया, दो वत्तियों का दीपक प्रदर्शित किया । तत्पश्चात् नैवेद्य निवेदन किया । श्री-सरयू जल से आचमन कराकर श्रीयुगल मुखारविन्द में पान पवाया और अनेकों प्रकार का इत्र आघ्रान कराया ॥ ७६ ॥

श्रीयूथेश्वरीजी ने गजमुक्ताओं का मांगलिक चौक पूरा।

सुन्दर स्वर्ण कलश में सुगन्धित सरयू जल भर कर रखा। उस मंगल कलश में अनेक मांगलिक चिह्न छुहे हैं ॥ ७७ ॥

ये सभी मांगलिक द्रव्य श्रीयुगल किशोर जू के सन्निकट में रखा। पुनः सोने के थाल में आरति सजकर उतार रही हैं। आरति काल में नाना वाद्य यंत्र बज रहे हैं। सुगन्धित पुष्पों की पुष्पाञ्जलि बरस रही है ॥ ७८ ॥

पुनि शृँगार अली लली, लालन ढिग कर जोर।
जय जुत शब्द उचारहीं, जय जय जुगल किशोर ॥ ७६॥
जय नटवरि नटवर पिया, सिय–मुख–चन्द चकोर।
सिय शोभा घन तड़ित जिमि, लाल सलोने मोर ॥८०॥
अति सुजान चौंसठ कला, कुशल जयति जय लाल।
सुघर सिरोमनि स्वामिनी, जयति सुनयना बाल ॥ ८१ ॥
जयति जनकजा कमल–मुख, मधुप मनोहर श्याम।
जयति राम पंकज वदन, मदन कदन वनदाम ॥ ८२ ॥
जयति राम जाया जयति, छाया लच्छि अनेक।
जयति लच्छि लालित पदे, मेरे युग पद टेक ॥ ८३ ॥
जय पद्माक्षी पद्म दृग, कंज करे कर कंजु।
जय चन्द्रानानि चन्द्रमुख, रसिकवरावर मंजु ॥ ८४ ॥

शब्दार्थः—ढिग=समीप । जुत=पूर्वक । नटवरि=नर्तकियों में शिरोमणि। नटवर=नर्त्तक शिरोमणि। सुघर=चतुर। मधुप=भ्रमर। पंकजवदन=कमल समान प्रफुल्लित

सुगन्धयुक्त सरस मुख वाले। मदन कदन=काम का रूपाभि-मान भंजन करने वाले। कदन (दीप ?हरी है) वनदाम=अपने अंग सौगन्ध्य और सौकुमार्य के सामने बनमाला के अभिमान को भंजन करने वाले अथवा वनदाम से वनमाला धारण करने वाले। जाया=पत्नी। छाया=अंशांश से। लच्छि=लक्ष्मी। लालित पदे=जिनके पादारविन्द की लाड़ प्यार पूर्वक सेवा करती है। टेक=आधार, भरोसा। पद्माक्षी=कमल के समान नयन वाली। पद्म दृग=कमल नयन श्रीरघुनन्दन जू। कंज-करे=हे कमल समान हाथ वाली। करकंजु=हे कमल के समान हाथ वाले प्यारे। चन्द्रानन=चन्द्रमा के समान मुख वाली प्रिया जू। चन्द्रमुख=चन्द्र वदन प्यारे जू। रसिकवरा-वर=रसिकवरा प्यारी जू, रसिकवर प्यारे जू। (यहाँ वरा-वर दोनों क्रमशः स्त्रीलिंग और पुलिंग प्रत्यय हैं। 'रसिक' शब्द के साथ क्रमशः जोड़ने पर उपर्युक्त स्वरूप हुये।) अथवा 'वरावर' का अर्थ समान भी ले सकते हैं।

प्रसङ्गः यहां से यूथेश्वरी श्रीशृङ्गार अली कृत जय जय शब्द पूर्वक युगल स्तुति का प्रसंग है। आरती के उपरान्त स्तुति करने की विधि भी है।

भावार्थः--आरती के बाद श्रीशृङ्गारा अली जी श्रीलली लाल जू के समीप हाथ जोड़कर खड़ी हो गई और जय जाय-कार पूर्वक स्तुति करने लगी। हे श्रीयुगल किशोर जू, आप दोनों की जय हो! जय हो!! ७६ ॥

हे नर्त्तकियों में श्रेष्टा श्रीप्रिया जू, आपकी जय हो! हे नटवर प्यारे जू, आपकी जय हो!! हे श्रीप्रिया मुख-चन्द्रमा के चकोर प्यारे, आपकी जय हो! नीलाम्बर युक्त गौर वरणी श्रीप्रिया जू ऐसी फब रही हैं जैसे श्यामघन से युक्त बिजली की शोभा बढ़ जाय।, इस घन सौदामिनी की एकत्र शोभा देखकर लावण्य सिन्धु लाल जू मोर की भाँति आनन्दातिरेक से नाच रहे हैं। ऐसे दोनों की जय!! ८० ॥

चौंसठ कलाओं के जो बड़े विशेषज्ञ हैं तथा उनमें प्रवीण भी हैं, वैसे लाल जू की जय जय हो! श्रीसुनयना अम्बा की अति दुलारी पुत्री, चतुर चूड़ामणि, स्वामिनी श्रीमैथिली जू की जय जय ॥ ८१ ॥

श्रीजनकदुलारी जू के मुख-कमल के छवि-मकरन्द पान करने के लिये जो मनोहर मलिन्द (भ्रमर) बने हुये हैं, उन श्याम सुन्दर रघुवर जू की जय। कमल समान मुख वाले, अपने सौन्दर्य से काम के रूपाभिमान को भंजन करने वाले तथा बनमाला धारण करने वाले श्रीरघुनन्दन मनहरण लाल जू की जय जय!! 'कदन' को दीप देहरी मानने से अपनी सुकुमारता और सुगंध के आगे वनमाला के अभिमान को भी भंजन करने वाले ऐसा अर्थ होगा ॥ ८२ ॥

हे श्रीरघुवर-प्राणप्यारी (रामजाया) जू आपके अंशांश (छाया) से अनन्त लक्ष्मी उत्पन्न हुई हैं। "उपजहिं जासु अंश गुन खानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ॥"

महालक्ष्मी से भी आपके पादारविन्द परिसेवित हैं, मुझे तो आपके युगल चरण-कमलों का ही भरोसा है ॥ ८३ ॥

हे कमलनयनी प्रिया जू, हे कमलनयन प्यारे जू, हे कमल के समान हाथ वाली प्यारी जू, हे कमल के समान सुकुमार, सुगन्धियुक्त सरस हाथ वाले प्राण प्यारे जू, हे चन्द्र-मुखी प्रिया जू, हे चन्द्रवदन मनहरण लाल जू, हे रसिक प्रवरा प्रिया जू, हे रसिकवर श्याम सलोने जू, आप दोनों ही मनोहर हैं। आप दोनों की बारम्बार जय जयकार ॥८४॥

पुनि सुभगा सिंगार अलि, बलि-बलि जाति निहार।
अति अद्भुत ललि लाल छबि, कोटि मदन रति वार॥८५

शब्दार्थः--सुभगा=श्रीसुभगा नामक सखी, अथवा सुन्दर है भाग जिसका, ऐसी पति की प्यारी सुहागिनी यहां श्रीशृङ्गारा अलि का विशेषण मानना विशेष समीचीन है, क्योंकि श्रीसुभगाजी का नाम ऊपर के प्रसंग में कहीं आया नहीं।

भावार्थः--तत्पश्चात् रासशृङ्गार से विभूषित तथा सिंहासनासीन श्रीलली लाल जू की अद्भुत शोभा अवलोकन करके, सौभाग्य शालिनी श्रीशृङ्गारा अलीजी, बार-बार बलैया ले रही हैं, और कोटि-कोटि काम रति को उस सुछवि पर न्यौछावर कर रही हैं ॥ ८५ ॥

❀ सखियों का रास शृङ्गार ❀

अमित रंग के मनि जटित, मंजूषा मन-मोल।
धरे चौक में आनि सब, अलि पहिरत नट-चोल ॥ ८६ ॥

नट-नेपथ्य नवीन वय, नागरि सहित विलास।
पहिरत पट भूषन नटन, करि बहु कौतुक हास ॥ ८७ ॥
सजे युत्थ नव रंग के, वसन सुअंग सँवारि।
कोउ कमलाक्षी कमल मुखि, जिहि लखि मोहति मारि॥८८
कोउ चपलाक्षि कृशोदरी, मृगनैनी बहु नारि।
कोउ नितम्बिनी परम मृदु, निरखत अंग सँवारि ॥ ८९ ॥

शब्दार्थः--मंजूषा=पेटी। मनमोल=ऐसी सुन्दर जो अपनी सुन्दरता रूपी दाम देकर मन को भी मोल ले ले। मनोहर नट-चोल=नाचने समय का साज। नेपथ्य=परदे के भीतर शृङ्गार करने का स्थान। वय=अवस्था। विलास= विनोद। नटन=नाचने वाले। कमलाक्षी=कमल के समान (अक्षीनाम)नयन वाली। मारि=रति। चपलाक्षी=चंचल चितवनि वाली। कृशोदरी=पतली कमर वाली। नितम्बिनी= सुन्दर सुपुष्ट नितम्ब वाली। मृदु=कोमलांगी।

भावार्थः--यूथेश्वरी श्रीशृङ्गाराअली जी ने अनेक रंगों वाली मणियों से जटित मनोहर शृङ्गार-पेटियों को शृङ्गार चौक में लाकर रख दिया। सभी सखियाँ उनमें से रासकालीन नृत्योपयोगी वसन भूषण निकाल-निकाल कर पहनने लगीं ॥८६

नवीन अवस्था वाली नृत्य-कुशला सखियाँ नृत्य वाले वेश स्थान में नाचने वाले भूषण वसन पहन रही हैं, साथ-साथ बहुत प्रकार के हास-विनोद भी करती जाती हैं ॥८७ ॥

सखियों के यूत्थने नौ रंगों के वस्त्र अंगों में सजकर

धारण किया। उनमें कोई तो कमलनयनी है, कोई कमल-मुखी। इनकी सुन्दरता देखकर अति रूपवती रति भी मुग्ध हो रही है ॥ ८८ ॥

अनन्त ललनाओं में कोई चंचल नयन वाली है, कोई कृश (पतली) कमर वाली है, कोई मृग के समान बड़े-बड़े नयनवाली है, कोई सुन्दर नितम्ब वाली है, कोई अति सुकुमारी है। ये सब अपने अंगों को श्रृङ्गार से सजकर, दर्पणों में अपने-अपने अलंकृत स्वरूप को देखने लगीं ॥ ८६ ॥

कोउ अलवेली अलक निज, कमल वदन पर छोरि।
निरखति दीर्घादर्श में, मृदु कपोत-गल मोरि ॥ ६० ॥
कोउ निज नटनि शृँगार रचि, विम्बाधरा सुवाम।
धरि दर्पन निज नटनि लखि, मन में अति अभिराम ॥६१
कोउ कामिनि कमनीय अँग, अंक उभय सर साज।
पुनि श्रुति पन्नग पहिरि कैं, मुकुर मध्य छवि राज ॥ ६२ ॥
करि अभिनय दरपन लखत, मगन होत नट नारि।
निरखि निरखि प्रतिविम्ब निज, वारति कोटिन मारि ॥६३

शब्दार्थः--अलवेली = शृङ्गार सजकर बनी ठनी। अलक = केश। वदन = मुख। दीर्घादर्श (दीर्घ + आदर्श) = बड़े दर्पण। कपोत-गल = कबूतर के समान सुढार गर्दन वाली। विम्बाधरा = विम्ब नामक लाल फल के समान ओठ वाली। अभिराम = प्रसन्न। कमनीय = सुन्दर। अंक = नौ संख्या। उभय = दो। सर = (पंच बाण) पाँच की संख्या। अंक उभय

सर=६+२+४=१६ अर्थात् षोडश शृङ्गार। श्रुति पन्नग=४+८ (चार वेद, अष्ट नाग)=१२ अर्थात् द्वादश भूषण। मुकुर=दर्पण। अभिनय=नाट्य कौतुक। नटनारि=नाचने वाली रमणी। प्रतिविम्ब=परछांई।

भावार्थः किसी अलंकृता नायिका ने अपने कमल मुख पर अपने केश की लट छिटका ली। पुनः वह अपने कबूतर के समान कमनीय कंठ को नाज पूर्वक मोड़कर अपनी सुछवि एक बड़े दर्पण में देखने लगी ॥ ६० ॥

कोई विम्व फल के समान अरुण अधर वाली सुन्दरी अपने नृत्य-शृङ्गार को रचकर, एवं सामने दर्पण रख, उसमें अपने नृत्य-शृङ्गार को देखकर, मन ही मन बहुत प्रसन्न हो रही हैं ॥ ६१ ॥

किसी रसीली मनोरमा ने अपने मनोहर अंगों में षोड़श शृङ्गार एवं द्वादश भूषण धारण किया, तदुपरान्त दर्पण में अपनी शोभा सरखाने लगी ॥ ६२ ॥

वह नाट्यमय विनोद करती हुई दर्पण देखती है। उसकी उस लीला को देखकर सभी नर्त्तकियाँ आनन्द में डूब रही हैं। वह अपनी परछांई को देख-देख कर, उस शोभा के सामने कोटि-कोटि काम-पत्नी को निछावर कर रही है ॥ ६३ ॥

कोउ गज-गामिनि भामिनी, भूषन वसन सँवारि।
पिय-कपोल कीनो मुकुर, उपमा अद्भुत धारि ॥ ६४ ॥
अलि मुख मधुर सुहास युत, दरसत श्याम कपोल।
हंस-सुता के मध्य में, चपला हंस कलोल ॥ ६५ ॥

कोउ सखि कनक कलाप अँग, ललित कुसुम बहु दाम।
पिय पद नखर सुमुकर करि, निरखति निज छवि वाम। ९६
तहँ उपमा अद्भुत लहत, जनु जुग श्याम सरोज।
ताके दल प्रति चन्द्रमा, तामें ससि दु सरोज॥ ९७॥

शब्दार्थः - गजगामिनी = हाथी के समान मस्त झूमती हुई चलने वाली। मुकुर = दर्पण। हंस-सुता = सूर्य पुत्री यमुना जी। चपला = बिजली। कलोल = आमोद प्रमोद। कलाप = समूह। दाम = माला। नखर = नाखून।

भावार्थः--कोई हाथी के समान बलखाती हुई चलने वाली रमणी वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर, श्रीप्राणप्यारे जू के कपोल को दर्पण के समान प्रतिविम्ब प्रतिफलित करने वाला समझकर, उसी में अपना मुख देख रही है। उस पर कवि को एक अद्भुत उपमा सूझती है॥ ९४॥

उस सखी का मुख मीठी मुसकान युक्त है। दंतावलि विकशित हो रही है। दर्पण-वत श्याम कपोल में उसकी पर-छांई ऐसी लग रही है, मानो यमुनाधारा (श्याम कपोल) के बीच में विजली (मुसकान) तथा हंस-पक्षी (दंतावलि) क्रीड़ा कर रहे हों॥ ९५॥

कोई सखी स्वर्णाङ्गिनी है मानो अंग अंग में स्वर्ण-पुंज भरे हों। उसने फूलों की बहुत सी सुन्दर मालाएँ धारण कर रखी हैं। श्रीप्यारे के चरण नखों को दर्पण बनाकर, उसी में अपनी विभूषित-छवि देख रही है॥ ९६॥

यहां अद्भुतोपमालंकार का दृष्टान्त बनता है। दो श्याम-कमल (प्यारे के दोनों चरण-पृष्ठ) हैं। दोनों में बीस दल (बीस चरणांगुली) हैं। प्रत्येक दल पर एक-एक चन्द्रमा (नख) विराजता है। प्रत्येक नखचन्द्र उस सखी के दोनों नयनों के सहित मुख को दर्पण के समान प्रतिफलित कर रहा है। मानो दल-दल प्रति चन्द्रमा (सखी मुख) के सहित दो कमल (सखी के युगल नयन) सुशोभित हो रहे हों। यहां चन्द्रमा में दो कमल खिलना तथा चन्द्रमा के भीतर चन्द्रमा का होना अयुक्त है, अतः उपर्युक्त अलंकार बना॥ ९७॥

कोउ नवेलि नव सात सजि, पिय हिय पदिकादरस।
निरखति निज छवि सोहनी, लहत सु उपमा सरस॥९८
घन दामिनि अरु नखत गन, मध्य सु सुन्दर ऐन।
रवि पर्यंक बनाइ जनु, करति सिन्धुजा सैन ॥ ९९ ॥
कोउ नागरि गुण सागरी, रूप आगरी नारि।
पिय किरीट कीन्हों मुकुर, उपमा अधिक विचारि॥१००
जनु तमाल पर रवि उदय, ता मधि उदय मयंक।
ता मधि फूले कमल युग, भँवर वसत तिहि अंक॥१०१॥

शब्दार्थः--नव सात = ९ + ७ = १६ अर्थात् सोलहो शृङ्गार। पदिकादरस (पदिक + आदर्श) = पदिक रूपी दर्पण में। सोहनी = शोभायमान। नखत = तारा। ऐन = भवन। पर्यंक = पलंग। सिन्धुजा = समुद्र से जायमान लक्ष्मी। आगरी = निधान। मयंक = चन्द्रमा। अंक = गोद।

भावार्थः—कोई नवीन अवस्था वाली सखी षोडश श्रृङ्गार से विभूषित होकर श्रीलाल के हृदय देश पर विराजमान पदिक को दर्पण बनाती है। उसी दर्पण में अपनी शोभायमान छवि को देख रही है। इस पर एक सरस उपमा है ॥६८

श्याम बादल (प्यारे का शरीर) और बिजली (पीत उपरना) एवं तारागण, (मणि मोती की माला) के मध्य में एक सुन्दर भवन है (लाल जू का वक्षस्थल)। उस वक्ष रूपी भवन में सूर्य (पदिक) का पलंग बनाकर, उस पर लक्ष्मी (सखी परछांई) शयन कर रही है ॥ ६९ ॥

कोई ललना सर्वकला-कुशला, गुणगणों का समुद्र और सुन्दरता का निधान है। उसने प्यारे के मुकुट को ही दर्पण बनाया। इस पर अधिक विचार करने से कवि को एक उपमा सूझ पड़ी ॥ १०० ॥

मानो तमालतरु (प्रियतम शरीर) पर एक सूर्य (मुकुट) का उदय हुआ। उस पर (उस मुकुटरूपी दर्पण में प्रतिबिम्बित सखी मुख) पूर्णचन्द्र उगा है। उस चन्द्रमंडल (सखी मुख) में दो कमल (सखी नयन) खिले हैं। उस कमल के मध्य (नयनों के बीच) दो भ्रमर (काली पुतली) बसे हैं ॥१०१

काउ नवला पिय मन हरनि, चम्पा वरनि अनूप।
पिय दृग तार सुमुकुर रचि, अवलोकति निज रूप ॥१०२
ससि में लसत सरोज जुग, भँवर सहित पुनि ताम।
ससि सरोज अलि उभय में, उपमा अति अनुपाम ॥१०३

सिन्धुसुताननि कापि तिय, सिय पिय सन्निधि जाय।
निरखति मुख केयूर-मनि, उपमा ललित दिखाय ॥१०४
करि कर पर दिनकर उदय, तामधि सिन्धुज सोह।
सिन्धुज पर तम पुंज पर, दीपक द्रुम मन मोह ॥१०५॥
मृगनैनी वैनी वरा, सुधाधराननि नारि।
पिय के करज सुमुद्रिका, कीन्हों मुकुर विचारि ॥१०६॥
फनिफन पर कुज उदय वर, लसत सुधाधर ताम।
तापर युग सर चाप वर, धरि दीन्हों जनु काम ॥१०७॥

शब्दार्थः--चम्पावरनि=चम्पे के फूल के समान पीत रंग के अंग वाली। दृगतार=आँख की पुतली। ताम=उसमें। अनुपाम=सुन्दर। सिन्धुसुताननि-सिन्धु (समुद्र) सुत (पुत्र) चन्द्रमा। आननि=मुख वाली। (चन्द्रमुखी)। सन्निधि = निकट। केयूरमनि = भुजभूषण में जड़ी हुई मणि (को दर्पण बनाकर) ललित = सुन्दर। करिकर = हाथी की सूंड़। दिनकर = सूर्य। सिन्धुज = चन्द्रमा। दीपक द्रुम = दीपवृक्ष। वैनीवरा = उत्तम-वाणी बोलने वाली। सुधाधर = चन्द्रमा। करज = हाथ की उँगली। कुज = (कु = पृथ्वी से, ज = जायमान) पृथ्वी पुत्र मंगल।

भावार्थः-कोई नवीना-नायिका-प्रीतम जू का मन हरने वाली है। उसका अंग चम्पे के रंग के समान अति सुन्दर पीत है। वह प्यारे की नयन-पुतली को दर्पण बनाकर उसीमें अपना रूप देख रही है ॥ १०२ ॥

उस पर यह उपमा फबती है। चन्द्रमा (प्यारे मुख) में दो कमल (प्यारे नयन) हैं। वह कमल (नयन) भ्रमर (श्याम पुतली) युक्त है। दोनों भ्रमरों के मध्य (लाल जू की श्याम पुतली में प्रतिबिम्बित) चन्द्रमा (नायिका-मुख) तथा कमल (नायिका-नयन) बसे हैं। भ्रमर के मध्य चन्द्र कमल का निवास-यह उपमा अति विलक्षण (अनुपम) है ॥१०३॥

कोई चन्द्रमुखी रमणी श्रीजानकीवल्लभ जू के समीप जाकर उनकी कयूर मणि को दर्पण बनाकर, उसी में अपना मुख देखती है। इस पर बड़ी सुन्दर उपमा कवि को सूझ रही है॥ १०४॥

हाथी की सूंड़ (प्यारे की श्याम भुजा) पर सूर्य (केयूर मणि) उगा है। उस सूर्य में (केयूर-मणि में प्रतिफलित) चन्द्रमा (नायिक मुख) सोह रहा है। चन्द्रमा के ऊपर अन्धकार समूह (केश) है। उस पर दीपक वृक्ष (वन्दी आदि शिरो भूषण) है। वह मन को मोहने वाला है॥ १०५॥

कोई नायिका मृगा के समान बड़े-बड़े नयन वाली है। वह मधुर मनोहर वाणी बोलने वाली है। चन्द्रमुखी भी है। उसने प्यारे की करांगुली में शोभित मुद्रिका को विचार पूर्वक अपना दर्पण बनाया॥ १०६॥

उस पर कवि यह उपमा दे रहे हैं। सर्प के फन (भुजा के साथ हस्त) पर मंगल (लाल तलहत्थी) उगा है उसमें (तलहत्थी रूपी मंगल में स्थित मुद्रिका में प्रतिफलित नायिका

मुख) चन्द्रमा शोभित हो रहा है। उस (नायिका मुख) में कामदेव ने अपना दो धनुषवाण (भृकुटि तथा कटाक्ष) रख दिया है ॥ १०७ ॥

सेवा सौज संयुक्त सखिगण परिवारित युगल किशोर

यहि विधि अलिगन अमित सजि, नटनि वेष वर अंग।
नौ मंडल नौ रंग रचित, लसत लाल सिय संग ॥१०८॥
प्रमदा मडल नौ वरन, मध्य लसत सियलाल।
जनु दामिनि घन घेरि बहु, वरन बलाहक माल ॥१०९॥
अंग–अनूपा अधिक रुचि, रचित सुमन सिंगार।
खास खवासिनि दुहुँन की, सुमन छड़ी कर धार ॥११०॥
अमित अलीगन मध्य में, सिय पिय उपमा लेत।
मानहुँ रति पति फौज सजि, चढ़्यौ विजय के हेत ॥१११

शब्दार्थः-नटनि वेष=रास शृङ्गार। मंडल=विभाग। बलाहक=बादल। अंग अनूपा=श्रीखाश खवासिनी का नाम है। अधिक रुचि=श्रीरुच्यधिका जी नाम है। रतिपति= कामदेव। चढ्यो=धावा किया है।

भावार्थः--इस प्रकार असंख्य सखियों ने अपने-अपने उत्तमोत्तम अंगों में नृत्य-शृङ्गार धारण किया। लाल, पीले, हरे आदि विभिन्न नौ रंगों के वस्त्रालंकारों से विभूषित

सखियों के नौ विभा। श्रीलली लाल जू के संग में सुशोभित हो रहे हैं ॥ १०८ ॥

उपर्युक्त नौ रंग वाले नवयौवनोन्मत्त कामिनी-मंडल के मध्य में श्रीयुगल ललन मनहरण जू विराजे हैं। इस पर उत्प्रेक्षित उपमा है। मानो श्यामघन तथा बिजली (युगल-ललन) को पावस कालीन अस्तोन्मुख सूर्य किरणों से अभि-रंजित नाना रंग की बादल-पंक्ति (नौ रंग वस्त्र वाली सखियां) चारो ओर से घेरे हों ॥ १०९ ॥

श्रीअंग अनूपाजी, तथा श्रीरुच्यधिका जी, ये दोनों श्रीयुगल मनभावन जू की खाशी खवासिनी है। इनने फूल का श्रृङ्गार कर रखा है। ये हाथ में फूल की छड़ी लेकर चोबदारिन के रूप में सम्मुख प्रस्तुत हैं ॥ ११० ॥

असंख्य सखिगण के मध्य में श्रीप्रियाप्रियतम जू इस प्रकार उपमित हो रहे हैं, मानो कामदेव (प्यारे) अपनी सेना (सखी वृन्द) सजकर विश्व-विजय के निमित्त धावा बोल रहा हो ॥ १११ ॥

परिचारी परिकर अमित, चित सेवा अभिलाष।
चितगति चिन्तक चतुर अति, चाहत भौंह विलास ॥ ११२
कोउ नागरि बहु रंग के, अंग सुखद सुविशाल।
लिये बिछौना संग में, नील पीत सित लाल ॥ ११३ ॥
कोउ गेंडुवा तकिया लिये, अति कोमल पय फेन।
अति सुगन्ध सीतल अधिक, लली लाल सुख देन ॥ ११४

लिये छड़ी चोबदारिनी, वचन चातुरी चारु।
अंसुक अंग अमोल अति, रूपवती गुन भारु ॥११५॥

शब्दार्थः - परिचारी=किंकरी। परिकर=सखी। अमित=असंख्य। चित गति=मन की रुचि। चिन्तक= जानने को उत्सुक। भौंह विलास=भौंह द्वारा इशारा। गेंडुवा=गोल तकिया। पयफेन=दूधफेन के समान। अंशुक=महीन रेशमी वस्त्र।

भावार्थः—श्रीयुगल किशोर जू के संग में असंख्यक किंकरियाँ एवं सखियाँ हैं। इन सबों को युगल सेवा की बड़ी लालसा रहती है। श्रीलली लाल जू के मन की रुचि परख लेने में बड़ी चतुरी हैं। भौंह के संकेत द्वारा सेवार्थ आदेश पाने की प्रतीक्षा करती रहती हैं॥ ११२॥

कोई कैंकर्य-कुशला किंकरी नीले, पीले, उजले तथा लाल आदि बहुत रंगों के बड़े-बड़े बिछावन साथ में लिये हुई है। ये बिछावन श्रीयुगल अंगों को बड़े सुखदायक हैं ॥११३॥

कोई दूधफेन के समान सुकोमल गेंडुवा, कोई तकिया लिये हुई है। ये उपधान अति सुगन्ध सिंचित, सुशीतल तथा श्रीलड़ैती लाल जू के लिये सुखदायक हैं ॥ ११४॥

श्रीयुगल किशोर जू के आगे विशेष भीड़-भाड़ का नियंत्रण करने वाली चोवदारिनी छड़ी लिये खड़ी हैं। ये वचन बोलने में बड़ी चतुरी हैं। मिष्ठ मनोहर वचनों से अनुशासन करती हैं। इनके अंगों में बहुमूल्य रेशमी वस्त्र सजे हैं। ये बड़ी सुन्दरी हैं, असंख्य गुणगणों से समालंकृता हैं॥ ११५॥

कोउ चपला-वर-वरनि कर, कंज लिये वर गेन्द।
मनि-सरोज कोउ कर लिये, प्रिय जू के कलवेन्द ॥११६
कोउ वरांगि वर गामिनी, दामिनि अंग विलास।
कर सरोज लिय लाल के, चाप वान हथवास ॥११७॥
कोउ कमलाननि कमल कर, जटित मनी बहु रंग।
लिये लाल को बेंत कर, सदा रहत पिय संग ॥११८॥
कोउ मंजूषा मधुर लिय, भूषन वसन अनूप।
मोहत मदन कि मानिनी, जासु अनूपम रूप ॥११९॥
मेव मिठाई कोउ लिये, कनक पात्र में धारि।
सुघर सलोनी लाल सिय, खास खवासिनि नारि ॥१२०
कोउ वारिज-कर वारिवर, पूरित कंचन झारि।
अति सुगन्ध सीतल मधुर, लिये वारिजाकारि ॥१२१॥

शब्दार्थः--कलवेन्द=सुन्दर टिकुली। वरांगी=उत्तम अंग वाली। विलास=शोभा। हथवास=तरकश। कमला-ननि=कमलमुखी। मदन की माननी=रति। मेव=मेवा। वारिजकर=हस्तकमल वाली। वारिजाकारि=कमल के समान मुख वाली।

भावार्थः--कोई बिजली के समान अंगकान्ति वाली सखी अपने हस्तकमल में सुन्दर गेन्द लिये हुई है। कोई अपने हाथ में मणि रचित कृत्रिम कमल लिये हुई है। कोई श्रीप्रिया जू के लिये सुन्दर टिकुली लिये है ॥ ११६ ॥

कोई सुन्दर अंग वाली, सुढंग से चलने वाली तथा विजली के समान अंग शोभा वाली है। वह अपने करकंज में श्रीलाल जू के धनुष, बाण और तरकश लिये है ॥ ११७ ॥

कोई कमलमुखी अपने कर-कंजमें श्रीलाल जू का. नाना रंगों की मणियों से जड़ित, बेंत लिये हुई है। वह सर्वदा श्री-प्राणप्यारे जू के संग में बनी रहती है ॥ ११८ ॥

कोई उत्तमोत्तम वस्त्र भूषण से युक्त छोटी सी पेटी लिए हुई है। वह अपने अनुपम सौन्दर्य से रति को भी मोहित कर रही है ॥ ११६ ॥

कोई चतुरी सुन्दरी रमणी श्रीप्रिया प्रियतम जू की खाश खवासिनी है। वह स्वर्ण पात्र में सजकर मेवा मिष्ठान्न लिये हुई है ॥ १२० ॥

कोई कमल-मुखी अपने हस्तकमल में सोने की झारी में भरकर अति सुगन्धित, शीतल, मीठा, उत्तम जल लिये हुई है ॥ १२१ ॥

कोउ कंचन के मनि खचित, पान-दान मृदु हाथ।
लिये लाड़िली लाल के, रहत निरन्तर साथ ॥१२२॥

सुखसानी रसदानि कोउ, जानकि जानि पियारि।
खास खवासिनि संग नित, पीकदान कर धारि ॥१२३॥
कोउ सारीफल आदि बहु, क्रीड़ा-पट कर धारि।
मनिमय सब रँग सारिका, केलि कुशल सब नारि॥१२४

कोउ कनकाभा कामिनी, स्वामिनि पद अति प्रीत।
रचित रुचिर पाटीरमय, विजन लिये सुपुनीत ॥१२५॥
कोउ ससिकर सम कर निकर, चँवर चतुर कर धारि।
सदा रहत ललि लाल के, संग सुवेश सँवारि ॥१२६॥
निकर सुधाकर सरिस रुचि, स्रवित सुसुधा फुहारि।
कोउ नागरि कर छत्र लिये, मदन मित्र द्युति हारि॥१२७

शब्दार्थः—जानकी जानी = श्रीजानकीबल्लभ जू। सारी-फल = चौसर आदि खेलने के लिये कोष्ट अंकित वस्त्र। क्रीड़ा-पट = खेल के लिये वस्त्र। सारिका = गोटी। कनकाभा = स्वर्ण-कान्ति वाली। पाटीर = चन्दन। विजन = पंखा। सुवेश = सुन्दर श्रृङ्गार। सुधाकर = चन्द्रमा। रुचि = किरण। स्रवित = चूता हुआ। मदनमित्र = काम पत्नी रति। द्युति = शोभा।

भावार्थः—कोई मणि जड़ित स्वर्ण का पानदान अपने कोमल हाथ में लिये है। वह श्रीलड़ैती लाल जू के सदा संग में रहती है ॥ १२२ ॥

कोई श्रीजानकी बल्लभ जू की प्यारी खाश खवासिनी बड़ी रसीली एवं सुखदायिनी है। वह निरन्तर संग में रहकर अपने हाथ में पीकदान लिये रहती है ॥ १२३ ॥

कोई अपने हाथ में सारीफल आदिक बहुत प्रकार के खेल वाले वस्त्र तथा सब रंगों की मणियों को रचित गोटियां लिये हैं। सभी ललनाएँ खेल में निपुण हैं ॥ १२४ ॥

कोई स्वर्णांगिनी कामिनी श्रीप्रिया जू के चरणों में अति प्रीति करने वाली है। वह चन्दन से रचित सुन्दर पवित्र पंखा लिये हुई है ॥ १२५ ॥

कोई सुन्दर श्रृङ्गार सजकर चतुराई पूर्वक अपने हाथ में चँवर लेकर निरन्तर श्रीप्रिया प्रियतम जू के साथ रहती है। चन्द्रकिरण के समान किरण पुंज वाला वह पंखा लिये हुई हैं ॥ १२६ ॥

कोई कामपत्नी की शोभा को भी अपहरण करने वाली किंकर्य-कुशला सुन्दरी अपने हाथ में छत्र लिये हुई है। उस छत्र में चन्द्रमा के समान किरणें छूट रही हैं तथा उससे अमृत का फुहारा चूता रहता है ॥ १२७ ॥

केकि पुच्छ गुच्छक लिये, कोउ शोभित वर वाम।
पहिरि अमोले वसन अँग, हंस असनि की दाम ॥१२८॥

कनक पिंजरे मनि खचित, सुक सारिका सु ताम।
जिनहि पढ़ावत लाल सिय, लिय कर-कंज सुवाम ॥१२६

नृत्यकरा वीनाधरा, सारंगी कोउ हाथ।
कोउ मृदंग लिन्हें सुघर, निसदिन सिय पिय साथ ॥१३०

अतर अनेकन वस्तु के, अति सुगन्ध गुन सीत।
अतरदान बहु रंग के, लिये कर नागरि नीत ॥१३१॥

चोवा चन्दन अरगजा, पुष्पमाल बहु रंग।
लिन्है सुघर सुनागरी, सदा श्याम सिय संग ॥१३२॥

दर्पन बनक अनेक के, कनक खचित नव रंग।
लिये नागरी कमल कर, सदा सियावर संग ॥१३३॥

शब्दार्थः- केकी=मयूर । पुच्छ=पाँख । गुच्छक= मोरछल । हंस असनि=हंस का भोजन मोती है। दाम= माला । सारिका=मैना । नृत्यकरा=नाचने वाली । वीना-धरा=वीणा धारण करने वाली । सीत=ठंठा । नीत=नित्य, नित, सदा । अरगजा=नाना सुगन्ध मिश्रित जल । बनक= बनावट ।

भावार्थः--कोई उत्तमानायिका अनमोल वसन पहनकर मोती माला से अलंकृत हैं। वह मोरछल लिये सुशोभित हो रही है ॥ १२८ ॥

कोई सुन्दरी सखी अपने करकंज में मणि जड़ित सोने का पिंजड़ा लिये हुई है। उसमें सुग्गा और मैना हैं, जिनको श्रीलली लाल जू स्वयं पढ़ाते हैं ॥ १२९ ॥

कोई नाचने वाली है। किसी के हाथ में वीणा, किसी के सारंगी, किसी के हाथ में मृदंग हैं। ये सब वाद्य-प्रवीण हैं। निरन्तर प्रिया-प्रियतम जू के संग रहती हैं ॥ १३० ॥

अनेक वस्तुओं से बने इत्र हैं। ये बड़े सुगन्धित एवं शीतल प्रभाव वाले हैं। इन्हें अनेक रंगों के अतरदानों में रखकर सेवा प्रवीणा सखी निरन्तर युगल ललन के संग लिए रहती है ॥ १३१ ॥

कोई चोवा, चन्दन मिश्रित अगरजा, कोई बहुत रंग

वाली पुष्प मालाएँ लिए निरन्तर श्रीश्यामा श्याम के साथ रहती हैं। सबकी सब सेवा में चतुर एवं सर्वकला कुशला हैं॥ १३२॥

कोई सेवा-चतुरी अपने कर-कमल में सोने से रचित तथा नौ रंगों की मणियों से खचित, अनेक प्रकार की बनावट वाले, दर्पण लिये हुई हैं। ये श्रीजानकी बल्लभ जू के निरन्तर संग में रहने वाली है॥ १३३॥

कोउ षटकोन त्रिकोन घटि, मच्छ सुमंगल लच्छ।
आलेखित मनि कनक पट, लिये सुमध्या दच्छ॥१३४॥
सरयू जल पूरित सुघट, हाटक चित्रित रंग।
युगल युगल अलि कर लिये, सदा लाल सिय संग॥ १३५
बहुतक कर-कंजन लिये, जय पताक युग रंग।
नील पीत युग यष्टि में, सदा सियावर संग॥१३६॥
गज गामिनि दामिनि छटा, स्वामिनि सिय पद प्रीत।
नामिनि जय शब्दिक वरा, यामिनिहू न अमीत॥१३७॥

शब्दार्थः--घटि=घटित, रचित। मच्छ=मछली। लच्छ=चिह्न। आलेखित=लिखा हुआ, अंकित। सुमध्या=पतली कमर वाली। दच्छ=प्रवीणा। सुघट=कलश। हाटक=सोना। यष्टि=छड़ी। नामिनि=नामोच्चारण करने वाली। जय शब्दिक=जय जयकार घोष करने वाली। यामिनि=रात्रि। अमीत=पृथक होने वाली।

भावार्थः--कोई प्रवीणा पतली कटि वाली नायिका

स्वर्ण मणि के षटकोण-त्रिकोण बने हुए वस्त्र लिए हुई है। उन वस्त्रों पर मछली के मांगलिक चिह्न अंकित हैं ॥ १३४ ॥

दो दो सखियाँ अपने-अपने कर-कमलों में मंगल कलश लिये हैं। कलश स्वर्ण के बने हैं, जिन पर नाना रंगों के मांगलिक चिह्न छुहे हैं। उनमें श्रीसरयू जल भरे हैं। ये सदा श्रीलली लाल जू के साथ रहती हैं ॥ १३५ ॥

बहुत सी सखियां अपने=अपने हस्तकमल में दो रंग वाली विजय पताकाएं लिये हुई हैं। पताकाएँ नीले-पीले डंटों में लगी हैं। सदा श्रीसियावर जू के साथ रहती हैं ॥ १३६ ॥

उत्तम रीति से नामोच्चारण पूर्वक जयकार घोष करने वाली सखियाँ, हाथो के समान झूमकर चलने वाली विजलीवत अंग कान्ति वाली, तथा श्रीसिया स्वामिनी जू की चरणानुरागिनी हैं। ये रात्रि में भी दोनों प्राणेशों से पृथक नहीं होतीं ॥ १३७ ॥

भँवर लट्टू पासी लई, चकई चतुर सुजान।
कनक कोयली कर लिये, ललना कला निधान ॥१३८॥
यहि विधि सौज अनेक रँग, एक अनेकन हाथ।
सदा रहत अति प्रेम युत, पिय प्यारी के साथ ॥१३९॥
परी चोट घन-घोष पर, शंख भेरि सम ताल।
महाधुनी मंजीर की, चले लाड़िली लाल ॥१४०॥

शब्दार्थः--पासी=गोटी। कोयली=घिरनी। घनघोष=नगारा। मंजीर=नूपुर।

भावार्थः--क्रीड़ा कला के भंडार बहुत सी ललनाएँ हैं। उनमें किसी के हाथ में भँवर, किसी के लट्टू, किसी के गोटी, किसी के चकई हैं। सोने की घिरनी आदिक क्रीड़ा वस्तुएं चतुर प्रवीणा लिये हैं॥ १३८॥

इस प्रकार अनेक प्रकार की सेवा सौजें (सामग्रियाँ) हैं। अनेक सखियों के हाथों में एक-एक वस्तु है। ये सभी सखियाँ अत्यन्त प्रेम में पगी हुई, निरन्तर श्रीप्रिया-प्रियतम जू के साथ रहती हैं॥ १३९॥

अब गन्धर्व चौक के लिये प्रस्थान का समय जानकर कूच के नगारे पर चोट पड़ी। उसी के ताल से मिलाकर शंख दुंदुभि बजने लगीं। चलने समय नूपुरों की सम्मिलित ध्वनि बड़े जोरों से होने लगी। इतने में श्रीलाड़िली लाल जू चल पड़े॥ १४०॥

✲ गन्धर्व चौक में महारासोत्सव विधान ✲

पुनि गन्धर्व सुचौक में, आये श्यामा श्याम।
तहं अलि राग-विशारदा, यूथेश्वरि सुखधाम ॥१४१॥
हेम हर्म्य नौ रंग के, रतन खचित चित्राम।
नारि पुरुष निर्मित अमित, लखि मोहत रति काम॥१४२
अति विचित्र खम्भावली, वातायन बहु रंग।
रतन जाल रचना अधिक, छज्जे मणि पच रंग ॥१४३॥

ध्वज पताक तोरन कलश, लाल झालरें सोह।
कहुँ सीपज मनि झालरें, मनहु नखत सन्दोह ॥१४४॥
कहुँ मरकत की झालरें, कहुँ मरकतमय खम्भ।
मनु बहु रविसुत चित्र लखि, भयो अंग अति तम्भ ॥१४५

शब्दार्थः--राग विशारदा = संगीत विद्या में परम पंडिता। हर्म्य = महल। निर्मित = चित्रांकित। वातायन = खिड़की, झरोखा। तोरन = वन्दनवार। सीपजमनि = मोती। नखत = नक्षत्र, तारा। सन्दोह = समूह। रविसुत = सूर्य पुत्र शनिश्चर। तम्भ = स्तम्भ, जड़वत।

भावार्थः--तत्पश्चात् श्रीप्रियाप्रियतम जू रासोत्सव के निमित्त गन्धर्व चौक में पधारे। वहाँ की यूथेश्वरी श्रीराग-विशारदा जी हैं। वे सर्व सुखदायिनी हैं ॥ १४१ ॥

वहां का रासमहल स्वर्ण रचित है। नौ रंग वाले रत्नों के चित्राम दीवालों बर बने हैं। वहां नायक-नायिकाओं के चित्र ऐसे बने हैं, जिन्हें देखकर रति और काम भी मोहित हो जाते हैं ॥ १४२ ॥

उन महलों में खंभावली भी चित्र-खचित हैं। अनेक रंगों के गोखे-झरोखे बने हैं। रतन जाल एवं पाच रंगों की मणियों से निर्मित छज्जों में अधिक शिल्पकला की कारीगरी प्रगट की गई है ॥ १४३ ॥

छज्जों पर ध्वजा, पताका, तथा कलश की शोभा छाई है। द्वारों पर वन्दनवार बँधे हैं। लाल-लाल झालरें झूल रही

हैं। कहीं मोती की झालरें हैं। ऐसे जगमग करते हैं, मानो तारागण के समूह हों ॥ १४४ ॥

कहीं श्याम मर्कत मणि की झालरें हैं। कहीं श्याम मर्कतमणि की खंभावली हैं। मालूम पड़ता है श्याम रंग वाले शनिश्चर ग्रह अनेक रूप धर कर, यहां के चित्राम देखने आये। चित्रामों की सुन्दरता देखकर, उनके अंगों में स्तम्भ अवस्था प्राप्त होगई। फलतः जड़ीभूत होकर वही झालरों एवं खंभों के रूप में बने हैं॥ १४५ ॥

पद्मराग खम्भावली, भूमिसुतावलि राज।
कहूँ फटिक खभालिका, जनु बहु शुक्र समाज ॥१४६॥
कहुँ वातायन आलि जनु, अंशुमाल को राज।
कहुँ हाटक छज्जालि जनु, बैठे बहु गुरु साज ॥१४७॥
कहुँ मरकत मनि द्वार में, हाटक तोरन लेख।
जनु घन में दरसत ललित, इन्द्रचाप अवशेष ॥१४८॥
शोभित रंग पिधान पट, कनक किंकिनी ताम।
लटकत लटा सुपाट के, ता मधि मुक्ता दाम ॥१४९॥
चौक सुफाटिक मनि रचित, हरित मनिन को जाल।
तामें हाटक फूल मधि, शोभित विन्दुक लाल ॥१५०॥

शब्दार्थः -पद्मराग = लाल कमल रंग वाली मणि। भूमिसुत + अवलि = पृथ्वी पुत्र अर्थात् मंगल की पंक्ति। फटिक = उज्ज्वल रंग की स्फटिक मणि। अंशुमाल = सूर्य

किरण। हाटक=सोना। अवशेष=इन्द्र धनुष के रंगों में पीत रंग बचा हुआ। दाम=लड़ी।

भावार्थः—कहीं लालमणि की खंभावलि है, मानो मंगलग्रहों की पंक्ति हो। कहीं स्फटिक मणि की खंभावलि है, मानो बहुत से शुक्रों का समूह हो ॥ १०६ ॥

कहीं गोखे झरोखों की पंक्ति इतनी प्रकाशमान हैं, मानो सूर्य किरणों की पंक्ति हो। कहीं स्वर्ण के छज्जे समूह बने हैं, मानो बहुत रूप से वृहस्पति पंक्तिवद्ध सजावट के साथ बैठे हों ॥ १४७ ॥

कहीं मर्कतमणि रचित द्वारों के ऊपर स्वर्ण लेखों में वन्दनवार चित्रित हैं, मानो बादल पर इन्द्र धनुष उगा हो, उसके कई रंगों में से बहुत से रंगों के विलीन हो जाने पर भी पीतांश बचा हुआ हो ॥ १४८ ॥

अनेक रंगों के वस्त्रों से बने परदे शोभित हो रहे हैं। उनमें स्वर्ण के घूंघरु लगे हैं। रेशम के गुच्छे लटक रहे हैं। उन गुच्छों में मोती की लड़ें लगी हैं ॥ १४९ ॥

रास चौक स्फटिक मणि निर्मित है। उसमें हरितमणि की जाली बनी है। बीच-बीच में स्वर्ण के फूल कढ़े हैं। फूलों के मध्य में लाल-लाल विन्दुएँ पड़ी हैं ॥ १५० ॥

तहँ अलि राग विशारदा, मनि सिंहासन धारि।
बैठारे ललि लाल को, निरखति तन धन वारि ॥१५१॥

दीन्हीं विधि सों अर्घ्य पुनि, चरन प्रछालि सप्रीति ।
पुनि आचमन कराय कै, विधिवत धूप सुनीति ॥१५२॥
पुनि दीपक युग वर्तिका, निरखि युगल मुखचन्द ।
मेवा मिस्री पय मधुर, प्यावति अतिहि अनन्द ॥१५३॥
पुनि आचमन कराय रुचि, बीरी देत सुधारि ।
अतर सुगन्ध अनेक विधि, देत सुघर सोइ नारि ॥१५४॥
माल सुपुष्प अनेक रँग, वेलि चमेलि गुलाव ।
पहिरावति अति प्रीति सों, अति सुगन्ध चहचाव ॥१५५

शब्दार्थः--प्रछालि=धो करके । सुनीति=पूजन की सुव्यवस्थित पद्धति । वर्तिका=बत्ती । चहचाव=फैलना ।

भावार्थः--उपर्युक्त रास चौक में श्रीराग-विशारदा नामक यूथेश्वरी जी ने एक मणिमय सिंहासन सजाया । उस पर श्रीलली लाल जू को प्रीति पूर्वक पधरा कर, युगल शोभा का अवलोकन करने लगी और उन पर अपना तन-मन-धन न्यौछावर कर रही हैं ॥ १५१ ॥

तत्पश्चात् श्रीराग-विशारदा जी ने श्रीयुगलकिशोर जू को विधि पूर्वक अर्घ्य प्रदान किया, प्रेम पूर्वक चरण धोया, दुबारा आचमन कराकर पूजन की सुव्यवस्थित पद्धति के अनुसार धूप आघ्रान कराया ॥ १५२ ॥

पुनः दो बत्तियों का दीपक दिखलाया । (रसिक जन युगल बत्तियों का दीपक दिखलाते तथा आठ फूलबत्तियों की आरती उतारते) । चन्द्रमा के समान आह्लाद दायिनी दोनों

प्रिय की मुख छवि देखी। अघौटे मीठे दूध में मेवा मिश्री मिलाकर सानन्द दोनों को पान कराया ॥ १५३ ॥

तदुपरान्त लाड़-प्यार पूर्वक आचमन कराकर, सुन्दर रीति से सम्हाल कर लगाया हुआ पान का बीड़ा श्रीमुखों में समर्पण किया। पुनः वही चतुरी रमणी श्रीराग-विशारदा जी अनेक प्रकार के अति सुगन्धमय इत्र प्रदान करती हैं ॥१५४॥

पुनः बेलो, चमेली गुलाब आदि अनेक रंगों के सुगन्धित फूलों की सुरचित मालाएँ अति प्रीति पूर्वक धारण कराईं। चारो ओर अति सुगन्ध की लपट फैल उठी ॥१५५॥

धरि मंगल पूरन कलस, गज मनि चौक सँवारि।
कनक थार आरति करति, लोन कृष्णिका वारि ॥१५६॥
पुष्प वृष्टि अलिगन करति, जय जय शब्द उचारि।
बाजे बाजत विविध तहँ, वरसत रंग फुहारि ॥१५७।
परिकर सब सनमानि पुनि, निज गन परिकर बद्ध।
बाजन चार प्रकार बहु, तत घन सुषिर अनद्ध ॥१५८॥
नागरि राग विशारदा, निज नागरी सहेलि।
मिलि सो महा समाज में, सुरसरि सागर पेलि ॥१५९॥
उमग्यो सिन्धु शृङ्गार रस, सलिल अलोगन ताम।
तरल तरंग कटाक्ष मनु, हास भँवर अनुपाम ॥१६०॥

शब्दार्थः--कृष्णिका = राई। परिकर = श्रीयुगलकिशोर के साथ-साथ समागत सखी समूह। गन = गन्धर्व चौक निवासिनी सखियाँ। परिकरबद्ध = कमर कसकर (यथा--"परिकर

बान्धि उठे अकुलाई ।") तत=वीणादि तार वाले बाजे। घन=झांझ मंजीरादि। सुषिर=वंशी आदि मुख से फूँक कर बजाने वाले। आनद्ध=मृदंग मुरजादि चमड़े से छाये हुये बाजे। पेलि=प्रवेश करके।

भावार्थः--श्रीयूथेश्वरी जी श्रीयुगलकिशोर जू के सामने, उनके मंगल के लिये, जल पूर्ण मंगल कलशों की स्थापना की। गजमुक्ता के चौक पूरे तत्पश्चात् स्वर्ण थाल में सजकर आरति उतार रही हैं। रोई लोन निछावर किया ॥ १५६ ॥

सखियाँ श्रीयुगल ललन जू को जय जयकार पूर्वक फूल बरसा रही हैं। आरती समय में बहुत प्रकार के बाजे बज रहे हैं। अनेक रंगों के सुगन्धित द्रव्यों का छिड़काव हो रहा है ॥ १५७ ॥

पुनः श्रीलली लाल जू के संग में समागत सखियों का विधिवत आदर सत्कार किया। अपने समाज के सहित रास-नृत्य करने के लिये कमर कसकर तयार होगईं। तत, धन, सुषिर और आनद्ध--चार भाँति के बहुत बाजे बजने लगे॥१५८

गान प्रवीणा श्रीराग-विशारदा जी अपनी रासनिपुणा अनुचरियों को साथ लेकर आगन्तुक महासमाज में सम्मिलित हो गई, मानो गंगा जी समुद्र में प्रवेश करती हों ॥ १५६ ॥

समुद्र का सांगोपांग रूपक बान्धते हुये कहते हैं कि उस समय का दृश्य कैसा है मानो शृङ्गाररस के समुद्र में बाढ़ आ गई हो। उस शृङ्गार रस रूपी सिन्धु में जल के स्थान में

सखियाँ हैं, नायिकाओं के कटाक्ष ही उसकी चंचल लहर है, मुसकान उस समुद्र का भौंर है ॥ १९० ॥

महा मीन मंगल सुनिधि, रघुनन्दन रस रास।
रहत मगन तामें सदा, अति आनन्द निवास ॥१९१॥
सखियन भूषन बसन धुनि, बाजन धुनि अभिराम।
गान ध्वनि सातो स्वरन, महा घोष यह ताम ॥१९२॥
सिन्धु-घोष चोटे परीं, चले लाड़िलो लाल।
चलीं अलीगन झमकि कै, जनु बहु दामिनि माल ॥१९३
बहुतन के करकंज में, सारंगी छवि देत।
लिये तमूरा अमित तिय, मधुर गान सुख लेत ॥१९४॥
बहुतक लिये मृदंग वर, बहुतक झाँझ मंजीर।
मुरज लिये बहुतक अली, बहुतक लिये नफीर ॥१९५॥
बहु उपंग लियें नागरी, मरदल लिये अनेक।
बहुतक कर झरझर लिये, डिमडिम बहुत विशेक ॥१९६

शब्दार्थः--सिन्धु घोष = समुद्र का गर्जन। नफीर = तुरही। उपंग = जल तरंग। मरदल = मृदंग की भाँति बंगाली बाजा। झरझर = झाँझ। डिमडिम = डमरू। घोष = गर्जन। मृदंग = पखावज।

भावार्थः--उपर्युक्त शृङ्गार-रस-सिन्धु में रस के पुंज श्रीरघुनन्दन लाड़िले जू मंगल निधान राघव नामक महामीन हैं (मछली मांगलिक होती हैं और आप भी "मंगल भवन

अमंगल हारी हैं ।") आप निरन्तर उसी में डूबे रहते हैं, क्योंकि यह आपके लिये बड़ा ही आनन्द-दायक निवास स्थल है ॥१६१

सखियों की भूषण-झंकार, वस्त्रों की मरमराहट, वाद्य-यंत्रों की मनोहारिणी ध्वनि और सातों स्वरों से गान करने की ध्वनि. सबों की सम्मिलित महाध्वनि हो रही है ॥ १६२ ॥

नगाड़े पर चोट पड़ना यही मानो समुद्र गर्जन है। श्री-लड़ैतीलाल जू वहां से मध्य स्थली में चल पड़े। साथ-साथ सखियाँ भी अपने आभूषणों से झमझम ध्वनि प्रकटाती हुई चल पड़ीं। उस समय सखियाँ क्या मालूम पड़ती हैं ? मानो बहुत सी विजलियों की माला हो ॥ १६३ ॥

प्रसङ्ग:--सखियों के हाथों हाथ जो वाद्य यंत्र हैं, उनमें कुछेक के नाम उल्लिखित हो रहे हैं।

बहुत सी सखियों के कर-कमलों में सारंगी सुशोभित हो रही हैं। अनेकों रमणियाँ तम्बूरा लिये हुई मधुर-मधुर गान का आनन्द ले रही हैं ॥ १६४ ॥

भावार्थ:-बहुतों के हाथों में पखावज हैं, बहुतों के झाँझ-मंजीरें हैं। बहुत सखियां मुरज लिये हैं और अनेकों सखियाँ तुम्ही लिये हैं ॥ १६५ ॥

बहुत सी वाद्य-कुशला जलतरंग लिये हैं। अनेकों के हाथों में मर्दल हैं, बहुत सी अपने हाथों में झाँझ लिये हुई हैं। अधिकांश के हाथों में डमरू हैं ॥ १६६ ॥

लिये बहुत करताल कर, बहुत लिये मुरचंग।
बहु रवाव लिये नागरी, सजत सिया प्रिय संग॥१६७॥

बहुतक नाग-विमोहिनी, वेनु लिये कर-कंजु।
बहुतक वंशी कर लिये, स्वर-मंडल बहु मंजु ॥१६८॥
मदन भेरि बहु अलि लिये, पन्नग-मुखी अपार।
बहुतक लिये सुखंजरी, बहुतक लिये सितार ॥१६९॥
अमित अली वाजंत्रिका, वाजन में मृदु बोल।
व्यक्त निसारत सुघर अलि, बाजे सकल अमोल ॥१७०॥

शब्दार्थः--मुरचंग=मुँहचंग, मुख से बजाने वाला यंत्र। रवाब=सारंग की तरह एक बाजा। नाग विमोहनी=सर्प को मोहने वाली। बेनु=तुमड़ी। स्वरमंडल=एक प्रकार का तार वाला बाजा। मदन भेरि=कामोद्दीपिनी दुंदुभि। पन्नग-मुखी=नागफनी नामक सिंघे के समान एक नेपाली बाजा। व्यक्त=स्पष्ट।

भावार्थः--बहुत सी सखियों के हाथों में करताल है, बहुत मुँहचंग लिये हुई हैं, बहुत वाद्य-निपुणा रवाब लिये हैं। सभी श्रीयुगल ललन जू के साथ में सुशोभित हैं॥ १६७॥

बहुत सी सखियाँ अपने-अपने हाथों में तुमड़ीं नामक बाजे लिये हैं। इसी बाजे से सर्प को मोहित किया जाता है। बहुत सी वंशी लिये हैं और बहुत सी सुन्दरियाँ सुन्दर स्वर-मंडल नामक बाजा लिये हुई हैं॥ १६८॥

बहुत सी सखियाँ कामोद्दीपिनी दुंदुभि लिये हैं बहुत नागफेनी नामक बाजा लियें हैं। बहुत खंजरी लिये हैं, और बहुत सितार लिये हैं॥ १६६॥

असंख्य बाजा बजाने वाली सखियों में जो इस कला में विशेषज्ञा (सुघर) हैं, वह वाद्य यंत्रों में ही मीठी मानवी वाणी सुस्पष्ट रूप से निकालती हैं। यहां के सभी वाद्ययंत्र दिव्य अनमोल हैं ॥ १७० ॥

महानाद दुंदुभि बजी, भेरि शब्द रह्यो छाय।
पहुँचे लाड़िलि लाल दोउ, रास चौक में जाय ॥१७१॥
रचना ललित सुचौक की, अद्भुत वरनि न जाय।
कृपा अली गुरुदेव की, चहै तो हिय दरसाय ॥१७२॥
सात कुंज आवरण के, मध्य सुपरम विशाल।
हेम वेदिका तासु मधि, कल्पद्रुम छवि जाल ॥१७३॥
अति विशाल अति उच्च सो, निस्तल छत्राकार।
पत्र हरित-मनिमय द्युती, पद्मराग फल सार ॥१७४॥
अमित शीतकर सम द्युती, हाटक वरन सुकंध।
त्रय सम्पदा सु सर्वदा, परम प्रमोद सुवन्ध ॥१७५॥

शब्दार्थः--हेम = स्वर्ण। निस्तल = गोलाकार। शीत-कर = चन्द्रमा। सुकंध = स्कन्ध, वृक्ष के तने का वह भाग जहाँ से डालियाँ फूटती हैं। सुवन्ध = वृक्ष का तना।

भावार्थः--स्वागत स्थल से रासचौक में जाने के लिये नगारे बजे, उसकी महान ध्वनि हुई। भेरी बाजे की ध्वनि चारों ओर फैल गई। इतने ही में श्रीलाड़िली लाल जू रास-चौक में पहुँच गये ॥ १७१ ॥

उस सुन्दर रास चौक की रचना ऐसी विलक्षण है, जो

कहते नहीं बनती। श्रीरसिक गुरुदेव रूप में अवतीर्ण श्रीलली जू की कृपानाम्नी सखी हैं। यदि साधक उनकी कृपा की चाहना करें, तो हृदय के ध्यान पथ में सब सूझ पड़े ॥ १७२ ॥

रासचौक के बाहर सात कुंजों के सात आवरण हैं। मध्य में बहुत विस्तृत सुवर्ण की वेदिका है। उस वेदिका के बीच में एक सुशोभा सम्पन्न कल्प वृक्ष है ॥ १७३ ॥

वह कल्प वृक्ष बहुत ऊँचा और विशाल है। ऊपर डालियों की छायाछत्रवत गोलाकार है। पत्ते हरित मणियों के प्रकाशमान हैं। इसके उत्तमोत्तम लाल-लाल-फल पद्मराग मणि रचित हैं ॥ १७४ ॥

इसके स्कन्ध सुवर्ण रंग के हैं। इस वृक्ष से असंख्य चन्द्रमा के समान प्रकाश हो रहा है। पत्ते फूल और फल-- तीनों सम्पत्ति से सर्वदा सम्पन्न रहता है। इसका तना परमानन्दमय है ॥ १७५ ॥

वन विचित्र तहँ राजहीं, वकुल कदम्ब तमाल।
पुंग नालकेरी सघन, सरला सरल रसाल ॥१७६॥
युग्म पत्र जाम्बूक वन, चंपतार मन्दार।
हरिचन्दन पाटीर वन, श्रीफल तिलक अपार ॥१७७॥
फूल सुफूले रंग बहु, जाही जुही चमेलि।
नवल नेवारी कुन्द बहु, महा सुगन्ध सफेलि ॥१७८॥
एला वेला सुर-कुसुम, चम्पा चारु गुलाव।
सेवति केतकि मालती, अति सुगन्ध चहवाव ॥१७९॥

बहु तड़ाग वर वापिका, रतन रचित सोपान।
पद्म प्रफुल्लित रंग बहु, मनि विचित्र उदपान ॥१८०॥

शब्दार्थः--वकुल=मौलिश्री । पुंग=सुपारी। नालकेरी=नारियल। सरला=चीड़ नामक वृक्ष जिससे गन्धाविरोजा गोंद निकलता है। युग्मपत्र=कचनार। जाम्बूक=जामुन। पाटीर=चन्दन। श्रीफल=वेल। तिलक=पुन्नाग। जाही=चमेली जाति का एक फूल। सफेलि=फैल रही है। एला=एलायँची। सुरकुसुम=लौंग। सोपान=सीढ़ी। उदपान=कूप।

भावार्थः--रास चौक के चारों ओर बड़े-बड़े विलक्षण बन हैं। जैसे--मौलिश्रीवन, कदम्बवन, तमाल वन, पुंगीवन, नारिकेल वन, सरल चीड़वन, रसाल वन, कचनारवन, जामुन वन चम्पतार वन, मन्दार वन, हरिचन्दन वन, चन्दन वन, बेलवन और सुविस्तृत पुन्नाग वन ॥१७६-१७७॥

पुनः वहां आस-पास में अनेकों रंग बिरंग के उत्तमोत्तम फूल खिले हैं। यथा--जाही, जूही, चमेली, नई नेवारी और बहुत प्रकार के कुन्द। इन सबों की महा सुगन्ध चारो ओर फैल रही है॥ १७८॥

इलायँची बेला, लौंग, चम्पा, उत्तम जाति का गुलाब, सेवती, केतकी, और मालती खिली हैं। चारों तरफ अतिशय आमोद फैल रही है॥ १७९॥

उन बनों में अनेक सरोवर, और उत्तमोत्तम बावली हैं।

इन जलाशयों में रत्न की सीढ़ियाँ बनी हैं। इनमें बहुत रंगों के कमल खिले हैं। इनके अतिरिक्त मणिमय चित्राम खचित कूप भी हैं ॥ १८० ॥

नदत हंस केकी नटत, परभृत गावत गीत।
कल कपोत बोलत मधुर, रटत पपीहा मीत ॥१८१
अति सुगन्ध गति मंद वर, सुखकर शीत बयारि।
मार-सिखी के परम सुख, लागत अतिहि पियारि ॥१८२
अली रासकुंजाधिपा, तहँ यूथेश्वरि सोह।
रूपवती गुन आगरी, मार-मानती मोह ॥१८३॥
सो अलि अलिगन साजि निज, सिय पिय दरसन हेत।
मंगल द्रव्य सँवारि कै, चली सुहर्ष समेत ॥१८४॥
रत्न यवांकुर पात्र बहु, दधि रोचन दुर्वांक।
रचित रंग मनि थार में, पूरन अर्ध ससांक ॥१८५॥

शब्दार्थः--नदत=कलरव करता है। केकी=मयूर। परभृत=कोयल। मीत=पिउ-पिउ। मारशिखी=कामाग्नि। मार माननी=रति। रोचन=गोरोचन। दुर्वांक=दूब के दल। पूरन अर्ध ससांक=कोई पूर्णचन्द्राकार, कोई अर्द्ध चन्द्राकार थार है।

भावार्थः--उन बनों के उद्दीपन विभाव का वर्णन करते हुये कहते हैं कि वहां हंस कलरव कर रहे हैं, मयूर नाच रहे हैं, कोयल गान कर रही हैं, सुन्दर कबूतर मधुर बोली बोल रहे हैं तथा पपीहा पिउ-पिउ पुकार रही हैं ॥ १८१ ॥

वहां अति सुगन्ध, मंद-मंद गति से, सुखदायक शीतल त्रिविध पवन बह रहा है। इस पवन के द्वारा कामाग्नि को परम सुख होता है अर्थात् कामाग्नि प्रज्ज्वलित हो जाता है। फल-स्वरूप प्रियतम प्राणेश्वर जू के प्रति निरतिशय प्रेमोद्दीप्त हो जाता है ॥ १८२ ॥

उस रास चौक की यूथेश्वरी श्रीरास कुंजाधिपा अली हैं। वह बड़ी सुन्दरी तथा गुणगणों की खान हैं। अपने सौन्दर्याधिक्य से रति को भी मोह लेती हैं ॥ १८३ ॥

श्रीरास कुंजाधिपा जी अपनी अनुचरी सखीगणों को वस्त्रालंकारों से तथा सेवा सौंजों से सजाकर, श्रीजानकी-वल्लभ जू के दर्शनार्थ मांगलिक वस्तुओं को ले बड़े हर्ष के साथ चलीं ॥ १८४ ॥

रत्न के कृत्रिम यवांकुर, दधि, गोरोचन, दूर्वदल; इन सब मांगलिक वस्तुओं को मांगलिक चित्रों से सुरंजित किये हुये मणिमय थाल में सजाया। इन थालों में कोई पूर्ण चन्द्राकार हैं, कोई अर्द्ध चन्द्राकार हैं ॥ १८५ ॥

सरयू जल पूरित सुघट, हाटक चित्र विचित्र।
लीन्हें नागरि सीस पर, जनु ससि पर उयो मित्र ॥१८६॥
कोउ कर लीन्हें भद्र-पट, नवल नागरी साज।
कनकलता जामें कमल, तापर जनु रवि राज ॥१८७॥
चली मिलन रासाधिपा, सिय पिय को सुखसालि।
प्रिया समेत वसंत को, भेंटन चली लतालि ॥१८८॥

लिये मिठाई बहुत विधि, बहु विधान पकवान ।
मेवा बहुत प्रकार के, औंटे दूध सुजान ॥१८९॥
अली अर्घ्य दै चरन युग, धोवत मन अति चैन ।
पुनि आचमन कराय कै, बैठारे सुख-दैन ॥१९०॥

शब्दार्थ:-भद्रभट = शुभचिह्नों से अंकित मंगल वस्त्र । लतालि = लता समूह । सुजान = सेवा मर्मज्ञा ।

प्रसंग:--श्रीजानकी बल्लभ जू के स्वागतार्थ श्रीरासाधिपाजी अपने सखी-समाज के सहित अगवानी करने जा रही हैं ।

भावार्थ:--स्वर्ण के मंगल कलश मणि चित्रामों से अंकित हैं। उनमें सरयू जल भरा है। चतुरी सखियां उन्हें सर पर लिये हैं। उस समय की शोभा कैसी है ? मानो पूर्ण चन्द्रमा (सखी मुख) के ऊपर सूर्य (कलश) उगे हों ॥ १८६ ॥

कोई नवीना चतुरी अपने हाथ में सजाकर मंगल वस्त्र लिये हुई है उसकी शोभा ऐसी हो रही है; मानो स्वर्णलता (सखी-शरीर) पर कमल (सखी-हाथ) जमा हो और उस कमल पर सूर्य (मणि सूत्रों से अंकित मंगल वस्त्र) सुशोभित हो रहा हो ॥ १८७ ॥

रास चौक की यूथेश्वरी श्रीरासाधिपा जी अपनी अनुचारियों के सहित सुख निधान श्रीजानकी-जान जू से मिलने जा रही हैं। उस काल में इनकी शोभा ऐसी हो रही है, मानो लता समूह (श्रीरासाधिपा जू का समाज) शोभानाम्नी प्रियतमा

के सहित ऋतुराज वसन्त (श्रीलाल जू) की अगवानी करने जा रहे हों ॥ १८८ ॥

श्रीरासाधिपाजी स्वागत-उपहार समर्पण करने के लिये साथ में अनेकों भाँति के मिष्ठान्न, पकान्न, भाँति-भाँति के मेवा और औंटे हुये दूध को लेकर चलीं ॥ १ऐ६ ॥

श्रीलली लाल जू के समीप पहुँच कर, श्रीयूथेश्वरी अली ने सर्व प्रथम अर्घ्य प्रदाम किया, पुनः युगल किशोर जू के चरणारविन्दों को धोया। इस सेवा से मन को बड़ा सुख हुआ। पुनः आचमान कराया, तत्पश्चात् युगल सुखदाता जू को सिंहासन पर विराजमान कराया ॥ १६० ॥

कनक वेदिका पर लसत, कमलासन आसन्न।
पद्मराग रचि पद्म इक, शोभित परमासन्न ॥ १६१ ॥
दल संख्या सो पद्म की, क्रम ते अर्द्ध विशेषु।
अष्टाविंशति सहित सत, प्रथम चार इमि लेखु ॥१६२॥
षोडश दल पर रुचिर अति, हेम सिंहासन सोह।
तामधि लाड़िली लाल जू, महा छवी सन्दोह ॥१६३॥
चहुँ दिशि परिचारी खड़ीं, दल-दल प्रती अपार।
निकट सोह कुंजाधिपा, करति सुपूजाचार ॥ १६४ ॥
अति सुगन्ध रुचि धूप दै, दीप युगल अति जोति।
निरखि मनोहर युगल छवि, वारति मनि गन मोति ॥ १६५

शब्दार्थः--आसन्न = अति समीप सटे हुये। पद्म = कमल। परमासन्न = प्रधान सिंहासन (तुकार्थ आसन को

आसन्न लिखा)। क्रमते अर्द्ध=सबसे नीचे वाली आवृति में जितने दल हैं, उसके ऊपर उसका आधा, जैसे १२८ नीचे ऊपर ६४ दल। विशेष=आधा वाला समूचे वाले से विशेष दर्जे का है। चार इमि=इस प्रकार की चार आवृत्तियाँ हैं। रुचिर=सुन्दर। सन्दोह=पुंज, समूह। परिचारी=सेवा करने वाली। पूजा चार=पूजा विधि।

भावार्थः सोने की वेदिका के ऊपर सटे हुये एक कमलाकार सिंहासन है। वह कमल पद्मराग मणि रचित कृत्रिम है। उस पर प्रधान सिंहासन है ॥ १६१ ॥

उस कमल की दल संख्या नीचे से ऊपर क्रमशः आधी होती गई है। आधा वाला पूरे से विशेष दर्जे का है। नीचे की प्रथमावृत्ति १२८ दलों की है, दूसरी ६४ दल, तीसरी ३२ दल सबसे अन्तिम चौथी आवृत्ति षोडश दल की है। इस प्रकार की चार आवृत्तियों का ध्यान कीजिये ॥ १६२ ॥

षोडशदल की कर्णिका पर प्रधान सिंहासन सोने से निर्मित अति मनोहर है। उस पर महान शोभा के पुंज श्री-लड़ैतीलाल जू विराजे हैं॥ १६३ ॥

चारों ओर से प्रत्येक दल पर सेवार्थिनी सखियाँ खड़ी हैं। युगल किशोर जू के सबसे समीप में श्रीरास कुंजेश्वरी जी हैं। वह सविधि पूजन कर रही हैं ॥ १६४ ॥

अति सुगन्ध तथा घ्रान-प्रिय धूप दिया, दो बत्तियों का प्रज्ज्वलित दीपक दिखाया। इस सेवा काल में मनोहारिणी

युगल शोभा अवलोकन करके मणि मोती आदि न्यौछावर कर रही हैं ॥ १६५ ॥

हेम थार भरि असन बहु, परुस अली निज हाथ।
लखि ताको अति प्रेम रुचि, जेमत सिय रघुनाथ ॥१६६॥
पुनि अलिगन सब अलिन को, रुचि भोजन करवाय।
बीरी देति सुधार कर, सरयू जल अचवाय ॥१६७॥
अली रासकुंजाधिपा, निज कर कंचन झारि।
अचवावति ललि लाल को, बीरी देति सुधारि ॥१६८॥
अतर सुगन्ध अनेक विधि, पुष्पमाल पहिराय।
मुकुर दिखावति नागरी, परम प्रेम सरसाय ॥१६९॥
कनक थार सजि आरती, अष्ट वर्तिका जोति।
करति आरती प्रेम भरि, युग छवि सिन्धु समोति ॥२००

शब्दार्थः--असन=भोजन पदार्थ । मुकुर=दर्पण । वर्तिका=बत्ती। समोति=डूब रही है, मगन हो रही है।

भावार्थः--धूप-दीप के पश्चात् नैवेद्य का विधान है। अतः अली श्रीरासकुंजेश्वरी जी स्वयं अपने करकंज से सोने के थार में नाना प्रकार के भोजन सामग्रियाँ परोस रही हैं। श्रीयुगल मनरंजन जू उसके अतिशय प्रेम को देख, उसकी रुचि रखने के लिये, रुचि पूर्वक भोजन करते हैं ॥ १०६ ॥

तत्पश्चात् रासकुंज निवासिनी सेवार्थिनी सखियों ने युगल ललन जू के साथ समागत सखियों को सुरुचि भोजन

कराया। सरयू जल से आचमन कराकर, सबको सम्हाल कर लगाई हुई पान की बीटिका देती हैं॥ १९७॥

श्रीरासकुंजेश्वरी अली स्वयं अपने करकंज में सोने की झारी लेकर श्रीलली लाल जू को आचमन कराती हैं, पुनः सुरीति से लगाई हुई पान वीटिका देती हैं॥ १९८॥

अनेकों प्रकार का सुगन्धित इत्र आघ्रान कराया। फूल की माला पहनाई। पुनः वह किंकर्य-कुशला-अली दर्पण दिखला रही हैं। इस सेवा काल में उसके महाभाव विषयक महान प्रेम अभिव्यञ्जित हो रहा है॥ १९९॥

सोने के थार में आठ बत्तियों की प्रज्वलित आरति सजी। अतिशय प्रेम में निर्भर होकर आरती उतारती हैं और युगल सौन्दर्य सिन्धु में मगन हो रही हैं॥ २००॥

बहु रंक बाजत बाजने, वर्षि सुमन बहु माल।
तन धन वारति नागरी, लखि छवि लाड़िलि लाल ॥२०१
नृत्य करति पुनि नागरी, करि अभिनय बहु रंग।
कर-पल्लव फेरति सुभग, अभिनय दरसत अंग ॥२०२॥
लेत तान सम मान पग, धरत सुछुम-छुम-छंक।
मिलि बाजत सब बाजने, मुरज मृदंगातंक ॥२०३॥
अली नटति सिय पिय निकट, सो छवि उपमा देत।
निरखि दामिनी सहित घन, तान मयूरी लेत ॥२०४॥
नटनि कला बहु करति अलि, खेलि कला कर चंग।
कन्दुक फेंकति नृत्य करि, गहति तान के संग॥ २०५॥

शब्दार्थः--नागरी=संगीत नृत्य प्रवीणा, यहां श्रीरास-कुंजेश्वरी जी से तात्पर्य है। अभिनय=नाट्य कौतुक। कर-पल्लव=पल्लव के समान सुकुमार हाथ। सम=संगीत में वह स्थान जहाँ गाने बजाने वालों का सिर या हाथ आपसे आप हिल जाता है। आतंक=मृदंगादि का शब्द। कन्दुक=गेन्द।

प्रसंगः--श्रीरासाधिपा नाम्नी कुंजेश्वरी ने स्वयं सर्वोपचारों से श्रीयुगल मनरंजन जू की पूजा की। रासारंभ में भी सर्व प्रथम उन्हीं का नृत्य भी प्रारम्भ हुआ।

भावार्थः--आरतिकाल में बहुत प्रकार के बाजे बज रहे हैं। पुष्पमालाओं की वर्षा हो रही है। वह प्रवीणा रासाधिपाजी युगल छवि अवलोकन कर तन धन निछावर करती हैं॥ २०१॥

तत्पश्चात् वही संगीत-कुशला रासाधिपाजी नृत्य करने लगीं। बहुत प्रकार के नृत्य-कौतुक करती हैं। सुन्दर हस्त-पल्लव फेरकर भाव दिखाती हैं। और अंगों से भी नाट्य कलाएँ प्रगट हो रही हैं॥ २०२॥

तान आलाप रही हैं। सम पर आकर चरण विन्यास (चरण पटक कर नृत्य करना) करती हैं। नूपुर से छुम-छुम-छंक ध्वनि जगती है। उस नूपुर ध्वनि से ताल मिलाकर सभी वाद्य-यंत्र बज रहे हैं। मुरज मृदंग के शब्द हो रहे हैं॥२०३॥

श्रीयुगल मनभावन जू के समीप जब वही अली नृत्य करती है, उस समय की शोभा पर उपमा उत्प्रेक्षित करते हुये

कहते हैं, मानो विजली सहित श्यामघन (युगल-प्रिय) को देखकर मयूरी (अली) नाच रही हो ॥ २०४ ॥

नृत्य में अनेकों कलाएँ प्रगट करती हैं। हाथ से पतंग उड़ाने की मुद्रा बताती हैं। नाचते-नाचते गेन्द उछालती हैं, पुनः नृत्य के ताल के साथ लोकती भी हैं। लोकते समय ताल टूटने नहीं पाता ॥ २०५ ॥

चकई फेंकति नृत्य करि, नटत नहीं नट भाव।
फूल छड़ी फेरति सुघर, देति पाँव सम दाव ॥२०६॥
धरि नीबू सिर लेति गति, कर कटार पुनि फेरि।
तनन मिलावति तान अलि, वंक भौंह सों हेरि ॥२०७॥
नटति एक ही पाँव सौं, कौतुक कला समेत।
पद-भूषण कर पहिरि कै, दाव दूसरो लेत ॥२०८॥
सिर धरि सीसी काँच की, नाभि पर्यन्त उतारि।
पुनि सुचढ़ावति नागरी, बाजन तान सँवारि ॥२०९॥
मुक्ता मही बिथेरि कै, चुगि-चुगि पोहति तार।
नटत नहीं नूपुर गति, कौतुक केलि अपार ॥२१०॥

शब्दार्थः--नटत = भंग होना। सुघर = चतुरी। पाँव-सम = चरण पटकने की गति से मिलाकर। वंक = टेढ़ी। दाँव = युक्ति। बिथेरि = फैलाकर।

भावार्थः--नृत्य करते समय चकई भी घुमाती है। इस क्रिया से नृत्य ताल भंग नहीं होने पाता। पुनः नाचती-

नाचती हाथ से फूल की छड़ी भी घुमाती है, साथ-साथ चरण पटकने के ताल में मिलाकर, वह खेल भी किया जाता है ॥२०६

माथे पर नीबू रख लेती है, साथ-साथ हाथ से कटार भी भाँजती है। पुनः तिरछी नजर करके देखती हुई, उन क्रियाओं के साथ तनन आलाप का ताल भी मिलाती हैं ॥२०३

नास्य कला प्रदर्शित करती हुई एक ही चरण से नृत्य करती है। साथ-साथ दूसरे चरण में हाथ से भूषण धारण करती है, इससे नृत्य ताल टूटता नहीं। यह नृत्यकला की दूसरी युक्ति हुई ॥ २०८ ॥

माथे पर काँच की शीशी रख लेती है बाजे के साथ चरण पटकने का ताल सम्हालती हुई, उस शीशी को धीरे-धीरे माथे से नाभी तक उतार कर, फिर माथे पर चढ़ा लेती है ॥२०६

मोती के दाने भूमि पर फैला देती है, पुनः उन्हें चुन-चुनकर तार में माला पोह रही है। साथ २ कला पूर्वक नृत्य भी चल रहा है। ताल टूटने नहीं पाता। इस प्रकार के अनेक खेल तमाशे नृत्य के साथ-साथ चल रहे हैं ॥ २१० ॥

बांधि मंजीर सु उभय कर, उर्ध्व पाँव सम राखि।
बाजे मिलवति उभय की, गति थेइ ताथेइ भाखि ॥२११
पुनि इक अलि कर थार धरि, तापर नृत्य कराय।
जुग पद सों गहि थार अलि, नृत्य अंत महि आय ॥२१२
थिर करि उर्ध्व रु अंग अध, जघन नितम्ब नचाय।
छुद्र घंटिका मधुर रव, तत घन तान मिलाय ॥२१३॥

फेंकि लट्टू कर झेलि पुनि, फूल छड़ी पर धार।
छड़ी नचावति करज प्रति, पद गति सुघर सँभारि ॥२१४
सकल अंग करि तंभ अलि, अनुपम कला विचारि।
कटि कर पद भूषनन को, करति मधुर रवकारि ॥२१५॥

शब्दार्थ:--मंजीर = नूपुर। भाखि = बोलकर। महि = भूमि। तत् = तार वाले बाजे। घन = झाँझ मंजीरादि। झेलि = ऊपर लेकर। करज = हाथ की उँगली। तंभ = स्थिर। रव-कारि = बजाना।

भावार्थ:--उपर्युक्त अली ने दोनों हाथों में नूपुर बांध लिया। हाथों को भूमि पर रोप कर उलटी खड़ी हो गई। दोनों चरण ऊपर बराबर भाव से स्थिर हैं। दोनों हाथों से चरणों की तरह नूपुर झमकाती हुई, उसकी छुमछुम ध्वनि का ताल बाजे के साथ मिला रही है। मुख से थेई ताथेई शब्द भी बोल रही है ॥ २११ ॥

पुनः दूसरी सखी ने खड़े होकर अपने हाथों में थाल रख लिया। नृत्य करने वाली अली उसी थाल पर चढ़कर नाचती है। नृत्य के अन्त में दोनों चरणों से थाल को पकड़ लिया तथा थाल सहित भूमि पर उतर आई ॥ २१२ ॥

कटि से ऊपर माथे तक के अंगों को स्थिर निश्चल रखे हुई है। उसी प्रकार कमर से नीचे चरणांगुली तक भी स्थिर हैं। केवल जंघे और नितम्ब नचा रही हैं, इस कारण किंकणी से मधुर-मधुर ध्वनि प्रकट होती है, उसका ताल तार वाले बाजे और झाँझ आदिकों के शब्दों के साथ मिला रही है ॥ २१३ ॥

लट्टू को पृथ्वी पर फेंक कर नचाने लगी। नाचते हुये लट्टू को तलहत्थी पर उठा लिया। पुनः हाथ से फूल छड़ी पर नाचते हुये लट्टू को डाल दिया। अब उस फूल छड़ी को उँगलियों से घुमा रही है उसी छड़ी पर लट्टू भी नाच रहा है। इन क्रियाओं के साथ-साथ तारीफ यह है कि चरण की छुम-छुम गति का ताल ऐसा सम्हाला है कि किंचित भी ताल भंग नहीं होने पाता॥ २१४॥

पुनः उस आली ने सर्वांगों को स्थिर कर लिया। अनुपम कला प्रकटाने का बिचार किया। उसकी कमर, हाथ, और चरण हल रहे हैं, जिनसे तत्स्थानीय भूषणों से ताल पूर्वक मीठी झंकार हो रही है॥ २१५॥

दच्छिण पद धरि वाम पर, करि दच्छिण पर वाम।
नूपुर दोउ पद के बजत, लेत घूमरी तान॥२१६॥
द्वादश गुटिका कर धरी, एकहि बेर उड़ाइ।
एकहि करि झूलत सबन, पद गति तान मिलाइ॥२१७॥
कमलासन करि नागरी, भुज युग मध्य निसारि।
अधर राखि सब अंग को, पद-गति कर जुग चारि॥२१८॥
कटि सों मोरि सुअंग को, सीस गुल्फ सम धारि।
भाव दिखावति उभय कर, पगन मधुर गति चारि॥२१९॥
पुनि जुग पद धरि अंश पर, जुग कर पद इमि रोपि।
नटत मंजीर मिलाइ कै, तान मान सम थोपि॥२२०॥

शब्दार्थः--घूमरी लेत=चारो ओर घूम कर नाचती है।

तान लेत = तान भी अलापती है। गुटिका = गोटी। झेलत = लोकती है। पद–गति = चरण पटकने के समान नृत्य गति दोनों हाथों से ले रही है। अंश = कंधे। इमि = तरह। मान = मृदंग की ध्वनि। थोपि = मिलाकर।

भावार्थः--नृत्यकाल में उपर्युक्त रासाधिपा अली कभी तो दाहिने पैर को बायें के ऊपर चढ़ा लेगी, कभी बायें को दाहिने पर रख लेगी। इसी अवस्था में दोनों चरणों के नूपुर भी बज रहे हैं, घूम–घूम कर नृत्य भी करती है और तान भी आलाप रही है। कहीं ताल भंग नहीं होता॥ २१६॥

हाथ में बारह गोटियाँ रख लेती है। सबों को एक साथ ऊपर फेंक दिया। लोकने समय बेंराबेरी एक एक को विलग विलग लोकती है। इस दशा में भी चरण की गति तान के साथ ऐसी मिली रहती है कि कहीं ताल में भंग न होता॥ २१७॥

उपर्युक्त नृत्य कुशला अली पद्मासन से बैठ गई। दोनों हाथों को पैरों के बीच से निकाल कर पृथ्वी पर रोप लिया। सब अंगों को हाथों पर तौल कर ऊपर आकाश में स्थित कर दिया। उन्हीं भूमि पर रोपे हुये दोनों हाथों से चरण के समान गति लेकर नूपुर झमकाने लगी॥ २१८॥

ऊपर के अंगों को कमर से मोड़कर आगे ऐसी झुकी कि शीश झुकते झुकते दोनों चरणों के गुल्फों (गाठों) के बराबर आगया। इस दशा में नेत्र दोनों चरणों के बीच आ

गये। दर्शकों के दर्शन कैसे हों ? फिर भी दोनों हाथों से भाव प्रदर्शन क्रिया चल रही है। चरणों से गति लेकर नूपुर की मधुर झंकार निकाल रही है ॥ २१६ ॥

पुनः दोनों चरणों को उठाकर अपने कन्धों पर चढ़ा लिया। दोनों हाथों को चरणों की भाँति भूमि पर रोप दिया। हाथ में बन्धे हुये नूपुर को झमकाकर हाथ ही पर नृत्य कर रही है। गान बाजे के ताल से नूपुर ध्वनि का ताल मिल रहा है ॥ २२० ॥

उलटि उभय पद सीस धरि,कर उलटी महि गोंप।
मही दृष्टिकरि नटति अलि,अति अदभुत लखु सोपि॥२२१॥
उभय प्रकोष्ट सु उर्ध्व करि, मुकलित करज अनूप।
जुग नींबू तापर लसत, जुग अंशन सम रूप ॥२२२॥
इक शीशी धरि नागरी, लेत घूमरी तान।
इत उत घुमरि घुमाय पट, छमक तान दै मान ॥२२३॥
पट आवरण कराय कै, रच्यो सु अद्भुत वेष।
ऊर्ध्व चरण अधहूं चरण, मध्य बदन भुज देख ॥२२४॥
कबहुँ ऊर्ध्व पग अध करत, अध पद ऊर्ध्व कराय।
कबहुँ नचावति अंग दोउ, कबहुक मध्य चलाय ॥२२५॥

शब्दार्थः--सोपि (स : + अपि) = वह भी। प्रकोष्ठ=कोहनी के नीचे की बाँह। मुकुलित=आधा बन्द। करज=हाथ की उँगली। अंशन=कंधे। आवरण=परदा। अंग दोउ=दोनों उरोज। मध्य=कमर।

भावार्थः--दोनों चरणों को उलटा कर पीठ से होते मांथ पर चढ़ा लिया। हाथों को उल्टा कर भूमि पर रोप लिया। पृथ्वी की ओर नजर करके वह अली नाचने लगी। ऊपर जिन आश्चर्य कलाओं का बर्णन हुआ, वैसी ही इसे भी देखिये ॥ २२१ ॥

कोहनी से ऊपर दोनों बांहों को उठा लिया। करांगुलियों की आधी आधी मुठी बन्धी हैं। दोनों पर दो नीम्बू रखे हैं। दोनों कन्धों के सीध में मुठ्ियाँ हैं ॥ २२२ ॥

दूसरी चतुरी सखी ने उपर्युक्त आली के कन्धों पर एक एक शीशी खड़ी कर रख दी। अब वह नाचने वाली नाचकर गान करने लगी। दोनों तरफ से चक्राकार घूम कर नाचती है। बस्त्र फहराती है। नूपुर की छुमछुम ध्वनि झमका झमका कर बाजे के साथ ताल मिला रही है ॥ २२३ ॥

कपड़े का परदा करवा कर, आश्चर्य शृंगार की रचना कराई। एक चरण ऊपर आकाश में रखे हुई है, नीचे भी एक चरण रोपे हुई है ॥ २२४ ॥

कभी ऊपर वाले चरण को नीचे लाती है, कभी नीचे वाले को ऊपर उठा लिया। कभी कभी दोनों वक्षोजों को नचाती है, कभी कटि चलाती है ॥ २२५ ॥

युग कर लिये कटार अलि, फेरति करति विलास।
प्रगल्भा मानहुँ चित्र रस, हासहुँ कियो निवास ॥२२६॥
पट आवरन कराय कै, गुप्त कियो सो वेष।
पुरुष वेष सुन्दर रच्यौ, षोड़श वयस विशेष ॥२२७॥

नर–नैपथ्या नागरी, नटति करति बहु रंग।
खेलति कला अनेक विधि, लिये अली इक संग ॥२२८॥
युग कर सो युग कर धरी, नटति घुमरि सम मान।
ताथेइ ताथेइ बदत दोउ, सुन्दर सुघर सुजान ॥२२९॥
नाचि अनेकन ताल गति, द्रुत सविलम्बित मध्य।
स्वांग अनेकन न्याय कै, कहत सुकथा अवध्य ॥२३०॥

शब्दार्थः--विलास=प्रेम पूर्ण आमोद प्रमोद, खेल। चित्र रस=अद्‌भुत रस। (लक्षणः-"जाको थाई आजरज, सो अद्‌भुत रस गाव। असंभवित जेते चरित, तिनको लखत विभाव ॥"--काव्य प्रभाकर) (हास रस, लक्षणः--"थाई जाको हास है, वहै हास्य रस जानि। तहँ कुरूप कूदव कहव, कछु विभाव ते मानि"-इति काव्य प्रभाकर)। नर-नेपथ्या = पुरुष की नाट्य लीला करने वाली। रंग=विनोदद्रु त=चलती तर्ज। सविलम्बित=स्थायी तर्ज। मध्य=चलती और स्थायी के बीच वाला तर्ज। स्वांग=नकली वेष। अवध्य=उटपटांग बेतुकी बातें, हँसाने के लिये।

भावार्थः--वह अली अपने दोनों हाथों में कटार लेकर घुमाती है, अनेकों खेल करती हैं। सुकुमारी नायिका का कटार भाँजना आश्चर्य बात है, इससे अद्‌भुत रस प्रगट हुआ, कभी-कभी हँसी लगाने वाला कौतुक भी करती है,सो बीच-बीच में हास्य रस भी आकर बस जाता है ॥ २२६ ॥

कपड़े का परदा कराकर उस वेष को छिपा लिया। सोलह वर्ष की अवस्था वाला सुन्दर विशिष्ट नायक का शृङ्गार धारण किया ॥ २२७ ॥

नायक का नाट्य करने वाली वह चतुरी नाचती है और बहुत प्रकार का विनोद भी करती है। एक अली को अपनी पत्नी का भाव दिखाने के लिये साथ कर लिया है और उसके साथ अनेकों कला खेलने की लीला करती है ॥ २२८ ॥

यह नकली नायक नायिका की जोड़ी दोनों हाथों से हाथ जोड़ कर नाचती है और बाजे के साथ ताल मिलाकर चक्कर लेती हैं। दोनों के दोनों सुन्दर, चतुर, और कला मर्मज्ञ हैं। ताथेई ताथेई मुख से उच्चारण करती हैं ॥२२९ ॥

चलती स्थायी और मध्य गति से ताल मिलाकर नृत्य करती हैं। अनेकों प्रकार के नकली वेष बदल बदल कर हास्यास्पद कौतुक करती हैं तथा हँसी लगाने के लिये बेतुकी बातें भी कहती हैं ॥ २३० ॥

शीघ्र गती सांगीत पुनि, लेत सु तान तरंग।
भाव दिखावति भाँति बहु, मोरि मोरि मृदु अंग ॥२३१॥
लय बाजत सब बाजने, पद गति ताके संग।
पुनि इक संग अनेक अलि, नाचि उठी करि रंग ॥२३२॥
सम पग परत सुमान पर, तान एकही वार।
पूरि रही मंजीर धुनि, थेइ थेइ बदत अपार ॥२३३॥
मच्यौ महा कौतुक सखी, भीनी सब रस रंग।
मान तान चूकत नहीं, सुधि नहि अंशुक अंग ॥२३४॥

पुनि रचि मंडल सकल अलि, एक एक सों ताल।
वामहुँ दच्छिणहूं दिशी, देत रंगीली वाल ॥२३५॥

शब्दार्थः--तरंग = चढ़ाव उतार। वदत = बोलती है। अंशुक = वस्त्र। लय = एक ताल मिलाकर। मान = ताल।

भावार्थः--पुनः संगीत में तेज चाल होने लगी। चढ़ाव उतार का हिसाब सम्हालती हुई आलाप ले रही है। अपने सुकुमार अंगों को मोड़ मोड़ कर अनेक रीतियों से भाव प्रदर्शन कर रही है ॥ २३१ ॥

सब वाद्य यंत्र एक ताल में मिल कर बज रहे हैं। चरण पटकने की गति भी बाजों के साथ मिली हुई है। अब तक श्रीरासकुंजाधिपाजी का ही नृत्य प्रधान रूप से हो रहा था, अब उनकी असंख्य सहयोगिनी सखियाँ उनके साथ मिलकर संगीत का सामा बान्धकर नाच उठीं ॥ २३२ ॥

सब नाचने वाली एक ही साथ ताल पर पाद-क्षेपण कर रही हैं। एक ही सम्मिलित स्वर में तान आलापती हैं। नूपुर की ध्वनि सर्वत्र फैल रही है। मुख से थेई थेई शब्द भी साथ साथ बोल रही हैं ॥ २३३ ॥

उस काल में महान कौतुक हो रहा है। सब प्रेमानन्द में मगन हैं। उस तन्मयता के समय में भी संगीत का इतना सम्हाल है कि लय ताल में कहीं भूल नहीं होने पाती, अपने अंगों के वस्त्र सम्हालने का होश भले न हों ॥ २३४ ॥

पुनः सब सखियों ने मिलकर गोलाकार रास मंडल की

रचना की । संगीत रंग में रंगी हुई प्रत्येक सखी अपनी बांईं दाईं ओर की दोनों सखियों के करतलों पर ताल के साथ थपकियाँ दे रही हैं ॥ २३५ ॥

चतुर चित्त चापल्य करि, घुमकि सुवमन घुमाय।
अभिनय अंग सु मोरि दृग, फेरि तान सरसाय ॥२३६॥
किंकिनि कलित सुबलित कर, वेतस रत्नि प्रमान।
ताल देति अति रंग सों, मिलि आनद्ध सुमान ॥२३७॥
चक्र वाल चातुरि रची, प्रमदागन नौ रंग।
घुमरि घुमरि नाचति मनू, कादम्बिनि वर अंग ॥२३८॥
यहि विधि रास निकुञ्ज की, यूथेश्वरि करि रंग।
सिय अनुशासन पाय कै, बैठि श्रमित कछु अंग ॥२३९॥

शब्दार्थ:--चापल्य = चंचलता। घुमकि = स्वयं घूम घूम कर। अभिनय = नाट्य लीला। किंकिनि कलित = घुंघरू लगे हुये। वलित कर = हाथ में लेकर। वेतस = वेंत की छड़ी। रत्नि प्रमान=हाथ भर की (रत्नि = कोहनी से मुठ्ठी तक)। आनद्ध = मृदंगादि बाजे। चक्र वाल = मंडलाकार घिराव। कादम्बिनि = मेघमाला। वर अंग (वरांग) = मस्तक (की अलकावली)।

भावार्थ:--रास कुंज निवासिनी सखियाँ सब चतुर चित्त वाली हैं। चंचलता पूर्वक नृत्य करती हैं। वस्त्रों को फहरा रही हैं। अंगों को मोड़कर तथा नयनों को फेर कर नाट्य

लीला दिखला रही हैं। तान का आलाप रस संचार कर रहा है॥ २३६ ॥

सबके हाथों में घुंघरू लगी हुई हाथ भर लम्बी बेंत की छड़ी है। उन्हें एक दूसरी सखी के वेतों से टकरा कर ताल देती हैं। उसका ताल मृदंगों के थोप से मिला रही हैं॥२३७॥

नौ रंगों के भूषण वसनों से विभूषित यौवनोन्मत्त नायिकाओं के मंडलों ने बड़ी चतुरता के साथ गोला घेराव रच रखा है। घूम घूम कर नाचती हैं। सबों की अलकावली मेघ-माला सम रस बरसाने वाली है ॥ २३८ ॥

इस प्रकार से रासकुंज की कुंजेश्वरी श्रीरासाधिपाजी ने अपने नृत्य चातुर्य का प्रदर्शन किया। इनके अंग थक गये हैं। अतः रासेश्वरी श्रीरघुनन्दन-प्रियतमा मैथिली जू की आज्ञा पाकर बैठ गईं ॥ २३९ ॥

चारो, दिशाओं की राज कन्याओं का नृत्य

पुनि पूरब देशाधिपति, कोटिन तासु कुमारि।
उठीं रमकि अति रंग सों, वसन सुअंग सम्हारि ॥२४०॥
करि जुहार नाचन लगीं, यथा देश निज रीत।
गावत छन्द प्रवन्ध बहु, ततघन मों न अमीत ॥२४१॥
रचि रचि व्यूह अनेक रँग, एक संग आक्षेप।
नटति लेति गति ललित अति, पुनि संग्रहि उत्क्षेप॥२४२॥
पुनि दच्छिन ककुभावनिप, तासु कन्यका वाम।
करि प्रनाम सिय लाल को, नटन लगीं रचि दाम ॥२४३॥

देश सुभाइक गान करि, पुनि सब कला दिखाइ।
करि प्रनाम बैठीं सकल, सिय अनुसासन पाइ ॥२४४॥

शब्दार्थः--पूरब देशाधिपति=पूर्वीय देशों के राजा। रमकि=झूमती इतराती हुई। जुहार=प्रणाम। श्रमीत=थकना। आत्तेप=रंग भूमि पर प्रकट होना। उत्तेप=छिप जाना। ककुभावनिप [ककुभ (दिशा) + अवनि (पृथ्वी) + प (पालक)] =दिशा के राजा। दाम=मालाकार मंडल।

भावार्थः--पुनः पूर्व देश की कोटि राज कन्यायें झूमती इतराती उठ खड़ी हुईं। अपने अंगों के वस्त्रों को सम्हाला ॥ २४० ॥

श्रीरासविहारिणी विहारी जू को प्रणाम कर, अपने पूर्व देशीय रीति अनुसार नृत्य करने लगीं। तार वाले वीणादिक वाद्य तथा झांझादि घन वाले वाद्य के ताल से मिलाकर अनेकों ललित छन्द प्रवन्धों का गान किया। इसमें थकतीं नहीं ॥ २४१ ॥

परदे में अनेकों व्यूह मंडल की रचना करके एक साथ रंग मंच पर प्रगट होती हैं। सुन्दर सुन्दर गति लेकर नाचती हैं। पुनः एक ही साथ छिप जाती हैं॥ २४२ ॥

पुनः दक्षिण दिशा के राजाओं की सुन्दरी कन्यायें श्रीलली लाल जू को प्रणाम कर मालाकार मंडल रचना पूर्वक नाचने लगीं ॥ २४३ ॥

देश की रीति के अनुसार गान करके तथा सभी नृत्य

कलाएँ प्रदर्शित करके श्रीप्रिया जू की आज्ञा पा प्रणाम करके बैठ गईं ॥२४४॥

पुनि प्रतीच्य अचलाप बहु, कोटिन तासु कुमारि।
कीन्ह नृत्य प्रारम्भ सब, बाजन अंग सँवारि ॥२४५॥
ताथेइ ताथेइ करति बहु, उठत सुतान तरंग।
अभिनय करति अनेक विधि, दरसावति सब अंग ॥२४६॥
हंसाकृति मोराकृती, मोरि अंग बहु रंग।
लतिका नमिता नागरी, करि बहु अंग सुरंग ॥२४७॥
पुनि तिन के नृत्यान्त में, उदिचाशावनिपाल।
तिन की अमित कुमारिका, उठीं नवाय सुभाल ॥२४८॥
गाइ देश गति छन्द बहु, नाचि प्रबन्ध विचित्र।
अंग मोरि दृग फेरि पुनि, ललित नचाय कलित्र ॥२४९॥
यहि विधि अविनप कन्यका, बहु विधि रास बिलास।
करि रिझाय सिय लाल को, बैठीं परम हुलास ॥२५०॥

शब्दार्थः--प्रतीच्य = पश्चिमी। अचला (पृथ्वी) (पालक) = राजा। लतिका नमिता = लता की भाँति सब सुकुमार अंगों को मोड़ लेती हैं (भावप्रदर्शनार्थ)। उदिचाशावनिपाल = उदिच (उत्तर) + आशा (दिशा) + अवनि (पृथ्वी) + पाल = उत्तर दिशा के राजा। सुभाल नवाय = मस्तक झुका कर अर्थात् प्रणाम करके। प्रबन्ध = ढंग। कलित्र = कटि।

भावार्थः—पुनः पश्चिम देश की कोटि-कोटि राजकुमारियों ने बाजे तथा अंगों को सम्हाल कर नृत्य आरम्भ किया ॥२४५॥

मुख से ताथेइ ताथेइ शब्द बोलती हैं। चढ़ाव उतार के साथ तान ले रही हैं। नृत्य के सभी भेदों (अंग) को दिखलाती हुई, अनेक प्रकारों की नाट्यलीलाएं करती हैं॥ ४६॥

अनेकों भाँति से अंग मोड़ मोड़ कर कभी हंसाकार बन जातीं, कभी मयूर के आकार बना लेतीं। नृत्य प्रवीणा अपने अंगों को लता की भाँति चाहे जहाँ से मोड़ ले। बहुत प्रकार की भाव-भंगिमा दिखलाती हैं॥ २४७॥

पुनः उनके नृत्य समाप्त होने पर उत्तर दिशा की असंख्य राज कन्यायें प्रणाम करके उठ खड़ी हुईं ॥ २४८॥

अपनी देश-रीतिसे अनेक छन्दों का गान किया। अपनी कमर को सुन्दर रीति से लचका लचका कर, अंगों को मोड़ कर तथा नजर को घुमाकर अनेक ढंग से नृत्य किया॥२४६॥

इस प्रकार राज कन्याएँ बहुत भाँति के रास विलास से श्रीलली लाल जू को रिझाकर सानन्द बैठ गईं ॥२५०॥

* देव कन्याओं का नृत्य *

पुनि क्रतुभुज कन्या अमित, सिय पिय पद सिरनाय।
रास साज साजे सकल, मनसिज भेरि बजाय ॥२५१॥
मानुष नट कोटिन कला, नाची विबुध कुमारि।
पुनि निज कला प्रकास करि, कौतुक रच्यो सम्हारि॥२५२॥

करीं प्रगट बहु कनक घट, तापर नृत्य कराय।
अभ्यन्तर सुप्रवेश करि, धुनि मंजीर सुनाय ॥२५३॥
पुनि घट सौं केकी मधुर, सुनियत नूपुर नाद।
निकसि मयूरी घटन सौं, नाचति करि सम्बाद ॥२५४॥
गावति गीत सुव्यक्त अति, नाचति दै दै मान।
पंख फुलाय फुलाय कै, लेत मधुर गति तान ॥२५६॥

शब्दार्थः--क्रतुभुज = यज्ञ भोजी अर्थात् देवता। मनसिज भेरि=कामोद्दीपक दुंदुभि। विबुध = देवता। अभ्यन्तर = भीतर। मंजीर = नूपुर। केकी = मयूर। नाद = शब्द। सुव्यक्त = साफ मानुषी भाषा में। मान = ताल।

भावार्थः--चारो दिशाओं की राज कन्याओं के नृत्य गान के उपरान्त, असंख्य देवकन्यायें श्रीयुगलकिशोर जू को प्रणाम करके सब प्रकार से रास शृंगार सजकर, कामोद्दीपक नगारे बजाकर नाचने लगीं॥ २५१ ॥

पहिले तो मनुष्य लोक की असंख्य नृत्य कलाओं के अनुसार देव कन्याओं ने नृत्य किया। तत्पश्चात् अपने देवलोक की कलाओं को प्रगट कर, सम्हाल पूर्वक नाना कौतुक करने लगीं॥ २५२ ॥

कौतुक क्या क्या किया ? इस पर कहते हैं कि पहले अपनी देव माया से असंख्य सुवर्ण के घड़े प्रकट किये । घड़ों पर नाचती हैं, पुनः उन घड़ों के भीतर सूक्ष्म रूप बनाकर

घुस गईं। बाहर से दीख नहीं पड़तीं, केवल नूपुर ध्वनि सुन पड़ती है ॥ २५३ ॥

पुनः घड़ों के भीतर से मयूरों की मीठी बोली तथा नूपुर की ध्वनि सुन पड़ने लगी। देखते देखते मयूरी बनकर घड़ों से निकल पड़ीं और परस्पर में सम्वाद करके नाचने लगीं ॥ २५४ ॥

मयूरी होने पर भी स्पष्ट मानवी भाषा में छन्द प्रबन्ध का गान करती हैं। ताल देकर तथा पंख फुलाकर नाचती हैं एवं मीठी मीठी तान अलापती हैं ॥ २५५ ॥

कीन्ह अदरसन चरित सो, प्रगट्यो बृच्छ अपार।
तिन पर नटति सुनागरी, निरखत रामकुमार ॥२५६॥
अतरुण तिय तहँ विबुध की, ललित कंठ धुनि बीन।
नूपुर धुनि सुनि परत पुनि, दरसति नहीं प्रवीन ॥२५७॥
भईं प्रगट सुर कन्यका, नाचति गती सुधारि।
ताथेइ ताथेइ बदत बहु, निरखति जनक कुमारि ॥२५८॥
पुनि सु दिवौकस कन्यका, कीन्हौं कौतुक चार।
अन्तरीच्छ मंडल रचीं, खेलति गती अपार ॥२५९॥
गिरत बसन मोतिन लरैं, पग के नूपुर आय।
गान धुनी बाजन धुनी, नभ मंडल रहि छाय ॥२६०॥

शब्दार्थः—अदरशन=गुप्त। अतरुण=यौवनागम के पूर्व वाली मुग्धा अवस्था। प्रवीन=निपुण। बदत=बोलती हैं। दिवौकस=देव। अन्तरीच्छ=आकाश ॥

भावार्थः--तत्पश्चात् मयूर बेष वाली लीला को छिपा दिया। अनन्त बृक्ष माया से प्रगट किये। उन बृक्षों पर चढ़कर चतुरी देव कुमारियाँ नाचती हैं। श्रीराजेन्द्रकुमार जू अवलोकन कर रहे हैं ॥ २५६ ॥

देवताओं की मुग्धा कन्यायें वीणा के समान मधुर कंठ स्वर वाली हैं। उन बृक्षों पर अदृश्य हो गईं, केवल नूपुर ध्वनि सुनाई पड़ती है, जिससे अनुमान होता है कि वहीं नाच रही होंगी। बड़ी हुशियार हैं ॥ २५७ ॥

पुनः भूमि पर आकर प्रत्यक्ष हो गईं। नाना नृत्य गतियों को सम्हाल कर नाचती हैं। बहुत सी ताथेइ ताथेइ मुख से बोलती हैं। श्रीजनकदुलारी जू अवलोकन कर रही हैं ॥ २५८ ॥

तत्पश्चात् देवकन्या अनेक कौतुक मयी लीलाएँ करने लगीं। आकाश ही में अपने समाज का नृत्य मंडल बनाकर, अनंत गतियों से नृत्य करने लगीं ॥ २५९ ॥

आकाश से ही वस्त्र खुलकर मोती की लरें टूट कर, चरण के नूपुर छुटकर गिर रहे हैं। बाजाओं की तथा गान की ध्वनि आकाश मंडल में व्याप्त हो गई ॥ २६० ॥

करि आकास में नृत्य बहु, पुनि अवनी मधि आय।
करति नृत्य सुर नागरी, बहु विधि अंग बनाय ॥२६१॥
यहि विधि लीला अमित करि, अनिमेषा अनुपाम।
बैठीं आयसु पाय कै, रैनि रहीं दुइ याम ॥२६२॥

❋ सिद्ध कुमारियों का नृत्य ❋

सिद्ध कन्यका सकल पुनि, उठीं कीन्ह परनाम।
नाचन लागीं ललित गति, गान करति त्रय ग्राम ॥२६३॥
बाजे बजत अदृश्य सब, खेलति कला अपार।
कन्दुक फेंकति हाथ सों, झेलति पुनि ससि तार ॥२६४॥
नचति नचति कीन्हीं कुतुक, प्रगटीं एक सुजोति।
नचति आप ह्वै जोति पुनि, ता मधि सकल समोति ॥२६५॥
जोति माझ सुनि परत सब, गान तान मंजीर।
पुनि सो जोति विलोप भइ, प्रगटीं नागरि धीर ॥२६६॥

शब्दार्थः--अवनी = भूमि। अनिमेषा = जिनकी पलक नहीं गिरे अर्थात् देवता। ससि = चन्द्रमा, चन्द्रमुखी। तार = तारागण। समोति = समा गईं, मिल गई।

भावार्थः--वह प्रवीण देव कन्याएँ आकाश में बहुत भांति से नाचकर, भूमि पर आ गईं। यहाँ भी बहु प्रकारों से अंग मोड़कर भाव दिखा दिखा नाचती हैं॥ २६१॥

देवकुमारियाँ इस प्रकार से अनन्त भाँति की अनुपम लीलाएँ दिखाकर, श्रीरासेश्वरी प्रिया जू की आज्ञा पाकर बैठ गईं। दोपहर रात बीत गई, आधी बाकी है॥ २६२॥

पुनः सब की सब सिद्ध कन्यायें नृत्य के लिये उठ खड़ी हुईं। श्रीयुगल ललन जू को प्रणाम किया। सुन्दर गति लेकर नाचती हैं, सातों स्वर तीनों ग्राम से गान कर रही हैं॥२६३॥

सभी बाजे बज रहे हैं, किन्तु उन सिद्ध कुमारियों की माया प्रभाव से दीख नहीं पड़ते। अनन्त कलाओं को प्रगटाकर खेल रही हैं। हाथ से गेन्द आकाश में उछालती हैं। फिर हाथ ही से लोकती हैं। क्या मालूम पड़ता है ? मानो चन्द्रमा (चन्द्रमुखी) तारा गणों (मणि रचित गेन्दों) को लोक रहा हो॥ २६४॥

नृत्य करते करते एक कौतुक क्या किया कि एक ज्योति माया द्वारा प्रकट की। स्वयं भी ज्योति बनकर नाचती नाचती पूर्व ज्योति में जाकर मिल गईं॥ २६५॥

उस महान ज्योति के भीतर से गान तान नूपुर ध्वनि सभी सुनाई पड़ती हैं। पुनः वह ज्योति लुप्त हो गई। सभी चतुरी एवं मनोरमा सिद्ध कन्यायें प्रगट हो गईं॥ २६६॥

पुनि प्रगटीं बहु रूप सो, व्यापी कुंज निकुंज।
जल थल प्रति द्रुम पत्र प्रति, नटति पुंज को पुंज॥२६७॥
नटत-नटत द्रव रूप सब, भईं सु नदी प्रवाह।
गान तान सुनि परत सब, सिद्धनि कला अथाह॥२६८॥
दंड एक अचरज भयो, पुनि प्रगटीं सम रूप।
सभा मांझ नृत्यति सबै, मेटि सु अमित स्वरूप॥२६९॥
हाव अनेकन भाव बहु, अंग नचाइ सुदाव।
बाजत मिलि सब बाजने, हिये बढ़ावत चाव॥२७०॥
यहि विधि कौतुक अमित करि, बैठीं आयसु पाइ।
पुनि सुर नायक नायिका, उठि सिय पद सिर नाइ॥२७१॥

शब्दार्थ:--सुर गायक=गन्धर्व किन्नर। दंड=२४मिनट का काल, घड़ी।

भावार्थ:--तत्पश्चात् सिद्ध कुमारियाँ अनन्त रूप बनाकर सभी कुंज निकुंजों में भर गईं। जल में, स्थल पर वृक्षों के पत्ते पत्ते पर, जहाँ देखो झुंड की झुंड सिद्ध कन्याएँ नाच रही हैं॥ २६७ ॥

नाचते नाचते सब द्रव्य रूप होकर नदी की धारा बन गईं। उस रूप से भी गान तान सुन पड़ते हैं। सिद्धों की लीला अपरम्पार है॥ २६८ ॥

चौबीस मिनट तक अनन्त रूप एवं नदी प्रवाह बनने वाले आश्चर्यमय कौतुक होते रहे। तत्पश्चात् उन्हों ने अपना सहज स्वरूप धारण किया। अनन्त रूप मिटाकर, अपने सहज रूप से सब युगल सरकार के दरबार में नाचने लगीं॥ २६९ ॥

बहुत प्रकार के हाव भाव पूर्वक ताल विधान से अंगों को नचा नचा कर नाच रही हैं। सभी बाजे मिलित ढंग से बज रहे हैं। हृदय में आनन्दोत्साह बढ़ रहा है॥२७०॥

इस प्रकार से अनन्त कौतुक दिखाकर श्रीरासेश्वरी प्रिया जू की आज्ञा पा बैठ गईं। तत्पश्चात् किन्नर एवं गन्धर्वों की कुमारियाँ श्रीरघुनन्दन प्राणसंजीवनी जू की आज्ञा पाकर नृत्य करने को खड़ी हुईं तथा श्रीस्वामिनी जू के पदारविन्द में प्रणाम किया॥ २७१ ॥

* किन्नर तथा गन्धर्व कन्याओं का नृत्य *

नाट्य पद्धती कुशल षट, त्रय रस लीला साज।
दरसावति अति सुघरि सब, करि लीला सुर राज ॥२७२॥
प्रथम विनायक रूप धरि, कोटिन गन तिहि संग।
कौतुक करति अनेक विधि, नचति करति बहु रंग॥२७३॥
पुनि हर के उदवाह की, लीला रस आश्चर्य।
पुनि षड़ास्य संग्राम की, लीला वीर सुवर्य ॥२७४॥
पुनि सुरनायक रूप धरि, लीला करति अनेक।
तहँ दरसावति सकल रस, सुघरि सु सहित विवेक ॥२७५॥

शब्दार्थः--नाट्य पद्धति=नाट्य लीला के विधि विधान। षटत्रय=६+३=९ । उदवाह=विवाह । षड़ास्य=छै मुख वाले कार्तिकेय ।

भावार्थः--किन्नर तथा गन्धर्व कुमारियाँ नाटकीय विधि विधान में पारंगता हैं। काव्य के प्रधान शृङ्गारादि नौ रसों को दर्शाने वाली नाट्य लीलाएँ सज रही हैं। इन्द्र की लीला में सभी नाट्य कुशलानायिकाएँ नौ रसों की लीला दिखाती हैं ॥ २७२ ॥

सर्व प्रथम अग्र पूज्य विघ्न विनाशक श्रीगणेश का रूप धारण कर कोटि २ शिवगणों को साथ में ले लिया। बहुत भाँति से कौतुक करती हुई नाच रही हैं। खूब रंग छन रहा है॥ २७३ ॥

पुनः शिव विवाह लीला हुई। बारात में भूत प्रेतादि हर गणों का दृश्य अद्भुत रस का स्वांग उपस्थित करता है। तदुपारान्त तारकासुर के साथ श्रीशिवकुमार कार्तिकेयजी की युद्ध लीला हुई। इस लीला में बीर रस सर्व श्रेष्ठ रूप से प्रगट हुआ ॥ २७४ ॥

अन्त में देवराज इन्द्र का स्वरूप बनाया। उस रूप से अनेक लीलाएँ हो हो रही हैं। इस लीला में सभी शेष रस विचार पूर्वक प्रगट कर रही हैं, क्योंकि नाट्य कला में सभी रसों का समावेश होना चाहिये, इस बात को समझने में सभी चतुरी हैं ॥ २७५ ॥

लीला करति सुनटति गति, छुम छुम छुमकि सुतान।
लय बाजत सब बाजने, लाग डाट मूर्छान ॥२७६॥
जो रस की लीला करत, सो सब के उर छाय।
रहत यथारथ रूप सब, सब के मनहि चलाय ॥२७७॥
अद्भुत वेष बनाइ पुनि, करत सु अचरज ख्याल।
वैनतेय को रूप बनि, गहत फिरत बहु व्याल ॥२७८॥
जो ऋतु रागिन कंठ में, करत अलाप सुचार।
जो ऋतु प्रगटत समय तिहिं, सहित सकल आचार॥ २७९॥

शब्दार्थः—लाग डाट=नृत्य की एक क्रिया। मूर्छान (मूर्छना)=सातों स्वरों का चढ़ाव उतार। वैनतेय=गरुड़। व्याल=सर्प। आचार=वर्ताव।

भावार्थः—नौ रसों को प्रगट कराने वाली लीलाओं के

समय नूपुरों से छुम छुम ध्वनि निकालती हुई तान आलाप पूर्वक नृत्य भी करती हैं। सब बाजे ताल से बज रहे हैं। नृत्य में लाग डाट की क्रिया प्रगट होती है। गान में मूर्च्छना विषयक आरोह अवरोह के हिसाब से तान आलाप हो रहा है॥ २७६ ॥

जिस रस की लीला करती हैं, वह रस सभी दर्शकों के हृदय पर पूरा अधिकार जमा लेता है। मन विकृत होकर उसी रस के वास्तविक स्वरूप को पकड़ लेता है। नाट्य शास्त्रानुसार रस की सिद्धि भी इसी में मानी जाती है॥ २७७॥

अद्भुत रस की लीला करते समय वेश भूसा भी अद्भुत बनाती हैं। कौतुक भी विस्मयदायक ही होते हैं। जैसे गरुड़ का रूप धारण कर सर्प को पकड़ते फिरना॥ २७८॥

उन नायिकाओं को राग रागिनी की ऐसी सिद्धि है, कि कंठ से जिस ऋतु की रागिनी अलापती हैं, उस समय वह ऋतु न होकर यदि अन्य ही ऋतु बरत रही हो, तो भी तत्काल आलापित रागिनी वाली ऋतु ही प्रगट हो जाती है। साथ-साथ उस आविर्भूत ऋतु के सारे बर्ताव भी होने लगते हैं॥ २७९॥

* राग रागनियों का परिचय *

देशी देवगिरी पुनी, हिंडोली बैरारि।
तोड़ी अरु ललिता यही, षट वसन्त की नारि॥२८०॥
ताको गावति ललित स्वर, अमित अप्सरा वृन्द।
प्रगटी ऋतू वसन्त तब, वनिता को सुखकन्द॥२८१॥

पुनि ताकी सब रागिनी, गाईं अंग विचार।
समय समय की रागिनी, करत सु समय प्रचार ॥२८२॥
छन सन्ध्या छन याम अध,छन यामोर्ध्व दिखाय।
छन निशीथ निशोथ अघ, ऊर्ध्व निशीथ सुछाय ॥२८३॥
तथा दिवस के काल सब, दरसावति मृदु गाय।
अति कौतुक सुर गायिका, करति मूर्च्छना लाय ॥२८४॥

शब्दार्थ:--षट = छै । वनिता = कामिनी, स्त्री। सुखकन्द = सुख रस बरसाने वाला। याम अघ = आधा पहर बीती रात । यामोर्ध्व = एक पहर से ऊपर रात । निशीथ = आधी रात। निशीथ अध = आधी रात के पूर्व । उर्ध्व निशीथ = दोपहर रात्रि के बाद पिछली रात।

देशी, देवगिरी, हिंडोली, वैराड़ी, तोड़ी, तथा ललिता-यह छवों रागिनी वसन्त राग की पत्नियाँ हैं ॥ २८० ॥

कौन रागिनी किस राग की पत्नी है ? किस समय किस ऋतु में गाई जाती है ? इस विषय में संगीताचार्यों में मत भेद है। यहां 'गान गुण गन्धर्व जेता' श्रीहनुमतलाल जू का सिद्धान्त उल्लिखित किया गया है । देखिये कौशल खंड दशम अध्याय श्लोक (१२-१८) ।

असंख्य देव कन्याओं (अप्सरा) के समूह वसंत राग मधुर स्वर में गा रही हैं । गाते ही समय न होने पर भी अकस्मात् वसंत छा गया । यह ऋतु कामिनियों के लिये रसोद्दीपन कर काम सुख बरसाने वाली है॥ २८१॥

पुनः बसंत की पत्नियाँ जो उपर्युक्त छै रागिनी हैं, उन्हें समय के क्रमानुसार विचार पूर्वक गाया। जो रागिनी जिस समय गाई जाती है, वही समय आकर उपस्थित हो जाता है॥ २८२ ॥

सन्ध्या काल में गाने वाली रागिनी चाहे दिन रात में जब गाओ तभी सन्ध्या हो जायगी। यही सब रागिनियों का हिसाब है। इस तरह रागिनियाँ गाई जा रही हैं। रागिनियों के गान करते ही अभी सन्ध्या है, क्षण मात्र में ही आधे पहर की रात है, दूसरे ही क्षण पहर भर से ऊपर रात्रि दीख पड़ती है। फिर अन्य रागिनी गाते ही क्षण मात्र में आधी रात हो गई। कभी आधी रात से पूर्व का, कभी आधी रात से ऊपर का समय छा जाता है॥ २८३ ॥

उसी प्रकार मधुर स्वर से दिन वाली रागिनियाँ गाती हैं, तो दिन के सब विभाग वाले समय छा जाते हैं। संगीत में मूर्च्छना के हिसाब से तान लेकर देव गायिकाएँ (गन्धर्व एवं किन्नर कुमारियाँ) अति आश्चर्य कौतुक कर रही हैं॥२८४॥

पुनि भैरवि अरु गुर्जरी, रेवा अरु गुनकारि।
बंगाली बहुली ये षट्, भैरव राग सुनारि ॥२८५॥
ताको गावति नागरी, प्रगटत ऋतू निदाघ।
पुनि ताकी सब रागिनी, प्रगटत समय सलाघ ॥२८६॥
लाग डाट बहु जल-अली, तान सु उच्च तरंग।
मधुर लहर जिमि मूर्च्छना, रसिक मीन मन संग ॥२८७॥

राग उदधि उमड़्यो महा, मगन सुसकल समाज।
नूपुर धुनि बाजन सुधुनि, स्वर धुनि घोष सुगाज ॥२८८॥

शब्दार्थ = निदाघ = ग्रीष्म । सलाघ = अति शीघ्र । जल-अली = जल का भौंर । उदधि=समुद्र । घोष सुगाज = समुद्र गर्जन की आवाज।

भावार्थः--भैरवी, गुर्जरी, रेवा, गुणकरी, बंगाली, और वहुली-ये छवों रागिनी भैरव राग की पत्नियाँ हैं ॥२८५॥

उन संगीत निपुणाओं ने भैरव राग का गान किया, त्योंही ग्रीष्म प्रगट हो गया। पुनः उसकी रागिनी गाई गई, तो उसी के अनुसार दिन रात के काल विभाग शीघ्र गति से प्रगट होते गये ॥ २८६ ॥

प्रसंगः-राग रागिनी को समुद्र मानकर कवि उसका सांगोपांग रूपक बांधते हैं। समुद्र के अंग हैं, जल का भौंर (तेज धारा में पड़ने वाला चक्कर), बड़ी लहर, छोटी लहर मछली, और सिन्धु गर्जन।

यहाँ नृत्य क्रिया का लागडाट ही भौंर है, तान का आलाप ऊँची तरंग है, मूर्च्छना छोटी लहर है, संगीत रसिक श्रोतागण उसमें निवास करने वाली मछली हैं। नूपुर ध्वनि, बाजों की ध्वनि,कंठ-स्वर की ध्वनि-सभी ध्वनियों का सम्मेलन समुद्र गर्जन वत प्रतीत हो रहा है। इस प्रकार का राग रूपी महा समुद्र उमड़ चला। उसमें सारा समाज मगन हो रहा है॥ २८७, २८८ ॥

पुनि मल्लारी सोरठी, सावेरी सुखदानि।
गंधारी अरु कौशिकी, हरिश्रृङ्गारा मानि ॥२८९॥
मेघ-राग की सुन्दरी, ये षट गावति नारि।
प्रावृट प्रगटी तुरत ही, जनु अनंग अभिसारि ॥२९०॥
चहुँ दिशि दमकत दामिनी, श्याम मेघ घनघोर।
चातक कूजत हर्ष अति, नाचत मोरी मोर ॥२९१॥
नाचति नागरि मंडली, मान तान अँगहार।
नाचि नचावत लाल मन, मोहत बसन घुमार ॥२९२॥

शब्दार्थ:—सुखदानि = कान को सुख देने वाली। प्रावृट = वर्षा ऋतु। अभिसारि = भेंट करने को जाने वाला। घनघोर = गर्जन। अंगहार = अंगों को मोड़कर।

भावार्थ:—पुनः मेघराग की छै सुन्दरी पत्नियाँ हैं। नाम मल्लारी, सोरठी, सावेरी, गन्धारी, कौशिकी और हरि श्रृंगारा हैं। ये बड़ी सुखदायिनी हैं। मेघराग के गाते ही बरसात तुरत प्रकट हो गई। इनकी छवो रागिनी मानो काम के समीप जाने वाली अभिसारिका नायिकाएँ हैं ॥२८९, २९०॥

प्रावृट के प्रगट होते ही चारो ओर बिजली कौंधने लगी, काली काली घटा घिर आई। बादल गर्जने लगे। पपीहा सानन्द पिउ पिउ पुकारने लगी। मोर मोरनी नाचने लगे ॥ २९१ ॥

नृत्य निपुणा नायिकाएँ बाजे से ताल मिलाकर, तान का आलाप लेती हुई, अंगों को मोड़कर भाव प्रदर्शन करती

हुई स्वयं नाच रही हैं। उनके नृत्य देख श्रीलाल जू का मन मारे आनन्द के नाच रहा है। घुमारदार वसन फहरने के कारण निम्नभागों के किंचित निरावरण अवलोकन से उनके मनमें मदनोद्दीपन हो रहा है ॥ २६२ ॥

मालश्री भूपालिका, पटमंजरी विभास।
बड़हंसी करनाटिका, ये षट रागिनि खास ॥२६३॥
ये पंचम की नायिका, युत गायो सो राग।
शरद ऋतू प्रगटी तहाँ, अलिगन मन अनुराग ॥२६४॥
गावति नारि निषाद पुनि, ऋषभ और गान्धार।
षड़ज सुमध्यम धैवता, पंचम सवनि सँवार ॥२६५॥
श्रीब्रह्मादिक अमित सब, ताल भेद गति माँच।
लेत मूर्च्छना नागरी, महारंग में राँचि ॥२६६॥

भावार्थः—मालश्री, भूपाली, पटमंजरी, विभास, बड़ हंसी, कर्णाटी ये छवो रागिनी खाश पंचम राग की पत्नियाँ हैं। इन रागिनियों के सहित पंचम राग का गान किया। पंचम राग अलापते ही शरद ऋतु प्रगट हुई। शरद रासोद्दीपक है, अतः इसके समागम से सखियों के मन में अनुराग की बाढ़ आ गई ॥ २६३, २६४ ॥

निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम, धैवत और पंचम ये सात संगीत शास्त्रानुसार स्वर हैं। (षड्जं रौति मयूरस्तु गावो नर्दन्ति चर्षभम्। अजाविकौ च गान्धारं क्रौंचा नदति मध्यमम् ॥ पुष्प साधारणे काले कोकिलो रौति

पंचमम् । अश्वस्तु धैवतं रौति निषादं रौति कुंजरः ॥ अर्थात् मोर षड्ज, बैल ऋषभ, भेड़ बकरी गान्धार, क्रौञ्च पक्षी मध्यम, घोड़ा धवत, कोकिल वसन्त काल में पंचम तथा हाथी निषाद स्वर बोलते हैं ॥) गान में इन सभी स्वरों का सम्हाल हो रहा है ॥ २६५ ॥

प्रसंगः -अब ताल पर विचार हो रहा है, क्योंकि "संगीतं न बिना तालात् प्रतिष्ठां लभते क्वचित्। गीतं वाद्यं तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठितम् ॥ अर्थात् बिना ताल के संगीत कहीं भी प्रतिष्ठा नहीं पा सकते। जहाँ पर गीत, वाद्य और नृत्य, ताल में प्रतिष्ठित रहें, उसी को पूर्ण संगीत कह सकते हैं।—'इति कौशल खंडे अध्याय ११।८४, ८५। ताल के प्रधान दो भेद हैं मार्ग और देशी। पुनः इन दोनों के अनेक उपभेद हैं। देशी ताल के भेदों में श्रीरंग ताल तथा ब्रह्म ताल भी हैं।

भावार्थः—श्री रंग ताल, ब्रह्मताल आदि असंख्य ताल भेद हैं। उन्हीं तालों के साथ नृत्य गान हो रहे हैं। परमानन्द में मगन होकर ये सभी संगीत-प्रवीणाएँ मूर्च्छना ले रही हैं ॥ २६६ ॥

कामोदी कल्याणिका, आभीरी पुनि नाटि।
मालंगी नटहमिरिका, ये षट रागिनि ठाटि ॥२६७॥
ये सब नाटक नायिका, युत गायो परवीन।
प्रगटी ऋतु हेमंत तब, नर नारी सुख लीन ॥२६८॥

गति उघटति सांगीत की, सूचति भाव अनेक।
लेत तान अति रंग सों, नागरि सप्त विवेक ॥२६६॥

शब्दार्थः--ठाटि=समूह । नाटक=नट राग, नट नारायण भी इसी को कहते हैं। परवीन (प्रवीण) = निपुणा। सप्त विवेक=सातो स्वरों को जानने वाली।

भावार्थः--कामोदी, कल्याणी, आभीरी, नाटिका, सालंगी, और नट हम्मीरी ये छै रागिनियों का जो समूह है, वह नट नारायण राग की पत्नियाँ हैं। उन रागिनियों के सहित उन संगीत निपुणा नायिकाओं ने जब नारायण राग का गान किया, तब तो तुरत हेमंत प्रगट हो गया। उसके प्रगट होते ही नायक नायिका काम सुख में मगन हो गये॥ २६७,२६८॥

प्रसंगः-संगीत में गति, भाव, आदि का भी विचार करना पड़ता है । "अंगेनालंवयेद्गतिं हस्तेनार्थं प्रदर्शयेत्। चत्तुभ्यां भावमित्याहुः पादाभ्यां ताल निर्णयः।" अर्थात् नृत्य में अंगों को मोड़कर गति प्रगट करनी चाहिये, हाथों से अर्थ बताना, नयनों से भाव प्रकाश तथा चरणों से ताल का निर्णय होना चाहिये ॥ कौशल खंड ११ ॥ १५५, १५६॥

मानवी, मैनवी, गजलीला, तरंगिणी, हंसी, मृगी, और खंजरीटी ये सप्त गतियाँ हैं। पुनः लावा, हंस, मयूर, हय, कुंजर, तित्तिर, कुक्कुट, और मीन--ये आठ गतियाँ भी नर्त्तकों की हैं॥

संगीत रीति से नृत्य काल में अनेकों गतियाँ प्रगट कर

रही हैं । नयनों से अनेक भाव दिखा रही हैं। अत्यन्त रंग में भर कर ताल आलाप रही हैं । इन संगीत-निपुणाओं को सातों स्वर का पूरा विवेक है ॥ २९९ ॥

केदारी मधुमाधवी, त्रिवर्णी मालवि गौरि।
पुनि पहाड़िका श्रुति-सुखद, रागिनि षट सिरमौरि ॥३००॥
ये रंभा श्रीराग की, करति नागरी गान।
लाग डाट सम मान पर, लेत घुमरि मृदु तान ॥३०१॥
गावत प्रगटी शिशिर ऋतु, सब के मन अति चाव।
भयो प्रगट श्रृङ्गार जनु, खेलत खुले सुदाव ॥३०२॥
यहि विधि गाइ सु राग षट, षट ऋतु को दरसाय।
सो ऋतु की लीला करत, नृत्यत मृदु सुर गाय ॥३०३॥
गन्धर्वी विद्या सकल, रास मध्य दरसाय।
बैठीं गायक-नायिका, सिय पिय आयसु पाय ॥३०४॥

शब्दार्थ:--श्रुति सुखद = सुनने से कान को सुख देने वाली। रंभा = बेश्या, परन्तु यहाँ पत्नी से तात्पर्य है। श्रीराग= इसे सारंग राग भी कहते हैं। चाव = उत्साह । गायक = देव लोक के गायक गन्धर्व और किन्नर हैं।

भावार्थ:--केदारी, मधुमाधवी, त्रिवर्णी, मालवी, गौरी, और पहाड़िका = ये छवो रागिनी कान को सुख देने वाली एवं सब रागिनियों में श्रेष्टा हैं ॥ ३०० ॥

उपर्युक्त छवों रागिनी श्रीराग की पत्नियाँ हैं। वह चतुरी गन्धर्व कन्याएँ इन सबों का गान करती हैं। सम पर, बाजे

के ताल (मान) पर लाग डाट नामक नृत्य क्रिया प्रगट करती हुई घूम घूम कर नाचती हैं, और मधुर तान का आलाप करती हैं ॥ ३०१ ॥

श्रीराग का गान होते ही शिशिर प्रगट हो गया। सभी के मन में मदनोत्साह का संचार हुआ। मानो शृंगार रस स्वयं प्रगट हो गया हो। अतः सभी नायिकाएँ अपना अपना दाव घात खुल कर खेलने लगीं ॥ ३०२ ॥

इस प्रकार से उन लोगों ने जब क्रमशः उपर्युक्त छै रागों का गान किया और उनके अनुसार क्रमशः छवों ऋतुएँ प्रगट हुईं, तब उन्हीं ऋतुओं के हिसाब से वर्षोत्सव भी मनाती गईं। मधुर स्वर से गान भी करती जाती थीं ॥३०३॥

रास में सब गन्धर्वी विद्या दिखाकर, श्रीयुगल ललन जू की आज्ञा पा सभी गन्धर्व और किन्नर कन्याएँ बैठ गईं ॥ ३०४ ॥

❋ श्रीलाल जू का नृत्य ❋

मदन भेरि बाजी मधुर, उठे सु नटवर लाल।
उघटन लगे अनूप गति, ताथेइ बदति सुवाल ॥३०५॥
गान तान मूर्च्छान लय, लाग–डाट सम भाव।
अंगहार मोही तिया, खेलि कला बहु दाव ॥३०६॥
ग्राम तीन सातो स्वरन, घटत बढ़ावत तान।
धुमकि धुमकि नूपुर सुगति, छमकि छमकि दै मान ॥३०७॥

चंग कला कर फेरि मृदु, हँसि बाँके दृग हेरि।
पुनि अद्भुत कौतुक करत, चकई चातुर फेरि ॥३०८॥
अलकैं छुटीं कपोल पर, चंचल कुंडल कोर।
जनु पूरन ससि के निकट, लसत पन्नगी मोर ॥३०९॥
जो जो गावत रागिनी, राग समय दरसाय।
ताल भेद गति अमित विधि, नटत रंग बरसाय ॥३१०॥

शब्दार्थः--नटवर=नर्तक शिरोमणि। उघटन=प्रगट करना। अंगहार=अंग विक्षेप। चकई=लट्टू। पन्नगी=नागिनी।

भावार्थः--मधुर मधुर ध्वनि से काम दुन्दुभि बजने लगी। इस पर नर्तक शिरोमणि श्रीरघुलाल जू उठ पड़े। नृत्य की ऐसी उत्तमोत्तम गति प्रकट करने लगे, जिसकी कोई उपमा नहीं। सुन्दरी सुकुमारी बालाएँ मुख से ताथेइ ताथेइ शब्द उच्चार रही हैं॥ ३०५ ॥

श्रीलाल जू का मूर्च्छना के साथ तान अलाप कर गाना, बाजे के साथ कंठ स्वर का ताल मिलाना, नृत्य में लाग डाट, सम पर ताल तोड़ना, गति लेने में अंग विक्षेप आदि आपकी सारी सुमधुर चेष्टाओंने ललनाओं को मुग्ध बना दिया। अनेक युक्तियों से कला प्रदर्शन कर रहे हैं॥ ३०६ ॥

आपके संगीत में तीनों ग्राम एवं सातो स्वर के उपयोग हो रहे हैं। छमक छमक कर पाद विन्यास पूर्वक नूपुर ध्वनि से ताल प्रगट करते हैं तथा घूम घूम कर नृत्य गति लेते हैं॥ ३०७ ॥

मृदुल करकंजों को ऐसे फेर रहे हैं, मानों कला पूर्वक पतंग उड़ाते हों। मन्द मन्द मुसुकुरा कर तिरछी चितवनि ते ताक देते हैं। पुनः चतुराई पूर्वक लट्ट घुमाने की मुद्रा दिखाते हैं। आश्चर्य कौतुक कर रहे हैं ॥ ३०८ ॥

घुंघुराले जुल्फों की लट गोल कपोल पर छुटी है। मयूराकृत कुंडल का छोर डोल रहा है। मानो पूर्ण चन्द्रमा (लाल जू मुख) के निकट नागिनी (अलक लट) और मयूर (मयूराकृत कुंडल) दोनों लड़ रहे हों ॥ ३०९ ॥

संगीत-विद्या-प्रवीण श्रीप्राणप्यारे जू जिन २ राग रागिनियों का गान करते हैं, उन्हीं के अनुकूल समय उपस्थित हो जाते हैं। आप अनन्त प्रकार के ताल भेदों एवं गति भेदों को दर्शाते हुये ऐसा सुन्दर नृत्य करते हैं कि प्रेमानन्द की झरी लग जाती है ॥ ३१० ॥

वेद पचीसी फेंकि पुनि, झेलि चपलता चार।
मुक्ता मही विथेरि पुनि, गति मिलि पोहत हार ॥३११॥
पुनि दुरि दुरी समाज सौं, अवहित्था करि आय।
करत सबन संवेग मन, अति आचरज भुलाय ॥३१२॥
नटत लाल संगीत गति, बाजत स्वर यक ताल।
तैसहिं बजत मँजीर पग, लखि मोहति सिय बाल॥३१३॥

शब्दार्थः--वेद (चार) पचीसी = चौपर के पासे। झेलि = लोकना। अवहित्था = छिपना। संवेग = चलाय मान।

भावार्थः--चौपर के पासों को फेंक कर पुनः उसे फुर्ती

से लोक लेते हैं। उस क्रिया में नृत्य गति भंग नहीं होती। मोतियों को भूमि पर फैला दिया, पुनः एक एक को चुन चुनकर नृत्य गति के साथ ताल मिलाकर, हार भी पोह रहे हैं ॥ ३११ ॥

पुनः समाज की नजर बचाकर छिप जाते हैं, फिर प्रगट हो जाते हैं। इस हाव से सभी नायिकाओं का मन आश्चर्य में भूलकर लुब्ध हो रहा है ॥ ३१२ ॥

श्रीलाल जू संगीत शास्त्र द्वारा प्रतिष्ठित गति से नृत्य कर रहे हैं। एक ही ताल में मिलकर सभी वाद्य यंत्र बज रहे हैं। उसी ताल से मिली हुई चरण-नूपुर की ध्वनि है। ऐसे सुसाधित नृत्य कला पर श्रीनवल प्रिया जू मुग्ध हो रही हैं॥ ३१४ ॥

* श्री प्रिया जू का नृत्य *

पुनि अनंग भेरी बजी, सिय जू सखियन संग।
बाजे बाजत चतुर विधि, नटति करति बहु रंग ॥३१४॥
छुम छुम छुम छुम धरत पग, तान हरत मन लाल।
फस्यो मीन मन श्याम को, अंगहार के जाल ॥३१५॥
चपला गति चारित पगन, धारत कला पतंग।
दृग चलाय मन लाल को, खैंचि नचावति संग ॥३१६॥
नाचि नाचि गति गेन्द पुनि, वेद पचीसी फेंकि।
घुमरि घुमरि कर झेलि पुनि, तान तरंग विशेकि ॥३१७॥

भावार्थः—फिर से कामदुन्दुभि बजी। श्रीप्रियाजू मिथिलानी सखियों के संग नृत्यार्थ उठ खड़ी हुईं। तत, घन, सुषिर और आनद्ध, चारो प्रकार के वाद्ययंत्र बजने लगे। अनेकों भाँति के आनन्द वर्द्धक कौतुक करती हुईं आप नाचने लगीं ॥ ३१४ ॥

जब श्रीप्रिया जू, ताल देने के निमित्त पाद विक्षेप करती हैं, तो नूपुर से छुम छुम की मधुर ध्वनि होती है। तान आलाप कर श्रीलाल जू के मन हरण कर रही हैं। नृत्य गति के निमित्त जब अंग-विक्षेप (अंगों को मोड़ना) करती हैं, उस समय वह क्रिया जाल समान प्रतीत होती है, जिसमें श्याम सलोनेलाल जू का मन रूपी मीन फँस गया ॥३१५॥

आपका चरण विक्षेप विद्युत वेग से अति शीघ्रता पूर्वक हो रहा है। पतंग उड़ाने की भाँति करकंजों से भाव प्रदर्शन करती हैं। श्रीलोनेलाल जू के मन को चंचल बनाकर अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। उनका मन भी आपके साथ ही नृत्य करने लगा ॥ ३१६ ॥

नृत्य करती हुई गेन्द की भाँति चौसर के पासे को आकाश में उछालती हैं। घूम घूम कर नृत्य करती हुई, पुनः उसे हाथ में लोक लेती हैं। तान के चढ़ाव उतार (आरोह अवरोह) में विशेषता हो रही है॥ ३१७॥

* युगल नृत्य *

नर्तति नवल गति लाड़िली, उठे श्याम रस ऐन।
धरि भुज अंशन परस्पर, नटत मनहुँ रति मैन ॥३१८॥

नटत सु श्यामा श्याम जू, तान मान पग धारि।
मधुर त्रिगति आतोद्य चहुँ, विधि सुबजावति नारि॥३१९॥
तान मूर्च्छना संग लै, बरसावत अति रंग।
लाग डाट पुनि स्वर भरत, करि हगकोर सुभंग॥३२०॥
बैठि करत अभिनय मधुर, उठत घूमि दै मान।
तान लेत मृदु कंठ सों, कोकिल कलरव गान॥३२१॥
पुनि बीना कर धारि कै, पिय प्यारी दोउ संग।
गाव रागिनि राग युत, दरसावत ऋतु रंग॥३२२॥

शब्दार्थः—रसऐन=रसधाम, रस के निवास। त्रिगति= द्रुत (चलती), मध्यम और विलम्बित (स्थायी)। आतोद्य= चतुर्विधमिदं वाद्यं वादित्रातोद्य नामकम् (इत्यमरे) अर्थात् तत, घन, सुषिर और आनद्ध चारों भांति के बाजों का इकठ्ठा नाम आतोद्य है। अभिनय=नाट्यमय भाव प्रदर्शन।

भावार्थः—श्रीलाड़िली जू अभूत पूर्व नई नई गति लेकर नृत्य करने लगीं, तब तो श्रीश्यामसुन्दर श्रीरघुलाल जू से नहीं रहा गया। रसोद्वेग पूर्वक उठ खड़े हुये। परस्पर में गलबहियाँ डालकर नाचने लगे, उस समय क्या मालूम होता है कि साक्षात् रति और कामदेव ही सारे समाज का मन लुब्ध करते हुये नृत्य करते हों॥ ३१८ ॥

गान तान तथा बाजे के साथ ताल मिलाकर युगल जोड़ी नृत्य करती हैं। द्रुत, मध्यम और विलम्बित ये तीनों गति ले

रही हैं। अन्यायन्य रमणियाँ चार प्रकार के बाजे बजा रही हैं॥ ३१६ ॥

तान के साथ मूर्च्छना लेकर प्रेमानन्द की झरी लगाये हुये हैं। नृत्योचित लाग डाट के साथ स्वर का आलाप ले रहे हैं। नयन कटाक्ष से भाव प्रदर्शन चल रहा है॥ ३२० ॥

पुनः दोनों बैठकर नाट्य मुद्रा से भाव दिखाते हैं। उठ कर बाजे के साथ ताल मिलाकर घूम घूम कर नाचते हैं। कोमल कंठ से आलाप ले रहे हैं। कोकिल के समान सुमधुर ध्वनि से गान करते हैं॥ ३२१ ॥

पुनः श्रीप्रिया प्रीतम जू दोनों एक साथ वीणा करकंज में लेकर जिस राग रानिनी का गान करते हैं, उसी के अनुसार ऋतु तथा समय प्रगट हो जाते हैं॥ ३२२ ॥

❋ कुंज तथा वन विहार ❋

पुनि कोटिन तिय वृन्द मधि,शोभित श्यामा श्याम।
रस विलास युत परस्पर, अंशन भुज अभिराम ॥३२३॥
विहरत मत्त गयंद गति, कुंज कुंज प्रति घूमि।
देखत वन की रम्यता, रतन विचित्रित भूमि ॥३२४॥
कहुँ महि विद्रुम मनि खचित,नील रंग मनि जाल।
ता मधि बूटे स्वेत मनि, मध्य पीत पुनि लाल ॥३२५॥
कहुँमहि मरकत मनि खचित,कलित कनक मनिजाल।
सित बूटे तिहि मध्य में, पुनि सुनील मनि लाल ॥३२६॥

कहुँमहि मनि सित वलित छवि,इन्द्रनील मनिजाल।
बूटे मरकत कनक मधि, सोभित विन्दुक लाल ॥३२७॥
कहुँ महि कंचनमय लसत, मरकत जाल विराज।
तामें बूटे स्वेत रुचि, ता मधि नील सुसाज ॥३२८॥

शब्दार्थः--गयन्द = हाथी । रम्यता = सुन्दरता । विद्रुम = मूंगा । सित = सफेद । वलित = संयुक्त ।

प्रसंगः--रास नृत्योपरान्त श्रीयुगल प्राणधन जू को कुंज तथा बन बिहार करने की इच्छा हुई । अतः रास चौक से सखी समाज सहित कुंजों के लिये चल पड़े । मार्ग की झांकी बर्णन करते हुये कहते हैं:--

भावार्थः-तदुपरान्त अनन्त नायिका बृन्द से परिवारित श्रीयुगलनवलकिशोर जू सुशोभित हो रहे हैं । रसमय हास विलास हो रहा है । युगल सुखदैन जू परस्पर में गलबहियाँ दिये हैं ॥ ३२३ ॥

मतवाले हाथी की चाल से एक कुंज से झूमते हुये दूसरे कुंज में विहर रहे हैं । पुनः कुंज से बन में चलकर बन की रमणीयता अवलोकन करते हैं । वन की भूमिका नाना रंग के रत्नों से चित्र खचित है ॥ ३२४ ॥

कहीं लाल मूंगे से जटित भूमि है, तो उस पर नील मणि का जाल चित्रित है । नील जाल के बीच में स्फटिक मणि का वड़ा बूटा है । श्वेत बूटे के बीच में पीत विन्दु, पुनः उस पीत विन्दु के बीच में छोटी सी लाल विन्दु है ॥ ३२५ ॥

कहीं श्याम मणिमयी भूमि है। उस पर स्वर्ण मणि का जाल है। जाल मध्य सफेद मणि का बूटा, बूटे में नील बिन्दु, उस नील विन्दु में लाल विन्दु है॥ ३२६॥

कहीं स्फटिक मणिमयी भूमि पर शोभा युक्त इन्द्रनील-मणि का जाल है। उसमें श्याममणि का बूटा, बूटे में स्वर्ण मणि की विन्दु, पुनः विन्दु मध्य लाल रंग की छोटी विन्दु है॥ ३२७॥

कहीं स्वर्णमयी भूमि पर श्याममणि का जाल है। उस जाल पर सुन्दर श्वेत बूटा, बूटे मध्य नील विन्दु सजी है॥ ३२८॥

वृत्त वितरदी कनक मय, जटित सुमनि बहु रंग।
तहँ बहु खग कौतुक करत, लखि निज छाँहक संग॥३२६॥
साल रसाल तमाल वन, ताल विसाल अनूप।
पुंग नाल खर्जूर वन, भूपमाल मेरूप॥३३०॥
श्रीपर्णी मालूर वन, गालव इंगुदि भूर्य।
पल्त दूधिका मदन वन, सारद मद आपूर्य॥३३१॥
औ खेत जम्बीर वन, वरुन नैम आक्षोट।
सौभाजन पुन्नाग वन, देवदारु वंकोट॥३३२॥
परम विशाल पियाल वन, नागरंग विस्तार।
तेन्दुक कृष्णफला विपिन, कोविदार सुखसार॥३३३॥
कल्पद्रुम मन्दार वन, हरिचन्दन सन्तान।
विपिन पारिजातक ललित, सुरद्रुम तेहि न समान॥३३४॥

शब्दार्थः--वितर्दि=वेदी । छांह=मणिमयी भूमि में अपना प्रतिबिम्ब । साल=साखू । ताल=ताड़ । पुंगनाल=नारियल । मेरूप=धूप । श्रीपर्णी=शाल्मली । मालूर=बेल । गालव=आवनूस । इंगुदि=हिंगोट नामक वृक्ष । भूर्य=भोजपत्र । ल्पक्ष दूधिका=पाकर । शारद=मौलिश्री । मद आपूर्य=शहद (मधु) से भरा हुआ । रेवत=अमलतास । जम्वीर=जंवीरी नीबू । सौभाजन=सोहजन । पुन्नाग=नाग केशर । पियाल=चिरौंजी । नागरंग=नारंगी । कृष्णफला=काली मिर्च । कोविदार=कचनार ।

भावार्थः--वृक्ष के नीचे सोने की बेदी बनी है, जिसमें अनेक रंग मणि जड़ी हैं । वहां मणि में अपना प्रतिविम्ब देखकर, पक्षी अनेक कौतुक करते हैं ॥ ३२९ ॥

प्रसंगः--अब जिन जिन बनों में विहार हो रहा है, उनके नाम गिनाये जाते हैं ।

भावार्थः-साखूवन, आमवन, तमालवन, ताड़वन, जो बहुत बड़े बड़े हैं तथा सुन्दर हैं । नारियलवन, खजूरवन, भूपमालवन, धूपवन, शाल्मलीवन, वेलवन, आवनूसवन, हिंगोटवन, भोजपत्रवन, पाकरवन, मदनवन (आनन्दवाग), मौलश्रीवन जिसमें शहद भरा है, और अमलतालवन, जंवीरी नीबू का वन, वरुना नामक पेड़ों का वन, नीमवन, अखरोटवन, सोहजनवन, नागकेशरवन, देवदारुवन, बंकोटवन, बड़े बड़े चिरौंजी पेड़ों का वन, सुविस्तृत नारंगीवन, तेन्दूवन, काली-

मिर्चवन, कचनारवन जो सुख सारवत सुखद है। इनके अतिरिक्त पांच देव वृक्ष हैं। कल्पवृक्ष, मन्दार, हरिचन्दन सन्तान, पारिजात-इन पाँचों के वन पृथक हैं। देवलोक वाले इन नामों के पेड़ों से ये दिव्य एवं अलौकिक हैं ॥ ३३०-३३४॥

नित नवीन पल्लव सदा, निस्तल छत्र समान।
सुधा स्रवत पादप सकल,फल छवि मनि उपमान॥३३५॥
फूले फूल अनेक रँग, जाही जुही चमेलि।
नवल निवारी मोगरा, कुंद सुगन्ध सुफेलि ॥३३६॥
मालति केतक केतकी, सेवति मुक्त गुलाब।
माधविका बासन्तिका, वकुल कदंव चहाव ॥३३७॥
वरन बरन के सुमन महि, बिछे नील पित श्वेत।
जनु बहु रंग वसन्त के, वसन सु शोभा लेत ॥३३८॥

शब्दार्थः--निस्तल = गोलाकार । स्त्रवत = टपकता है। पादप = वृक्ष । जाही = चमेली जातिका एक फूल । मोगरा= एक प्रकार का बढ़िया बेला । कुंद = जूही जाति का फूल। केतक = केवड़ा। सेवती = सफेद गुलाब। मुक्त = मोतिया बेला। वकुल = मौलश्री ।

भावार्थः--जिन बनों के नाम ऊपर गिनाये गये हैं, उनके प्रत्येक बृक्ष की शोभा का वर्णन करते हैं। उनके पल्लव नित्य नये दीखते हैं। डालियों का छायादार फैलाव छत्ते के आकार का गोल है। प्रत्येक बृक्ष से अमृत की बून्दें टपकती हैं। फल की शोभा की उपमा मणि से देने योग्य है ॥३३५॥

पुष्प वाटिकाओं में अनेक रंग के फूल खिले हैं। जाही, जूही, चमेली, नई नेवारी, मोगरा नामक बेला, कुंद-इन सबों की सुगन्ध चारो ओर फैल रही है ॥ ३३६ ॥

मालती, केवड़ा, केतकी, सफेद गुलाव, मोतिया वेला, गुलाव, माधवी, बसन्ती, मौलश्री, कदंब-इन सबों का बाहुल्य है ॥ ३३७ ॥

पुष्प वृक्षों से चू चूकर जो फूल भूमि पर गिरे हैं, सो मालूम पड़ते हैं कि नीले, पीले और सफेद रंग के विछावन पृथ्वी पर बिछे हों। अथवा ऋतुराज बसन्त के रंग विरंग की पोशाकें भूमिपर रखी सुशोभित हो रही हैं ॥ ३३८ ॥

मनिमय घाट विचित्र अति, सुधा स्वाद अति स्वच्छ।
शोभित चारो अस्त पर, विरचित मनिमय कच्छ॥३३९॥
यहि विधि बहु सर सोहहीं, कुंड अनेकन भाँति।
अमित कच्छ युत वापिका, प्रहि चोनाह सुभांति॥३४०॥
फूले कंज अनेक रँग, मधुर मत्त मकरन्द।
भय पराग सों पीत तन, लोभी तन मन फन्द॥३४१॥
कहुँ निकुरंब सुहंसनी, हंस सुकरत विलास।
कहूँ मयूरी मोर गन, करत परस्पर लास ॥३४२॥
कहुँ कादंवक तियन युत, करत परस्पर रंग।
कहुँ कादंवक कोक युग, तजत नहीं छिन संग॥३४३॥

शब्दार्थः--अस्त = किनारे। कच्छ = वंगला। प्रहि= कूप।

वीनाह=कूप का ढकना या जँगला। निकुरंब=समूह, झुंड। लास=क्रीड़ा। कादंबक=कलहंस, समूह।

भावार्थः- सरोवरों की शोभा वर्णन करते हुये कहते हैं कि उनमें मणियों के चित्र खचित एवं मणियों से घटित घाट हैं। जल अमृत के समान स्वादिष्ट एवं निर्मल है। प्रत्येक सरोवर के चारो ओर तट पर मणिमय बंगले बने हैं ॥ ३३६ ॥

इस प्रकार के असंख्य सरोवर उपर्युक्त बनों में सुशोभित हो रहे हैं। कहीं कहीं अनन्त प्रकार के कुंड बने हैं। असंख्य बावली हैं, जिनके ऊपर छायादार बंगले बने हैं। उसी तरह शोभा सम्पन्न जंगलेदार कूप हैं॥ ३४० ॥

उपर्युक्त जलाशयों में अनेक रंग के कमल विकसित हो रहे हैं। उनके पराग रस को पीकर भ्रमर मतवाले बने हैं। पुष्पों के पराग में रँगाकर श्याम से पीले बन गये हैं। वे ऐसे लोलुप हो रहे हैं कि अपने तन मन सबों को पुष्पों में फँसा लिया है ॥ ३४१ ॥

कहीं झुंड के झुंड हंस हंसिनी के जोड़े परस्पर में केलि कर रहे हैं। कहीं मोर मोरनी के झुंड परस्पर में क्रीड़ा कर रहे हैं॥ ३४२ ॥

कहीं कलहंस अपनी अपनी पत्नियों के सहित विलास कर हैं। कहीं चकवा चकई के झुंड परस्पर में ऐसे आसक्त हो रहे हैं कि क्षण मात्र भी एक दूसरे का संग नहीं छोड़ना चाहते ॥ ३४३ ॥

कहुँ चकोर गन मोदहीं, कहुँ शुक गन बहु रंग।
कहुँ कोकिल गन गावहीं, नटत मोर तिहि संग ॥३४४॥
कहुँ चकोर युग अमित गन, कहुँ सारस युग वृन्द।
कहुँ पारावत युग निकर, विलसत वन सानन्द ॥३४५॥
लता प्रतान वितान बहु, मध्य मध्य मनि कुंज।
रंजित रंग पराग बहु, मधुपालिन के पुञ्ज ॥३४६॥
मत्त मधुष मधुपान करि, गिरत भूमि तन भूलि।
पुनिउठि चुंवत लुब्धअति,बैठि कुसुम कलि फूलि॥३४७॥

शब्दार्थः--मोदहीं = विलास कर रहे हैं। मधुपालिन = मधुप अलिन = भ्रमर और भ्रमरी।

भावार्थः--कहीं चकोर के जोड़े परस्पर में विलास कर रहे हैं। कहीं कहीं सुग्गे और सुग्गी के जोड़े झुंड के झुंड क्रीड़ा कर रहे हैं। कहीं कोयल गान कर रही है तो मयूर उसके साथ नाच रहा है॥ ३४४ ॥

कहीं चकोर के असंख्य जोड़े, कहीं झुंड के झुंड सारस के जोड़े, कहीं कबूतर-जोड़ियों के समूह उपर्युक्त बनों में आनन्द पूर्वक विहार कर रहे हैं॥ ३४५ ॥

लताओं के वितान प्रतान तो अनन्त हैं। बीच बीच में मणिमय कुंज बने हैं। भ्रमर भ्रमरी झुंड के झुंड पुष्प पराग से रंगे हैं ॥ ३४६ ॥

भ्रमर पुष्प रस पीकर मतवाले बने हैं। बेसुध होकर भूमि पर गिर पड़ते हैं। फिर भी ऐसे रस लोलुप हैं कि होश

आने पर उठकर पुनः उन्हीं सुविकसी पुष्प कलियों पर बैठकर उन्हें चुम्बन करते हैं ॥ ३४७ ॥

पुष्पलता बहु परसि पुनि, किसलय कलित कँपाय।
सरसी सरसिज परसि कै, बहत पवन सुखदाय ॥३४८॥
मधुर मधुर फल अदत द्विज, नदत परम आनन्द।
तहँ विलसत प्रति कुञ्ज में,रसनिधि कोसल चन्द ॥३४९॥
दिय अंशन भुज परस्पर, हास विलास विभाव।
हाव अनेक दिखाय पुनि, हिये बढ़ावत चाव ॥३५०॥
कोउ गावत कोउ नटत कोउ, बाजन ललित बजाय।
विहरत श्यामा श्याम बन, रह्यौ रंग अति छाय ॥३५१॥

शब्दार्थः--सरसी=सरोवर। अदत=खाते हैं। द्विज=पक्षी। नदत=चहकते हैं। विभाव=उद्दीपन। हाव=अंग-चेष्टा। चाव=रसोत्साह। रंग=आनन्द।

भावार्थः--पुष्पलताओं को स्पर्श करने एवं सुन्दर पल्लवों को कम्पायमान करने से पवन की गति मन्द पड़ गई है। सरोवरों के जल छूने से शीतल बनकर तथा कमलों के स्पर्श से सुगन्धित बनकर शीतल मन्द सुगन्ध त्रिविध सुखद पवन बह रहा है ॥ ३४८ ॥

पक्षी मीठे फल खा रहे हैं। आनन्द पूर्वक चहचहा रहे हैं। इस प्रकार से सभी उद्दीपन विभावों से सम्पन्न बनों में रस सिन्धु श्रीकौशल प्रदेश को आह्लादित करने वाले श्री जानकी वल्लभ जू बिहार कर रहे हैं ॥ ३४९ ॥

श्रीलली लाल जू परस्पर गलबहियाँ दिये हैं। हास विलास से रसोद्दीपन बढ़ रहा है। पुनः अनेक प्रकार की रसमयी अंग चेष्टाओं के द्वारा कामिनियों के हृदय में रसोत्साह उल्लसित कर रहे हैं ॥ ३५० ॥

कोई रमणी गान करती हैं, कोई ललना नृत्य करती हैं, कोई विलासिनी बाजे बजा रही हैं। श्रीयुगलनवल ललन जू ऐसे समाज सहित वन विहार कर रहे हैं। सर्वत्र रसानन्द परिपूर्ण हो रहा है ॥ ३५१ ॥

* श्रीलाल जू की अन्तर्ध्यान-लीला *

प्रीति परीक्षा हेतु मन, मोहन छिपे सुभाय।
खोजति सखियन संग सिय, विरह रह्यो उर छाय ॥३५३॥
हेरति कुंज निकुंज प्रति, कहि कहि श्याम सुजान।
आय मिलो आनन्द घन, मेरे जीवन प्रान ॥३५३॥
भये गात सब तात अँग, भूषनहूं न सुहात।
कोकिल कूक सु हूक हिय, सिंधुजहू कर तात ॥३५४॥
ससि–कर रवि–कर अनुहरत, शीतल वात सुतात।
जे बन अति आनन्द-कर, हमको शोक समात ॥३५५॥

शब्दार्थः--तात = गर्म। सिंधुज = समुद्र से जायमान चन्द्रमा। कर = किरण। अनुहरत = समान मालूम पड़ता है। वात = पवन।

भावार्थः--उपर्युक्त रीति से विहार करते करते,

श्रीमनमोहन अवधेशनन्दन जू, श्रीप्रिया जू के समेत सभी रमणियों की प्रीति जाँचने के लिये, स्वाभावाविक रूप से छिप गये। तब तो श्रीप्रिया जू अपने सखी वर्ग के सहित उन्हें चारों ओर ढूढ़ने लगीं। सबों के हृदय में विरह व्याप्त हो रहा है ॥ ३५२ ॥

प्रत्येक कुंज निकुंज में ढूढ़ती फिरती हैं। हे श्याम सुजान जू! हे आनन्द वरसाने वाले घनश्याम जू! हे हमारे जीवन-प्राण जू! ऐसे लाड़प्यार पूर्ण नामोच्चारण पूर्वक प्रार्थना करती हैं कि आप कृपया आकर हमारे अंगों में लिपट जायँ ॥ ३५३ ॥

हमारे अंग प्रत्यंग विरह से संतप्त हो रहे हैं। अंगों में भूषण प्रिय नहीं लगते। कोयल की मीठी वाणी भी आपकी विरहावस्था में कसक ही उत्पन्न करती है। चन्द्रमा की शीतल किरणें हमारे लिये गर्म बन गई हैं॥ ३५४ ॥

चन्द्रकिरण सूर्यकिरण की समता कर रही है अर्थात् गर्म हो गई है। शीतल पवन भी गर्म हो गया है। जो बन्न आपकी संयोग-दशा में आनन्द वर्द्धक थे, वे इस समय हमें शोक में डुबो रहे हैं॥ ३५५ ॥

सखी बूझ द्रुम लतन सों, कौन दिशा घनश्याम।
बूझति गहि गहि मृगन सों, विरह बावरी वाम ॥३५६॥
बूझति कूपन के निकट, सर समीप पुनि जाय।
हे निकुंज हे हे लते, देहु न श्याम बताय ॥३५७॥

पूछति नागरि परस्पर, देखे कहुँ नृपलाल।
सुधि नहिं अंशुक अंग की,व्याप्यो बिरह बिशाल॥३५८॥
सुमन माल उर उरग जिमि, गहि फेकति डरपाय।
तप्त तेल जिमि अरगजा, छुवत न अंग सुहाय ॥३५९॥
निरखि विरह व्याकुल सिया, प्रगटे श्याम सुजान।
लखि सिय उर आनन्द जिमि,मृत तन भेटैं प्रान ॥३६०॥

शब्दार्थः--बावरी = पगली, उन्मत्त। अंशुक = वस्त्र। उरग = सर्प।

भावार्थः--सभी ललनाएँ विरहाधिक्य के कारण उन्माद दशा को प्राप्त हो गई हैं। यह महाभाव की मादन दशा है। उस विरहोन्मत्त दशा में वृक्ष लताओं से पूछती हैं, कभी मृगाओं को पकड़ पकड़ कर उन से पूछती हैं, "हे वहन,बताओ तो हमारे जीवननाथ घनश्याम जू किस ओर को गये हैं ?" ॥ ३५६ ॥

कभी कूपों के समीप जाकर पूछती हैं, कभी सरोवर समीप जाकर पूछती हैं, कभी निकुंजों से, लताओं से पूछती हैं- "हमारे श्यामसुन्दर को आप बता दें, कहाँ हैं ?" ॥३५७॥

ये कामिनियाँ एक दूसरे से पूछती हैं। वहन, तुमने श्रीकौशलेश राजदुलारे जू को नहीं पाया ? विरह की इतनी अधिक बाढ़ हो आई है कि अंगों के वसन तक का सम्हाल नहीं है॥ ३५८ ॥

हृदय पर धारण की हुई पुष्पमालाओं को सर्प समझ,

उनसे डर जाती हैं तथा उन्हें नोच फेकती हैं। जब किंकरियाँ उनके जलते अंगों पर शीतल सुखद अरगजे को लेपने लगती, तो आप को तप्त तेल के समान प्रतीत होता है। अतः अंगों में उसका स्पर्श दुखद हो रहा है॥ ३५९ ॥

इस प्रकार श्रीसिया लाड़िली जू को विरह के कारण अतिशय व्याकुल देखकर प्रीति रीति के मर्मज्ञ श्याम सलोने जू प्रगट हो गये। आपके मिलते ही श्रीप्रिया जू को ऐसा आनन्द हुआ, जैसे मृतक के शरीर में प्राण पलट आवे॥ ३६०॥

गाय उठीं सब नागरी, भयो परम उत्साह।
व्यंग वचन बोलति कोउ, बड़े छली तुम नाह॥३६१॥
मंगल साज बनाय कै, करति आरती सीय।
तन धन वारति नागरी, उमग्यो प्रेम सुहीय॥३६२॥
प्राननाथ मम नाथ गुन, गाथ गाय प्रति कुंज।
हम तुम को खोजति फिरी, घिरी विरह के पुंज॥३६३॥
सुखद सौंज सब दुखद भइ, तुम बिन हम कहँ नाथ।
सुखद विपिन दुख प्रद भयो, दुखद अलीगन साथ॥३६४॥
हम तुमरे बस लाड़िली, प्रेम परीक्षा हेत।
अंतरभाव लतान में, भये सुकुतुक समेत॥३६५॥

शब्दार्थः--गाथ = प्रशंसा। सौंज = सामग्री। अन्तर्भाव= छिपना।

भावार्थः--श्रीप्राणप्यारे जू के दर्शनानन्द में सभी मनोरमाओं के हृदय में आनन्दोत्साह छा गया। नृत्य गान

करने लगीं। कोई व्यंग वचनों का बौछार करती हुई कहती हैं हे प्राणेश्वर, तुम तो बड़े धोखेबाज निकले ॥ ३६१ ॥

श्रीप्रिया जू ने, श्रीप्राणनाथ जू को मनोहर सिंहासन पर पधराकर, उनके उभय पार्श्वों में मंगल कदली-स्तंभ रोपे, सामने मंगल चौक पूरा, मंगल कलश स्थापित किये तथा मंगल थाल सम्हालकर प्रदर्शित किया। तत्पश्चात् स्वयं आरती उतारती हैं। अन्यान्य रमणियों के हृदय में इतना प्रेम उमड़ आया कि सब की सब अपने अपने तन मन धन को प्राण प्यारे पर निछावर करने लगीं ॥ ३६२ ॥

श्रीप्रियाजू कहती हैं, "हे प्राणनाथजू, हे हमारे जीवनेश्वरजू, हम तो आपके मनोहर गुण गणों का गान करती हुई विरह से आच्छादित हो,आपको प्रत्येक कुंज निकुंज में खोजती फिरती थीं ॥ ३६३ ॥

हे प्राणनाथ जू, आपके विरह में सभी सुखदायिनी सामग्रियाँ हमारे लिये दुख देने वाली बन गईं। सुखद बन दुखदायक बन गये। सखियों का संग भी दुःखदायक हो गया था ॥ ३६४ ॥

श्रीप्रियतम जू कहने लगे--"हे श्रीलड़ैती जू, मैं तो सदा आपके अधीन हूं। केवल आपकी प्रीति परीक्षा के उद्देश्य से ख्याल ही ख्याल में इन लताओं के बीच छिप गया था ॥३६५॥

ब्याह, होली, साँझी झूलन आदि विविध क्रीड़ाएँ ।

प्रीति बचन कहि परस्पर, मिलि पुनि लाड़िलि लाल ।
विहरन लगे निकुंज में, गान सुतान रसाल ॥३६६॥
पुनि सखियन ललि लाल को, ब्याह विभूषन चीर ।
सजि मंडप कौतुक रच्यौ, बजि दुन्दुभी नफीर ॥३६७॥
कोउ विप्र को वेष रचि, ब्याह विधान बताय ।
ललित फिरावति भाँवरी, अलिगन मंगल गाय ॥३६८॥
नील पीत पट ग्रंथि रचि, करवावति सब चार ।
नेग चुकावति नागरी, रचि रचि वेष अपार ॥३६९॥
मालाकार किशोरि बनि, फूल डली कर धारि ।
मागति नेग सुनागरी, निरखि निरखि बलिहार ॥३७०॥
कोउ रँगरेजिन रूप धरि, मागति नेग सुधारि ।
यहिविधि कौतुक करति सब, रचिरचि गावति गारि॥३७१

शब्दार्थः—नफीर = तुरही । चार = विधि ।

भावार्थः—श्रीलली लाल जू परस्पर में प्रेम संभाषण करने लगे। पुनः दोनों मिलकर ऐकान्तिक निकुंज में शय्या विहार करने लगे। बाहर से सखियाँ कामसुख विस्तार करने वाले रसमय गान तान कर रही हैं ॥ ३६६ ॥

तत्पश्चात् सखियों ने श्रीलड़ैती लाड़िले जू को विवाहोचित भूषण वसनों से शृंगारित किया । ब्याह मंडप रचकर उसमें पधराया । नगारे तुरही आदि मंगल बाजे बजने लगे ॥३६७॥

किसी सखी ने एक वेदज्ञ ब्राह्मण का कपट वेष बना लिया। विवाह की वेदोक्त रीतियाँ बताईं तथा कराईं। सखीगण मंगल गान पूर्वक भाँवर फिराने लगीं॥ ३६८॥

दुलहा दुलहिन के नीलाम्बर पीताम्बर उपरना वस्त्रों के छोरों में गठ बन्धन डाला। सभी विवाह का रश्म कर रही हैं। अनेकों प्रकार के कपट वेष बनाकर अपने वेषोचित नेग ले रही हैं॥ ३६९ ॥

कोई माली की नवयौवना कन्या बन गई। हाथ में फूल की डाली ले ली। पुनः वह चतुरी विवाहोपलक्ष में अपना नेग माँग रही ही हैं तथा श्रीदुलहा दुलहिन की सुछवि देख उनपर निछावर हो रही हैं॥ ३७० ॥

कोई वस्त्र रंगने वाली रंगरेज कुमारी बन गईं। अपने वेषोचित नेग माँग रही हैं। इस प्रकार सभी ललनाएँ अनेकों स्वांग रचकर कौतुक करती हैं तथा चतुराई भरी गान कर रही हैं॥ ३७१ ॥

विहरत विपिन निकुंज में, कौतुक करत अपार।
पुनि कहुँ फागुन ख्याल रचि, गावति रंग घमार॥३७२॥
धूम मचाई रास में, बरसावत बहु रंग।
धुंधी छई गुलाल की, बाजत कोटिन चंग॥३७३॥
कहुँ साँझी रचि नागरी, ल्याइ कुसुम पच रंग।
गावति गीत सुसमय को, नाचि सबै यक संग॥३७४॥

कहुँ झूलत हिंडोलना, पाट डोर पच रंग।
पटुली ललित प्रवाल की, कनक किंकिनी संग ॥३७५॥

शब्दार्थः--ख्याल=क्रीड़ा। रंग=राग। पाट=रेशम। पटुली=पटरी जिसपर झूला सिंहासन रखाता है। प्रवाल=मूंगा।

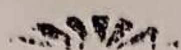
भावार्थः--पुनः वन के निकुंजों में विहार होने लगा। नाना भांति के खेल तमाशे हो रहे हैं। कहीं फाग विनोद की रंग भूमि बनी। धमार राग का गान होने लगा। महारास विषयक बन विहार के सिल-सिले में होली की धूम मच गई। रंग की बरसा हो रही है। गुलाल की धुंधी से आकाश आच्छादित हो गया। असंख्य डफ बज रहे हैं॥ ३७२,३७३॥

कहीं पांच रंगों के फूल लाकर चतुरी सखियाँ साँभी (कोष्ट चित्रादि) की रचना करती हैं। समयोचित छन्द प्रबन्ध का गान हो रहा है। सभी एक साथ नाच उठती हैं ॥ ३७४ ॥

कहीं झूला झूलते हैं। झूले में पाँच रंग वाले रेशम के डोर लगे हैं। मूंगे की मनोहर पटरी पड़ी है, उसमें सोने के घुंघुरू लगे हैं ॥ ३७५ ॥



❀ चौपर शतरंज गंजीफा खेल ❀



पुनि रघुनन्दन जानकी, बैठि सुचौक विशाल।
ललित छाँह मन्दार की, चहुँ दिशि अलिगन माल॥३७६॥
मनिमय चौकी मध्य में, लसत सुचित्र अनूप।
तापर सारीफल लसत, जनु क्रीड़ा को भूप॥३७७॥
चहूँ पटे मेचक वरन, मध्य कोश गुन पीत।
नील पीत मनि अवलि युग, कोश सुढिग संवीत॥३७८॥
युग युग मुक्तावलि रचित, सकल सारिकागार।
लसत पट्ट चहुँ प्रान्त में, पचरँग फूल सुधार॥३७९॥

शब्दार्थः--सारीफल = चौपर खेलने वाला कोष्टांकित वस्त्र। पटे = किनारा। कोश = कोष्ट। संवीत = सजा हुआ। सारिकागार = गोटीघर।

भावार्थः--तत्पश्चात् मन्दार वृक्ष की मनोहारिणी छाया के नीचे रचिक एक बड़े चौक पर श्रीलड़ैतीलाल जू समासीन हुये। चारो ओर से सखी समाज माला की भांति घेरकर विराज रही हैं॥ ३७६॥

आप दोनों के आगे चौपर खेल वाली एक मणिमयी चौकी रखी गई। इस चौकी के बीच में सुन्दर चित्राम खचित है। इसपर चौपर वस्त्र सुशोभित हो रहा है। चौपर तो मानों सब खेलों का राजा ही ठहरा॥ ३७७॥

चौपर वस्त्र के चारो किनारे श्याम रंग वाले हैं। बीच वाले कोष्ट पीत रंग के हैं। कोष्टों की शोभा के लिये नील पीत मणियों की दो पंक्तियाँ सजी हैं॥ ३७८ ॥

उपर्युक्त रीति से सभी गोढी घर (कोष्ट) दो भांति की मोती-पंक्तियों से रचित हैं। किनारे में चारो ओर से पाँच रंगों से विविध फूल कढ़े हैं ॥ ३७९ ॥

सारी रचिता वेद गुन, वेद वेद मिति वेद।
अक्ष अनूप शिवाक्ष मिति, मरकत संख्या भेद ॥३८०॥
खेलत चौपर चोप सों, चौक मध्य ललि लाल।
अलिगन खेलत परस्पर, हारि देत मनि माल ॥३८१॥
खेलि सुचौपर चातुरी, पुनि शतरंजी साज।
मनि विचित्र मनहरन पट, मनिमय सारि समाज॥३८२॥
पुनि गंजीफा खेल सब, खेलत सखी समाज।
नौ गोटी दस गोटिका, अपर अनेकन साज ॥३८३॥

शब्दार्थः--सारी = पासा। वेद गुन = चार रंग। वेदवेद मिति = दोनों पक्षों में चार चार की संख्या वाले। वेद = जानना अक्ष = पासे में बनी आँख की आकृति। शिवाक्ष = श्रीशंकरजी के नेत्र के समान तीन। मिति = संख्या। पट = वह वस्त्र जिसपर शतरंज के कोष्ट बने हैं। गंजीफा = आठ रंग के ९६ पत्तों से खेले जाने वाला ताश की तरह का एक खेल। नौ गोटी दस गोटिका = ये दोनों खेल के नाम हैं।

भावार्थः--उपर्युक्त चौसर के पासे चार रंगों के बने

हैं। दोनों पक्ष में पासाओं की संख्या चार चार जानियेगा। उन पासे में शिव नेत्र की भांति तीन तीन नेत्राकृति बनी है। उपर्युक्त चार रंगों में मरकत आदि मणियों को विचारना चाहिये ॥ ३८० ॥

चौक के बीच में विराजमान श्रीयुगलकिशोर जू उत्साह पूर्वक चौपर खेल रहे हैं। चारों तरफ से सखियां आपस में खेल रही हैं। हार जाने पर अपनी मणिमाला जीतने वाले को देनी पड़ती है ॥ ३८१ ॥

चौपर खेल में अपनी चतुराई प्रकट कर, पुनः शतरंज खेलने लगे। शतरंज का विसात (कोष्टांकित वस्त्र) बड़ा मनोहर है। उसपर मणियों के कोष्ट विचित्र हैं। पासे सब भी मणि रचित हैं।

तत्पश्चात् समस्त सखी समाज के साथ युगल मनहरण जू गंजीफा नामक खेल खेलते हैं। पुनः नौ गोटी वाला, दसगोटी वाला तथा अन्यान्य अनेकों खेल खेलते हैं ॥ ३८३ ॥

❋ श्रीलड़ैती जू का मान ❋

खेलत खेलत ख्याल में, कियो लड़ैती मान।
युगल कंज कर जोरि कै, विनवत राम सुजान ॥३८४॥
राजकिशोरी जिन करौ, हम सौं मान सुजान।
हमको तुम तजि भामिनी,सुख की गती न आन॥३८५॥
देह गेह सुख राज्य–सुख, तुम बिनसब दुख साज।
विहँसि कटाक्ष विलास तुव, सो हमको सुख साज॥३८६॥

जब ते तुम वीणास्वरी, बोलौ नहिं हँसि बैन।
हमको कछू सुहात नहिं, बैठव चलव न सैन ॥३८७॥

शब्दार्थ:--ख्याल = मनोविनोद। गेह सुख = श्रीकनभवन का षटऋतु वाला आनन्द। कटाक्ष विलास = तिरछी चितवनि वाले हाव भाव। वीणास्वरी = वीणा के समान मधुर भाषिणी।

भावार्थ:--उपर्युक्त प्रकार के खेल हो रहे हैं। उसी बीच में श्रीलड़ैती जू ने एक विनोदमय कौतुक के लिए मान कर लिया। प्रीति रीति के मर्मज्ञ श्रीप्राणप्रीतम जू दोनों कर कमल जोड़कर उन्हें मान मोचनार्थ प्रार्थना करने लगे ॥३८४॥

हे श्रीमिथिलाधिपराज नन्दिनी जू, आप मुझसे तो मान मत करिये। सुजान होने कारण आपसे मेरे हृदय की दशा कुछ भी छिपी नहीं है। हे भामिनी जू, मेरे हार्दिक सुख का उपाय आपके सिवाय और कुछ हई नहीं ॥ ३८५ ॥

अपने नव यौवन पूर्ण सुन्दर शरीर से प्राप्त होने वाला सुख, परमोत्तम कनक महल के विभव विलास, चक्रवर्ती साम्राज्य का कुबेरादिकों के लिये भी स्पृहनीय सुख,-सभी सुख आपके बिना मेरे लिये दुख दायक साज है। यदि अन्य कोई भी सुख उपलब्ध नहीं हो, केवल आपके मन्द मुसकान पूर्ण तिरछी चितवनि का ही विलास मुझे प्राप्य रहे, तो मेरे लिये यही परिपूर्ण तथा पर्याप्त सुख है ॥ ३८६ ॥

हे वीणा विनिन्दिनी कंठ स्वर वाली प्राण संजीवनी जू, जबसे मान करके आपने मुझसे हँसकर बोलना बन्द कर दिया

है, तबसे मुझे उठना बैठना, चलना फिरना, सोना जागना कुछ भी नहीं भाता है। प्रत्येक दशा में बेचैनी हो रही है ॥ ३८७ ॥

वचन न कहि आवत बदन, उष्ण भये सब गात।
सुन्दर सकल सुशीत रुचि, तुम बिन सब सम तात ॥३८८॥
लखि व्याकुल पिय को सिया, कियो चन्द कर हास।
पीतम चित्त कुमोदिनी, अद्भुत भयो प्रकास ॥३८९॥
पुनि मिलि दोउ विहरन लगे, सखि गन करत सुगान।
छुम छुम छुम छुम लेत गति, घुमरि देत सम मान ॥३९०॥
यहि विधि राम सुचौक में, करि लीला ललिलाल।
चले परम आनन्द युत, अमित अली गन माल ॥३९१॥

शब्दार्थः--बदन=मुख। उष्ण=गर्म। सुशीत रुचि= सुरुचि पूर्ण शीतल पदार्थ। तात=गर्म। चन्दकर=चन्द्रमा की किरण समान। अमित - असंख्य।

भावार्थः--श्रीप्रीतम जू श्रीप्रिया जू से कहते हैं-"मेरे मुख से बचन नहीं निकलता, क्योंकि गदगद मय कंठावरोध हो गया है। सारे अंग प्रत्यंग विरहाग्नि के मारे संतप्त हो उठे हैं। जितने सुन्दर सुखदायक शीतल पदार्थ थे, वे सब आपके संयोग सुख के बिना मेरे लिये अति गर्म के समान बन गये हैं ॥ ३८८ ॥

श्रीप्राणवल्लभ जू को विरह विकल देखकर श्रीप्रिया जू से नहीं रहा गया। आपने चन्द्रकिरण के समान आह्लादायिनी

मुसक्यान करदी। फिर क्या था, श्रीप्रीतम जू की चित्त रूपी कुमुदिनी बड़े विलक्षण ढंग से प्रफुल्लित हो उठी। अर्थात् जैसे चन्द्रकिरण से कुमुदिनी खिल उठती है, उसी प्रकार श्रीप्रिया जू के हास से श्रीप्रीतम जू का हृदय आनन्दित हो उठा ॥ ३८६ ॥

तत्पश्चात् श्रीयुगलकिशोर जू संयोगानन्द उपभोगार्थ परस्पर में गलबहियाँ डालकर बन विहार करने लगे। साथ-साथ सखियाँ गान करती हैं। नूपुर से छुम छुम ध्वनि प्रकटाती हुई घूम घूम कर नृत्य करती हैं, तथा सम पर ताल तोड़ती हैं ॥ ३६० ॥

श्रीललीलाल जू इस प्रकार से रासचौक में नाना विधि माधुर्यानन्द वर्द्धिनी लीला का विस्तार करके,वहां से परमानन्द में निर्भर होकर, असंख्य सखियों के समाज को साथ लिये हुये, आगे के सुखोपभोग निमित्त चल पड़े॥ ३६१ ॥

❋ चन्द्रिका चौक ❋

पुनि चन्द्रिका सुचौक में, आये सिय नृप लाल।
सकल पदारथ श्वेत रुचि, रचना चित्र विशाल ॥३६२॥
श्वेत कान्ति प्रासाद की, श्वेत झरोखे जाल।
श्वेत गवाक्ष मयंक रुचि, सित पिधान पट माल ॥३६३॥
सित गजमोतिन झालरैं, कलश कंगूरे श्वेत।
श्वेत वितान सु अमित पय,निधि सुत छवि हरि लेत। ३६४

श्वेत असन भूषन वसन, श्वेत श्वेत सब साज।
अंगराग अति श्वेत तहँ, श्याम गौर इव राज ॥३६५॥
तहँ सितकरा सु नागरी, अती सुघांर सुखदानि।
बैठारे सियलाल को, सकल भाँति सनमानि ॥३६६॥
अंगराज सित अंग रुचि, भूषन वसन सुश्वेत।
बाज साज सब श्वेत रँग, यह कौतुक रस हेत ॥३६७॥
विहरत कुंज निकुंज प्रति, लखे न सब इक रंग।
करि लीला अति अमित तहँ, चले लाल प्रिय संग ॥३६८॥

शब्दार्थः-- चन्द्रिका = चान्दनी। श्वेत = उजला। रुचि= सौन्दर्य, किरण, पसन्दगी। प्रासाद = महल। पिधान = पर्दा। पयनिधि सुत = (क्षीर समुद्र के पुत्र) चन्द्रमा। सितकर = चन्द्रमा।

भावार्थः--रास चौक से चल कर श्रीयुगलकिशोर जू चन्द्रिका चौक में पधारे। यहां की सारी चीजें सफेद प्रकाश से परिपूर्ण हैं। यहाँ की सुविस्तृत रचना अति आश्चर्य (चित्र) मयी है॥ ३६२ ॥

महलों से सफेद प्रकाश छिटक रहा है। इसके जाल झरोखे भी उजले ही हैं। छोटी खिड़कियों से चन्द्र-किरणवत कान्ति फैल रही है। श्वेत वस्त्र के परदे हैं। वन्दनमाल भी श्वेत ही हैं॥ ३६३ ॥

गजमुक्ताओं की सफेद झालरें झूल रही हैं। कलश

कंगूरे भी सफेद हैं। श्वेत रंग के चन्दोवे तो अनन्त चन्द्रमाओं की छवि छीन रहे हैं ॥ ३६४ ॥

वहाँ उजले वस्त्र भूषण का शृंगार होता है। भोजन पदार्थ भी सब उजले ही उजले हैं। वहाँ सारी सामग्रियाँ उजली ही उजली हैं। वहाँ अंगराग भी सफेद लगाया जाता है, जिससे श्यामगात भी गौर वत प्रतीत होते हैं ॥३६५॥

वहां की श्रीसितकरा नाम्नी कुंजेश्वरी हैं। बड़ी प्रवीणा चतुरी और सुख देने वाली हैं। उन्होंने परिकर सहित श्रीलली लाल जू का सब प्रकार से आदर सत्कार किया, तथा सुन्दर सिंहासन पर विराजमान कराया ॥३६६॥

वहां अंगों में फबने वाले सफेद रंग के अंगराग, सफेद भूषण वस्त्र, सफेद ही रंग के सारे वाद्य यंत्र हैं। यह कौतुक रस विस्तार के निमित्त रचा गया है ॥ ३६७ ॥

चन्द्रिका चौक के अभ्यन्तर अनेक कुंज निकुंज बने हैं। उनमें युगल विहार हो रहा है। वहाँ की सफेदी में सब के सब ऐसे शुभ्र हो गये हैं कि पहचान में नहीं आते। वहां अनन्त प्रकार की लीलाएँ करके श्रीयुगल सरकार वहाँ से चल पड़े ॥ ३६८ ॥

❋ तमिस्रा चौक ❋

पुनि सुतमिस्रा चौक में, आये सिय रघुनन्द।
तहँ मेचक मनि साज सब, देत परम आनन्द ॥३६९॥

अंगराग मेचक सकल, मेचक वसन सिंगार।
गौरहु मेचक होत तहँ, मेचक रंग अपार ॥४००॥
तहाँ तमिस्रा छविकरी, यूथेश्वरी विराज।
तहाँ अलीगन अमित युत, सजी सुमेचक साज ॥४०१॥
रघुवर सहजहि साँवरे, मेचक मनिभा भाति।
रसिक तहाँ उपमा मनो, मिलो रात गन राति ॥४०२॥
लखे न कोऊ परस्पर, मच्यो महा रस रास।
करि कौतुक लीला तहाँ, चले प्रमोद निवास ॥४०३॥

शब्दार्थः--तमिस्रा = घोर अन्धकार। मेचक = काला। मनिभा = मणिकान्ति युक्त। भाति = सोहते हैं। रातगन = अन्धकार समूह। लखे = पहचानने में। प्रमोद निवास = परमानन्द सुख जिनके अंगों में निवास करता है वैसे युगल मनहरण जू।

भावार्थः--चन्द्रिका चौक से चलकर श्रीयुगलरसिया जू तमिस्रा चौक में पधारे। वहाँ श्याममणि के निर्मित सकल पदार्थ बड़े आनन्द देने वाले हैं॥ ३६६ ॥

वहाँ अंगराग श्याम ही रंग के लगाये जाते हैं। श्याम ही भूषण वसन से श्रृंगार होता है। वहाँ के श्याम सौंज साज असंख्य हैं। गौर वरण वाली भी वहां श्यामा बन जाती हैं॥ ४०० ॥

वहाँ तमिस्रा नाम की सुन्दरी यूथेश्वरी विराजती हैं। अपनी अनन्त सखियों के सहित स्वयं भी श्याम रंग का श्रृंगार

कर रखा है तथा श्रीयुगलप्राण प्यारे को भी वहाँ पधरा कर श्याम ही श्रृंगार किया ॥ ४०१ ॥

श्रीरघुनन्दन चितफन्दन जू तो स्वतः स्याम सलोने ठहरे, मर्कत मणिवत अंगकान्ति आपकी। उसपर श्याम भूषण वसन का श्रृंगार खूब फबता है। इसपर कवि श्रीरसिकअलीजी उपमा देते हैं। मानों अन्धकार समूह रात्रि से मिल गया हो ॥४०२॥

उस सघन अन्धकार में श्याम श्रृंगार से भूषित होने के कारण, कोई किसी को नहीं पहचानता। इसमें नायिका नायक को दाव घात खूब हाथ लगा। महान रसानन्द की धूम मच गई। इस प्रकार की कौतकमयी लीला करके परमानन्द निधान श्रीयुगल छबीले जू चल पड़े ॥ ४०३ ॥

* चंग चौक *

पुनि श्रीरघुवर जानकी, चंग चौक में आय।
क्रीड़ा हित उद्यत भये, वय मम चपल सुभाय ॥४०४॥
चंग कला-कुशला तहाँ, यूथेश्वरी सुजान।
सनमानी सब भाँति पुनि, गान कीन्ह मृदु तान ॥४०५॥
खोले खंड अनेक तहँ, गुडी अनेकन रंग।
चंग अनेकन रंग के, रंग अनेक पतंग ॥४०६॥
अति विचित्र ऊँची अटा, तापर सकल समाज।
खेलत जनू शिकार सब, लेकर शिकरा बाज ॥४०७॥

कोउ गुडी पर मोर युग, नृत्य करत अति रंग।
कोउ गुडी में मच्छ सो, घूमत जिमि जल संग ॥४०८॥
कोउ गुडी पर हंस सो, नाचत कला अपार।
कोउ पर चरनायुध लरत, करत सुपाद प्रहार ॥४०६॥

शब्दार्थः--उद्यत = तत्पर । वय = उम्र । चंग = छोटी गुड्डी। गुड्डी - (गुरु + उड्डीन) बड़ा चंग। पतंग = हवा में ऊपर उड़ाने का पतले कागज का एक ढाँचा जो बाँस की तीलियों पर मढ़कर बनाया जाता है । शिकरा = शिकारी । मच्छ = मछली । चरणायुध = मुर्गा ।

भावार्थः--तमिस्रा चौक से चलकर श्रीयुगल सरकार जू अनन्त सखियों से परिवारित चंग-चौक में पधारे। यहाँ किशोरावस्था के अनुरूप चंचल स्वभाव के कारण चंग उड़ाने वाली क्रीड़ा करने को उतावले हो गये ॥ ४०४ ॥

चंग-चौक की यूथेश्वरी का नाम श्रीचंग-कला-कुशलाजी हैं। आप चंग-विद्या की मर्मज्ञा हैं। आपने श्रीयुगलमनभावनजू का षोड़शोपचार से पूजन कर, मनोहर तान से गान किया ॥ ४०५ ॥

अपने महल के खंड खंडान्तरों को खोलकर उनमें सम्भालकर रखे हुये भांति-भांति के रंग-विरंगे चंग, पतंग तथा गुड्डियाँ निकालीं ॥ ४०६ ॥

पतंग-उड़ाने के उद्देश्य से सारा रंगीला समाज नाना चित्रामों से खचित एक ऊँची अट्टालिका पर जा चढ़ा। सब

हाथों हाथ चंग, पतंग, गुड्डी ले लेकर उड़ाने लगे। उस समय मालूम पड़ता है मानों शिकारी बाज-पत्ती हाथों में ले लेकर सब के सब पक्षियों का शिकार खेल रहे हों ॥ ४०७ ॥

किसी गुड्डी पर मोर के जोड़े का चित्र बना है। दोनों कामाविष्ट होकर नाचती हुई मुद्रा में चित्रांकित हैं। किसी गुड्डी पर मछली का एक सुढंग चित्र बना है मानों जल में तैर रही हों ॥ ४०८ ॥

किसी गुड्डी पर अनन्तकला दर्शाते हुये नृत्य मुद्रा में हंस चित्रांकित हैं। किसी पर मुर्गे अपने चंगुल से आघात करते हुये परस्पर में लड़ती हुई मुद्रा में चित्रित हैं ॥ ४०९ ॥

कोउ के चारो ढिग लसत, ललित कीर की माल।
जनु आवत आकाश तें, सुनासीर शुक शाल ॥४१०॥
कोउ गुडी पर लरत हैं, हंसिनि हंस अनूप।
कोउ गुडी पर लरत है, सारस के युग रूप ॥४११॥
कोउ गुडी में लसत युग, कनक घंट अति नाद।
जनु घूमत गजेन्द्र के, करत परस्पर वाद ॥४१२॥
कोउ गुडी में किंकिनी, शब्द देत आनन्द।
मानहुँ नटत अकाश में, विवुध नागरी वृन्द ॥४१३॥
सोहत कोटिन गुडिन में, दीप मनिन को दीप।
दीपदान मानहुँ रच्यो, आजुहि स्वर्ग अधीप ॥४१४॥
कोउ भ्रमर इमि गुंजहीं, कोउ झालर जिमिनाद।
कोउ में डमरू नाद जनु, नट चढ़ि वियद सुवाद ॥४१५॥

शब्दार्थः--कीर की माल = सुग्गों की पंक्ति। सुनासीर= इन्द्र। शाल = निवास स्थल। विबुध = देवता। वियद = आकाश। नाद = ध्वनि।

भावार्थः—किसी गुड्डी के चारो प्रान्तों में सुन्दर सुग्गों की पंक्ति चित्रित है। वह गुड्डी जब उड़ती है, तो मालूम पड़ता है, मानों इन्द्र का शुकागार ही आकाश से उतरता आ रहा हो॥ ४१०॥

किसी गुड्डी पर हंस हंसिनी के जोड़े काम-समर करते चित्रित हैं, किसी पर सारस दम्पति के काम-युद्ध चित्रित हैं॥ ४११॥

किसी गुड्डी में सोने की दो घंटियाँ ध्वनित होती हुई लगी हैं। मानों आकाश में दो गजराज परस्पर में झगड़ रहे हों और उन्हीं के घंटों से आवाज होती हो॥ ४१२॥

किसी गुड्डी में घुंघरू लगे हैं। उड़ने समय उनकी ध्वनि सुनकर बड़ा आनन्द होता है। मालूम पड़ता है आकाश में देवांगनाओं का यूथ नृत्य कर रहा है॥ ४१३॥

असंख्य गुड्डियों में प्रकाशमान मणियों के दीप जड़े हैं। सब एक साथ आकाश में उड़ रहे हैं। उस समय ऐसा भान होता है, मानों इन्द्र ने अमरावती में आज ही दीवाली का उत्सव समारोह रचा है॥ ४१४॥

नाना गुड्डियों में नाना भाँति के घुंघरू लगे हैं। उड़ने समय किसी गुड्डी से भ्रमर गुंजार सी ध्वनि होती है, किसी से झालरों की झंकार होती है, किसी से डमरू की जब डिमडिम

आवाज सुन पड़ती है, तब मालूम पड़ता है, कोई नट आकाश में जाकर डमरू बजा रहा हो ॥ ४१५ ॥

चंग पतंग आकाश में, लरत कलाकर संग।
मनहुँ अमित नव ग्रहन कौं, मच्यो परस्पर जंग ॥४१६॥
श्याम पतग सुपीत सौं, लरत सुउपमा लेतु।
मानौ ससि को गहन हित, फिरत राहु युत केतु ॥४१७॥
लरत सुलाल पतंग सों, श्याम सुवरन पतंग।
मनु महिसुत रविपुत्र कौं, मच्यौ परस्पर जंग ॥४१८॥
लरत सुपात पतंग सों, श्वेत रंग कौ चंग।
जनु बदले जिजमान के, कवि गुरु लरत उमंग ॥४१९॥
भिरे परस्पर श्याम अरु, पिंगल वरन पतंग।
ग्रस्यो राहु जनु बाल रवि, बच्यो न नेकहुँ अंग ॥४२०॥
लरत सुलाल पतंग सों, कृष्ण रंग को चंग।
मानो होत आकाश में, कुज भानुज को जंग ॥४२१॥

शब्दार्थः--कलाकार = चन्द्रमा। महिसुत = पृथ्वी पुत्र मंगल। रविपुत्र = शनिश्चर कवि = शुक्राचार्य। गुरु=बृहस्पति। पिंगल = पीले। कुज -पृथ्वी से जायमान मंगल। भानुज = शनिश्चर।

भावार्थः - चंग पतंग आकाश में इतने ऊंचे उड़कर पहुँच गये हैं, मानों चन्द्रमा से ही युद्ध करेंगे। देखने से ऐसा भ्रम होता है, मानों नाना वरण वाले असंख्य नवग्रहों में पारस्परिक संग्राम छिड़ गया हो॥ ४१६ ॥

श्याम रंग का पतंग जब पीले पतंग से उलझ पड़ता है, तो ऐसी उपमा फुरती है, मानों चन्द्रमा को न पकड़ने के लिये केतुके साथ राहु पैंतरे वान्ध रहा हो ॥ ४१७ ॥

लाल पतंग से काला पतंग लड़ रहा है, मानों मंगल और शनिश्चर का आपस में युद्ध छिड़ा हो ॥ ४१८ ॥

पीले पतंग से उजला पतंग जूझ रहा है। उस समय ऐसा मालूम पड़ता, है मानों अपने अपने यजमान दानव देवों के बदले उनके गुरु शुक्र तथा बृहस्पति ही स्वयं उत्साह पूर्वक लड़ते हों ॥ ४१९ ॥

काले और पीले पतंग आपस में युद्धार्थ भिड़े हैं। मानों उदयकालीन सुनहले सूर्य मंडल को राहुने सर्व-ग्रास कर लिया हो ॥ ४२० ॥

लाल पतंग से काला पतंग लड़ पड़ा है। मानों आकाश में मंगल और शनीचर का मुठभिड़न्त हो रहा है ॥ ४२१ ॥

श्याम वरन को चंग यक, श्याम चंग कौ फन्द।
पिता पच्छ करि राहु को, पकरि घुमावत मन्द ॥४२२॥
रघुवर के करकंज में, लगन लाल रंग डोरि।
नचवत पच्च रँग चंग को, अमित कला कर मोरि ॥४२३॥
चपल खैंचि परसाइ महि, पुनि चढ़ाइ आकास।
भिरव अपर के चंग में, पुनि गिराय सविलास ॥४२४॥
जनकलली कर कज में, सोहत श्याम सुडोरि।
अतिहि विचित्र पतंग को, नचवति मृदु कर मोरि ॥४२५॥

उच्छेपति आच्छेप करि, कौतुक कला खिलाय।
डारति पिय के चंग पर, हँसति गिराय चढ़ाय ॥४२६॥
यहि विधि अलिगन परस्पर, खेलति कौतुक रंग।
इतउत पद धरि ललित गति,ललित लचकि कटिमंग॥४२७

शब्दार्थः—मन्द = शनीचर । सविलास = कौतुक पूर्वक । उच्छेपति = ऊपर चढ़ाती है । आच्छेप = नीचे उतारना।

भावार्थः—एक काला चंग दूसरे काले चंग के फन्दे में बेतरीके फँस गया है। उसपर ऐसा भान होता है कि अपने पिता सूर्य का पक्ष लेकर, शनीचर अपने पितृशत्रु राहु को पकड़कर घुमाते हुये परीशान कर रहा हो ॥ ४२२ ॥

श्रीरघुबंश विभूषण जू के कोमल कर कमल में लाल डोरी सुशोभित हो रही है। उसके द्वारा आप पाचरंग वाले चंग को अनन्त कला पूर्वक करकमल मोड़ मोड़कर नचा रहे हैं ॥ ४२३ ॥

फुर्ती से डोरी खींचकर चंग को उतार लेते, उसे भूमि से स्पर्श कराकर पुनः आकाश में चढ़ा देते। दूसरी के चंग के साथ अपने चंग को लड़ा देती, पुनः कौतुक पूर्वक विपक्ष का चंग काटकर गिरा देती ॥ ४२४ ॥

श्रीजनकलड़ैती जू के सुरम्य करकंज में श्याम डोरी सोह रही है। उनका पतंग अनेक चित्रों से खचित है। उसे कोमल करकंज मोड़ मोड़ नचा रही हैं ॥ ४२५ ॥

उस पतंग को आप कौतुक पूर्वक अनेक कलाओं के साथ कभी तो ऊपर चढ़ातीं, कभी नीचे उतारतीं। कभी श्रीप्राण-प्यारे जू के चंग पर अपना पतंग डाल देतीं तथा उनके चंग को गिराकर हंसने लगती हैं॥ ४२६ ॥

इसी प्रकार सखियाँ भी आपस में गुड्डी लड़ाने वाले खेल कौतुक प्रेमानन्द पूर्वक कर रही हैं। उड़ाने काल में इधर उधर जो चरण विन्यास करती हैं, उसी में कमर लचका कर अनेकों भाव भंगिमा पूर्वक नृत्यगति भी ले रही हैं ॥ ४२७ ॥

* चकई चौक *

पुनि कौतुक निधि लालसिय, चकइ चौक में आय।
चकई खेलन चतुर मन, कीन्हों चपल सुभाय ॥४२८॥
ललित विविध प्रासाद की, निवसति अलिगन वृन्द।
चकई कला प्रवीन तहँ, यूथेश्वरि अभिनन्द ॥४२९॥
खंड अनेकन तहाँ लखु, मनिमय चित्रित भीत।
तामें अमित सुरंग की, मंजूषा मन मीत ॥४३०॥
तामें अमित सुरंग की, चकई लसत अपार।
श्वेत हरित बहु चित्र की, नील पीत अरुनार ॥४३१॥
लसत सुडोरे पाट के, मिश्रित मध्य सुकेश।
चकई के चहुँ फेर में, किंकिनि लसत सुवेश ॥४३२॥

शब्दार्थः--चकई=घिरनी वाला खेलौना। प्रासाद= महल। अभिनन्द=प्रशंसनीय । मंजूषा=पेटी । मनमीत= मनोरंजक। सुरंग=उत्तमोत्तम रंगों की । मुकेश=कलावत्तू का काम किया हुआ, बादला। सुवेश=सुन्दर।

भावार्थः--चङ्ग चौक से चलकर कौतुकनिधान युगल-प्राणधन जू चकई चौक में पधारे। दोनों के नई उम्र के लिहाज से चञ्चल स्वभाव तो हई है। अतः आप दोनों का मन हुआ कि चकई खेल की चातुरी दिखलाई जाय॥ ४२८॥

उस चकई चौक के रमणीय महलों में असंख्य सखियों के समूह रहते हैं। उन सबों की यूथेश्वरी बड़ी प्रशंसनीया हैं। उनका नाम श्रीचकई-कला-प्रवीणा जू हैं ॥ ४२९ ॥

उन महलों में अनेक खंड खंडान्तर हैं। सबों की दीवालें मणिमय चित्रों से विभूषित हैं। उन खंडान्तरों में उत्तमोत्तम रंग वाली असंख्य मनोहर पेटियाँ रखी हैं॥ ४३० ॥

उन पेटियों में उत्तमोत्तम रंगों की अनंत चकई सुशोभित हो रही हैं। कोई उजली है, कोई हरी, कोई चितकबरी, कोई नीली, कोई पीली तथा कोई लाल चकई हैं ॥ ४३१ ॥

उन चकई को नचाने वाली डोरी रेशम की है, बीच-बीच में बादला भी मिला है तथा चकई के चारो प्रान्तों में सुन्दर किंकनियाँ लगी हैं॥ ४३२ ॥

अमित अटन पर चढ़ि गई, अमित झरोखे राजि।
तामें खड़ी फिरावहीं, चकई शोभा साजि ॥४३३॥

चहूँ फेर सुठि चौक में, मनिमय वेदि बिराज।
तापर खड़ी अनेक अलि, चकइ फिरावत राज ॥४३४॥
मच्यौ महा कौतुक सखी, खेलति ललित विलास।
करि करि वाद सुपरस्पर, फेंकति गहति सहास ॥४३५॥
चकई खेलति चातुरी, शोभा ललित दिखाय।
लरत तड़ित नवग्रहन की, नव रस शस्त्र बनाय ॥४३६॥
चकई मध्य जु किंकिनी, तासु शब्द दिशि पूरि।
फेंकति ललित सुलचकि अँग, बजत सुकंकन चूरि॥४३७॥

शब्दार्थः--सुठि = सुन्दर। राज = सुशोभित। विलास = कौतुक। ललित = मनोरम। सहास = हँसती हुइ।

भावार्थः--चकई नचाने के लिये असंख्य सखियाँ तो अट्टालिकाओं पर चढ़ गईं। अनेकों झरोखों पर विराजती हैं। उन्हीं में खड़ी होकर चकई नचाती हुई शोभायमान हो रही हैं ॥ ४३३ ॥

उस मनोहर चकई चौक के चारो ओर मणिमयी वेदिकाएँ सोह रही हैं। उन वेदिकाओं पर अनेक सखियां खड़ी होकर चकई नचाती हुई शोभा सज रही हैं ॥ ४३४ ॥

उस काल में महान कौतुक मच गया। सखियाँ सब मनोरम विलास पूर्वक चकई का खेल कर रही हैं। आपस में सरस वादविवाद हो रहा है। हँसती हँसती चकई फेकती हैं पुनः उन्हें हँसती हँसती लोक भी लेती हैं ॥ ४३५ ॥

चतुराई पूर्वक चकई खेलती हुई ऐसी मनोहर शोभा प्रकट रही हैं, मानों विजली (सखियों की अंगकान्ति) तथा नवग्रह (नव रंग की चकई) दोनों पक्ष मिलकर शृंगार, वीर, विभत्सादि नौ प्रकार के साहित्यिक रसों (नाना खेल कलाओं) के अस्त्र शस्त्र बनाकर युद्ध कर रहे हों ॥ ४३६ ॥

चकई के बीच-बीच में घुंघरू लगे हैं, उनकी ध्वनि दशों दिशाओं में भर गई। सखियाँ अपने रमणीय अंगों को ललका-ललका कर चकई फेंकती हैं, उस समय उनके कंकण तथा चूड़ियों से मदनोद्दीपिनी ध्वनि निस्सरित होती है ॥४३७॥

※ गेन्द चौक ※

क्रीड़ा लम्पट लाल सिय, चकई खेलि सुखेलि।
गेन्द चौक में आय पुनि, गेन्द कला रस रेलि ॥४३८॥
अति विशाल फाटिक मनी, निर्मित चौक सुचारु।
चहुँ फेर प्रासाद वर, चित्र पिधान अपारु ॥४३९॥
पंच वरन मनि झालरें, तैसहि कलश कंगूर।
मनि निर्मित खग वीथिका, तोरन ध्वज संपूर ॥४४०॥
तहाँ सौध रक्षक तिया, अमित मारि मद हारि।
निवसति कला प्रवीनसब, सिय पिय आनन्द कारि॥४४१॥
कन्दुक कला प्रवीन तहँ, यूथेशा गुन खान।
करि सोरह उपचार सिय, रघुवर को सनमान ॥४४२॥

रतन रचित कर-दंड बहु, रंग रंग के सोह।
जो रँग सोहत दंड कौ, सो कंदुक कर जोह ॥४४३॥

शब्दार्थ:--क्रीड़ा लम्पट=खेल में आसक्त । रेलि= भरमार। पिधान=परदा। वीथिका=चित्रशाला । संपूर= भरमार। सौध=महल । रक्षक=पहरा देनेवाली। मारि= मार अर्थात् काम पत्नि रति । करदंड=गेन्द खेलने के लिये हाथ वाला डंडा। जोह=देखिये।

भावार्थ:--इस समय श्रीलली लालजू विविध खेलों में आसक्त हो रहे हैं। चकई का खेल खेलकर गेन्द चौक में पधारे। यहाँ कन्दुक क्रीड़ा कला में रस की धूम मचगई ॥ ४३८ ॥

यह मनोरम गेन्द चौक सुविशाल है, स्फटिकमणि से निर्मित है। चारो तरफ अति उत्तम महल बने हैं। उनमें अनेकों चित्र खचित परदे द्वारों पर लगे हैं॥ ४३९ ॥

पाँच रंग की मणियों से रचित झालरें झूल रही हैं। उसी प्रकार पंच रंग मणियों के कलश कंगूरे जगमगा रहे हैं। मणि रचित पक्षियों की चित्रकारी दीवालों पर खचित है। बन्दनवारें वन्धी हैं। ध्वजा पताकाओं की भरमार है॥४४०॥

वहाँ महलों की जो पहरा देने वाली ललनाएँ हैं, वे अपनी सुन्दरता से अनन्त रति के मान मोचने वाली हैं। वे नृत्य संगीत कोकादिक समस्त कलाओं में कुशला हैं तथा श्रीजानकीजीवन जू को रसानन्द प्रदान करने वाली हैं॥४४१॥

उस कन्दुक चौक की यूथेश्वरी समस्त सद्गुणों की खान है। उनका नाम श्रीकन्दुक-कला-प्रवीण जी है। उन्होंने श्रीयुगलकिशोर जू को सुभग सिंहासन पर पधराकर षोड़शोपचार पूजन किया तथा अनेकों भाँति से लाड़ लड़ाया ॥ ४४२ ॥

रंग विरंग के रत्नों से रचित गेन्द खेलने वाले हाथ के डंटे हैं। जिन रंगों के डंटे हैं, उन्हीं रंगों के गेन्द भी ध्यान में देखियेगा ॥ ४४२ ॥

उपमित ललित उरोज युत, कंचुकि कंचन चित्र।
उद्दीपन शृंगार के, नट-नागर मन मित्र ॥४४४॥
अलिगन युत ललि लाल दोउ, खेलत कन्दुक खेल।
अमित चंचला घन सहित, करत सुपेलापेल ॥४४५॥
दपटत झपटत परसपर, लिपटत लेत छुड़ाय।
खैंचि चलावत लेत झुकि, अद्भुत लोल सुभाय ॥४४६॥
तानि अंग तिरछे ललित, भुज उठाइ मृदु मारि।
करति लाड़िली श्याम पर, जनु वशि मंत्र सुधारि ॥४४७॥
रघुवर सिय जू की दिशी, मृदुकर गेन्द चलाय।
दुरत सखिन के मध्य में, ललित सुलोल सुभाय ॥४४८॥
मची धूम अति चौक में, नूपुर चरण प्रहार।
दिशा पूरि झनकार सौं, वचन प्रचार अपार ॥४४९॥

शब्दार्थः--नट-नागर = नृत्य कला कुशल श्रीकोशलेशनन्दन जू। मनमित्र = मनभावन। सुपेलापेल = संघर्ष। दपटत=

ललकारते हैं। लोल = चंचल । दुरत = छिप जाते हैं। वचन प्रचार = प्रेमकलह ।

भावार्थः--स्वर्ण सूत्रों से सलमे सितारे कढ़ी हुई कंचुकी से कसे हुये नवल उरोज जैसे मनोरम प्रतीत होते हैं, उन्हीं की उपमा के योग्य ये गेन्द भी हैं। अतः ये गेन्द शृंगार रस के उद्दीपन होने के कारण, नटवर मणि कोशलकुमार जू के मनको प्रिय हो रहे हैं ॥ ४४४ ॥

श्रीललीलाल युगलकिशोर जू सखी वृन्दों के सहित गेन्द खेल रहे हैं। क्या मालूम पड़ता है? मानों असंख्य विजलियाँ मिलकर घनश्याम के साथ संघर्ष कर रही हैं ॥ ४४५ ॥

परस्पर में ललकारते हैं, एक दूसरे पर झपटते हैं, नायक नायिका लिपट जाते पुनः छुड़ाकर भाग जाते हैं। एक खींचकर जोर से गेन्द को चलाती हैं, तो दूसरे उसे झुक कर उठा लेते। बड़ा विचित्र चंचल स्वभाव वाले हैं॥ ४४६ ॥

श्रीलाड़िली जू ने अपने मनोहर अंगों को तानकर, तथा तिरछी गति से भुजा उठाकर, गेन्द को हल्के हाथ से मारकर, श्यामसुन्दर जू की ओर चलाया। उनका गेन्द चलाना क्या है, मानों वशीकरण मंत्र का प्रयोग है ॥ ४४७ ॥

श्रीरघुनन्दन जू भी हल्के हाथ से गेन्द श्रीलली जू की ओर फेककर, आप चट से सखियों के गोल में छिप गये, मनभावन बड़े चपल स्वभाव वाले हैं ॥ ४४८ ॥

उस काल में गेन्द चौक में गेन्द क्रीड़ा कालीन चरण

प्रहारों से नूपुर इतने झंकृत हुये कि दशो दिशाएँ झंकार से भर गईं। साथ-साथ पारस्परिक वाकयुद्ध की बौछार भी चल रही है॥ ४४६ ॥

※ लट्टू चौक ※

पुनि विलास रस राम सिय, लट्टू चौक सुआय।
अलिन सहित खेलत दोऊ, रह्यो रंग अति छाय॥४५०॥
चौक विचित्र विशाल तहँ, छौम सुछवि रहि छाय।
परदे जाल विचित्र अति, देखत मनहिं समाय॥४५१॥
लट्टू कला प्रवीन तहँ, यूथेश्वरी सुजानि।
लट्टू रंग अनेक के, देति सबनि कहँ आनि॥४५२॥
ललकि लटकि लट्टु फेंकि पुनि, झेलत करतल कंज।
जनु सरोज मधि बैठि कै, मधुप पियत मधु पुंज॥४५३॥
मेचक लट्टू घुमाइ कै, धरत सुकंचन थार।
सूर अंक सौरी मनू, करत लरकई चार॥४५४॥

शब्दार्थः--छौम=आकाश। समाय=डूब जाता है, मग्न हो जाता है। झेलत=लोकती हैं। मेचक=श्याम। सूर=सूर्य। अंक=गोद। सौरी=सूर पुत्र शनीचर। लटकि=लोचकर।

भावार्थः--गेन्द चौक से चलकर रस विलास के स्वरूप श्रीयुगल मनरञ्जन जू, लट्टू-चौक में पधारे। वहाँ सखियों

के सहित लट्टू नचाने वाला खेल करने लगे। खूब प्रेमानन्द छा गया ॥ ४५० ॥

वह लट्टू चौक अनेक चित्रामों से युक्त बड़ा विस्तृत है। उसकी शोभा आकाश को जगमगित कर रही है। चौक वाले महलों में परदे जाल झरोखे चित्राम युक्त बने हैं। शोभा देखते ही मन उसी में मगन हो जाता है ॥ ४५१ ॥

वहां की यूथेश्वरी का नाम श्रीलट्टू-कला-प्रवीणाजी हैं। वे सर्व कला कुशला हैं। भाँति-भाँति के रंग विरंगे लट्टू ला ला कर सबको दे रही हैं ॥ ४५२ ॥

खेलने वाली सब उत्साह में भरकर लोच के साथ लट्टू फेकती हैं, भूमि पर नाचते हुये लट्टू को उठाकर तलहत्थी पर नचाती हैं। उस समय ऐसा भान होता है, मानों कमल (लाल तलहत्थी) के मध्य में बैठकर भ्रमर (लट्टू) मधु पी रहा है (नाचता हुआ ऐसा लगता है)॥ ४५३ ॥

कभी-कभी श्याम रंग वाले लट्टू को नचाकर सोने के थाल में रख लेती हैं। उसपर उपमा उत्प्रेक्षित करते हुये कवि कहते हैं मानों सूर्य (स्वर्ण थाल) की गोद में बैठकर सूर्य्यपुत्र शनीचर (श्याम लट्टू) लड़कपन का खेल कर रहा है ॥ ४५४ ॥

घूमत लट्टु बहु रंग के, मनि सुचौक छवि देत।
जनु नवग्रह दुहुँ लोक के, निज निज रूप सों हेत॥४५५॥
फेंकत लट्टु महि गिरत सो, अनुपम उपमा देत।
जनु नव खग आकाश ते, आय भूमि सुख लेत ॥४५६॥

फेंकि झेलि करतल धरत, फूल छड़ी की नोक।
मदन वान पर नचत जनु,नव रस सुगति विशोक॥४५७॥
भमर लट्टू सब नागरी, सुफिरावति कर कंज।
मुकुलित कलिका कंज की,खोलत जनु अलि पुंज॥४५८॥

शब्दार्थः--हेत=प्रेम। मुकुलित=अर्ध विकशित। अलि पुंज=भ्रमर समूह।

भावार्थः--मणिमयी चौक-भूमि पर अनेक रंग के लट्टू नाच रहे हैं, सो बड़ी शोभा हो रही है। मानों दिव्यलोक और मायिक लोक दोनों जगहों के नवग्रह इकट्ठे होकर अपने-अपने स्वरूप से प्रेम कर रहे हों। यहाँ नाना रंग के लट्टू नौ रंग वाले नवग्रह हैं। साक्षात् लट्टू तो दिव्यदेश के नवग्रह हैं। मणिभूमि में पड़ी हुई लट्टू की परछाइं मायिक लोक के नवग्रह हैं। विम्व प्रतिविम्ब अपने-अपने रूप हैं।॥४५५॥

हाथ से लेकर नचाने के लिये भूमि पर जो लट्टू फेंका जाता है, उस पर विलक्षण उपमा फुरती है। मानों नये-नये पक्षी आकाश से उतरकर भूमि पर विचरने का सुखास्वादन कर रहे हैं॥४५६॥

भूमि पर लट्टू फेंककर पुनः तलहत्थी पर उठा लिया। तलहत्थी से फूल छड़ी की नोंक पर चढ़ा दिया। अब उन नोकोंपर लट्टू नाच रहे हैं। क्या मालूम पड़ता है काम बाण (पुष्प छड़ी) की नोंक पर श्रृंगार हास्यादि साहित्यिक नव रस (अनेक रंगों के लट्टू) शोक रहित होकर सुन्दर गति

लेते हुये नृत्य कर रहे हैं । यहां शृंगारादि रसों के भी अपने-अपने अलग-अलग श्यामादि रंग हैं। लट्टू भी अनेक रंगों के हैं। मायादेश के सभी रस दुख परिणामी होने से शोकान्वित रहते हैं। वही परमानन्दमय दिव्य देश में आकर चिन्ता रहित बन जाते हैं ॥ ४५७ ॥

जब सभी प्रवीण सखियाँ अपनी-अपनी तलहत्थियों पर लेकर लट्टू नचाती हैं, उस समय ऐसा लगता है, मानों अर्ध विकसित कमल कली (तलहत्थी) को पूर्ण रूप से खिलाने के निमित्त भ्रमर पुंज (लट्टू) गुंजार कर रहे हैं ॥४५८॥

* कौतुक चौक *

पुनि सो कौतुक चौक में, आय जानकी राम।
कौतुक–कला–प्रवीन तहँ, यूथेशा अनुपाम ॥४५९॥
सनमाने अलिगन सहित, अशन पान मुखवास।
अर्घ्यादिक विधिप्रथम करि, निज परिकर युत खास॥४६०
देखत पुनि कौतुक तहाँ, सब आचरज भुलाय।
छन छन प्रति अनुपम गती, सब कौतुक दरसाय ॥४६१॥
गोख झरोखे झालरें, कलश कंगूरे खंभ।
भीत भवन भीतर सकल, छन छन प्रति नव रंभ॥४६२॥
छन रचना सब अरुन रँग, छन सब पीत लिखाय।
छन सुनील रँग देखिये, छन सब पीत दिखाय ॥४६३॥

शब्दार्थः--असन=भोजन । मुखवास=इलायँची। निज परिकर=कौतुक चौक निवासिनी सखी बृन्द। रंभ=शोभा।

भावार्थः--लट्टू चौक से चलकर श्रीलड़ैती लाल जू कौतुक-चौक में पधारे। वहाँ की यूथेश्वरी श्रीकौतुक-कला-प्रवीणाजी हैं। आप रूप गुणों में अद्वितीया हैं ॥ ४५९ ॥

श्रीयूथेश्वरीजी ने अपने खाश सखी समाज के साथ मिलकर सर्व प्रथम श्रीयुगल प्राण संजीवन जू का पाद्य अर्घ्यादिक विधि से षोडशोपचार पूजन किया। तत्पश्चात् उनके साथ समागत सखियों के सहित, उन दोनों को भोजन कराकर, पान इलायँची दिया तथा सब प्रकार से आदर सत्कार किया ॥ ४६० ॥

पुनः वहाँ का कौतुक-प्रदर्शन होने लगा। वहाँ के तमाशे देखकर सब आश्चर्य के मारे आत्म-विस्मृत हो गईं। क्षण प्रतिक्षण अनुपम ढंग के सब कौतुक दीखते हैं ॥ ४६१ ॥

पहला कौतुक रंग परिवर्तन वाला हुआ। सब देखती क्या हैं कि उस कौतुकागार के यावत् गोखे झरोखे, कलश कंगूरे, खंभे दीवालें, महल का भीतरी भाग हैं, सब क्षण प्रतिक्षण नवीन-नवीन रंग बदल रहे हैं ॥ ४६२ ॥

क्षण मात्र में सभी वस्तुएँ लाल रंग की हो गईं। दूसरे क्षण में वे ही सब पीली दीखती हैं। तीसरे क्षण में सबों को नीली देखिये। तत्पश्चात् सब श्वेत रंग में निमज्जन कर रही हैं ॥ ४६३ ॥

छन भीतिन खंभन प्रती, दरसत अति अवकाश।
तामधि लीला देखिये, कौतुक परम प्रकाश ॥४६४॥
छन सुमहोदधि देखिये, तामधि जन्तु अपार।
कोउ सरल कोउ वाम वपु, कोउ यक हाथ हजार ॥४६५॥
कोउ सुकोस विस्तार वपु, कोउ योजन विस्तार।
कोउ दस कोउ सत द्विसत कोउ,कोउ विस्तार हजार॥४६६
लीलत उगलत परस्पर, लड़त जन्तु समकाय।
कोउ गन उच्च तरंग सँग,उड़त सु चपल सुभाय॥४६७॥
मुक्त-सुक्तिका मुक्त युत, भ्रमत मनो दरसाय।
भिन्न भिन्न वारी वरन, नव मनि सम सरसाय ॥४६८॥

शब्दार्थ:--अवकाश=खाली जगह। महोदधि=महासमुद्र। समकाय=बराबर आकार वाले। मुक्त-सुक्तिका=मोती उत्पन्न करने वाली सितुही। वारी वरन=जल का रंग।

भावार्थ:--क्षण ही मात्र में ऐसा दीख पड़ता है कि क्या खंभे,क्या दीवाल सबके बदले सर्वत्र सुविस्तृत खाली मैदान ही मैदान पड़े हैं। उन्हीं रिक्त मैदानों में परम प्रकाश छा गया तथा कई प्रकार की कौतुकमयी लीलाएं दीख पड़ने लगीं ॥ ४६४ ॥

दूसरे ही क्षण में वहाँ एक महासागर दिखाई पड़ने लगा। उसमें अनन्त जल जीव भरे हैं। कोई सीधा शरीर

वाला है, कोई टेढ़ा शरीर वाला है, कोई एक हाथ लम्बा है, कोई हजार हाथ लम्बा है ॥ ४६५ ॥

कोई तो कोश भर लम्बे शरीर वाला है, किसी का योजन पर्यन्त विस्तृत शरीर है, कोई दश योजन वाला, कोई सौ योजन वाला, कोई दो सौ योजन वाला तथा कोई हजार योजन विस्तृत शरीर वाला है ॥ ४६६ ॥

एक लम्बा जन्तु दूसरे छोटे को निगल जाता है, पुनः उगल भी देता। बराबर डौल वाले आपस में लड़ रहे हैं। किसी जाति के जीव ऊँची लहर के साथ-साथ ऊपर को उड़ते हैं, उनका स्वभाव चंचल है ॥ ४६७ ॥

मोती वाले सीप मोती से भरे हैं तथा अन्यान्य असंख्य मणी दीख पड़ती हैं। जिस रंग की मणि है, उसके आसपास वाला जल भी उसी रंग का भासित होता है। नौ रंग की मणि हैं तो नौ रंग का जल भी ॥ ४६८ ॥

बड़वानल प्रगटत कबहुँ, कबहुँ बलाहक लूमि।
भरत वारि आकाश तैं, छोड़ि काम जिमि भूमि ॥४६९॥
उरमि सुउच्च अकाश को, परसत पुनि महि आय।
करि प्रसार योजन लगी, पुनः उठत समथाय ॥४७०॥
विहरत महा भुजंग तट, कच्छप कठिन सुभाय।
तिन पर चढ़त भुजंग तेहि, अंग सकोचन भाय ॥४७१॥
जल-हय जल तैं निकसि कै, चपल सु इत उत हेरि।
विहरत यूथ अनेक पुनि, लेत भंग तेहि घेरि ॥४७२॥

एक दंड कौतुक यही, मनिमय भित्तिन माँझ।
पुनि सुखुत प्रगटहिं अपर, बजत चंग बहु झाँझ॥४७३॥

शब्दार्थः--वड़वानल = समुद्र के भीतर वाला अग्नि। वलाहक = वादल। लूमि = झुक कर। उरमि = तरंग। भुजंग = सर्प। भाय = भाता है, अच्छा लगता है। जल-हय = दरियाई घोड़ा। भंग = लहर।

भावार्थः--कभी तो समुद्र के भीतर से आग के फव्वारे निकल पड़ते। कभी देखिये तो वादल आकाश से उतर कर समुद्र से जल भर रहे हैं; पुनः स्थल पर जाकर जितना प्रयोजन है, उतना जल बरसा आते हैं॥ ४६९॥

ऊँची ऊँची तरंगें ऊपर उठकर आकाश को छू लेती हैं, पुनः घटकर स्थल की बराबरी में आ जाती हैं तथा योजन भर में फैल जाती हैं। फिर ऊपर को उठने लगती हैं॥ ४७०॥

समुद्र तट पर बड़े-बड़े सर्प एवं कड़ी पीठ वाले कछुए घूम रहे हैं। कभी सर्प कछुए की पीठ पर चढ़ जाता, तो कछुए को अपना अंग सिमट लेना रुचता है॥ ४७१॥

दरियाई घोड़े जल से बाहर निकलकर चंचलता पूर्वक इधर उधर देखकर झुंड के झुंड दौड़ने लगते हैं, पुनः उन्हें समुद्री लहर पकड़कर डुबो देती है॥ ४७२॥

मणिमयी दीवालों में २४ मिन्टों (एक दंड) तक यही कौतुक होता रहा। पुनः यह कौतुक तो छिप गया और दूसरा

कौतुक प्रगट हुआ। इस नवीन कौतुक में अनेक डफ झांझ बजने लगे॥ ४७३ ॥

प्रगटी कोटिन नायिका, पिचकारी कर कंज।
धुंधी छई गुलाल की, बरषि कुमकुमा पुंज ॥४७४॥
पुनि बहु पुरुष नवीन वय, मच्यो परस्पर वाद।
दपटत लिपटत झपटि कै, खेलत गत मरजाद ॥४७५॥
सो कौतुक आवृत भयो, पुनि प्रगट्यो बहु नाग।
प्रगट्यो सिंह अनेक तहँ, करत सुकुंभ-विभाग ॥४७६॥
भीतिन के अंतराल में, देख लाड़िली लाल।
विथरत वारन कुंभ तें, अमलक मुक्ता जाल ॥४७७॥
सो कौतुक भा दंड यक, पुनि भीतिन अँतराल।
बरसत मूसलधार घन, गरजत चपला चाल ॥ ४७८॥

शब्दार्थः—गत मरजाद=लोक लाज छोड़कर । आवृत=छिप गया । नाग=हाथी । कुंभ विभाग=मस्तक फाड़ना। विथरत=छितरा रहा है। वारन= हाथी। अमलक=सफेद, निर्मल । चाल=कौंध रही है।

भावार्थः—तत्पश्चात् असंख्य नायिकाएँ निकल पड़ीं। सबों के हाथों में पिचका हैं। उन्होंने इतना गुलाल उड़ाया कि आकाश में गुलाल का बादल सा छा गया। ढेर के ढेर कुमकुमों की बौछार होने लगी॥ ४७४ ॥

पुनः नवीन अवस्था वाले बहुत से नायक आ जुटे। दोनों पक्षों में वाद विवाद छिड़ गया । नायक नायिका एक

दूसरे को ललकारते हैं, झपटकर लिपट जाते तथा फाग खेलने में लोक-लाज को भी त्याग देते हैं ॥ ४७५ ॥

वह फाग विनोद वाला दृश्य छिप गया। उसके बाद बहुत से हाथी प्रगट हो गये। वहीं अनेक सिंह भी प्रगट हुये और हाथियों का मस्तक विदर्ण करने लगे ॥ ४७६ ॥

श्रीलली लाल जू दीवाल के अभ्यन्तर में ही क्या देख रहे हैं कि हाथी के मस्तक से निर्मल मोती के समूह गिर-गिर कर बिखर रहे हैं ॥ ४७७ ॥

वह कौतुक भी २४ मिनट तक ही हुआ। तत्पश्चात् दीवालों के अन्तराल में मूसलाधार वर्षा होने लगी। घटा घनघोर गर्जने लगी। बिजली कौंधने लगी ॥ ४७८ ॥

दंड एक में लुप्त सो, पुनि मनि खंभन मध्य।
प्रगटे रीछ अनेक सो, लरत न मरत अवध्य ॥४७९॥
छिन में भये अदृश्य सो, पुनि भीतिन अँतराल।
देखिय दर्पन न्याय बहु, उड़त विहंगम माल ॥४८०॥
पुनि छिन में सोइ भीत में, दरसत दरपन भाव।
अति विस्तार तरंगिनी, खेलति नागरि नाव ॥४८१॥
सो छवि छिन दरसत भई, प्रगट्यो अपरहि रंग।
चतुरंगी सेना अमित, मच्यो परस्पर जंग ॥४८२॥
हय गय रथ पदचरन पद, प्रहरित रज आकाश।
छुई छिप्यो रवि अरुन जिमि, रुधिर सुरि यां प्रकाश॥४८३॥

शब्दार्थः--लुप्त = छिपना। रीछ = भालू। अवध्य = जो

मारने से जल्दी न मरे । दर्पण न्याय=आईने की भाँति। तरंगिनी=नदी। जंग=युद्ध । प्रहरित=ठोकर लगने से।

भावार्थ:--एक दंड में वह दृश्य भी छिप गया। तब मणि खंभों में बहुत से भालू प्रगट हो गये। वे आपस में लड़ रहे हैं, पर मारे नहीं मरते ॥ ४७६ ॥

क्षण मात्र में वह दृश्य भी छिप गया। पुनः उन्हीं दीवालों में आइने की भांति प्रतिबिम्बित ऐसा दृश्य दीख पड़ा मानों बहुत से पक्षियों की पंक्ति उड़ रही हैं ॥ ४८० ॥

तत्पश्चात् उसी दीवाल में दर्पणवत प्रतिविम्बित क्या दीखता है कि एक खूब चौड़ी सी नदी है । उसमें प्रवीणाएँ नवारी खेल रही हैं ॥ ४८१ ॥

वह दृश्य तो क्षण मात्र ही दिखाई पड़ा । उसके बाद कोई दूसरा ही तमाशा प्रगट हुआ। असंख्य चतुरंगिणी सेना प्रगट हो गईं तथा उनमें आपस में युद्ध छिड़ गया ॥४८२॥

हाथी वाले रथ, घोड़े वाले रथ तथा पैदल चलने वाली सेना के चरण प्रहार से भूमि से इतनी धूल आकाश में उड़ आई कि सूर्य भी उसमें ढककर लाल दीखने लगे। मानों आकाश रक्तमय हो रहा है ॥ ४८३ ॥

लरत गिरत महि पुनि उठत, सिर बरजित शुभकाय।
कर असि धर घूमत पुनः, गिरत दूसरे घाय ॥४८४॥
रथी रथिन सो लरत पुनि, पादाती पादाति।
सादिन सो सादी लरत, आधोरन तिहि भाँति ॥४८५॥
चरमी सों चरमी लरत, वरमी वरमी पेखि।
सात्तिक सों सात्तिक लरत, धन्वी धनुकर देखि ॥४८६॥

असि हेतिक बहु परस्पर, जष्टिक जष्टिक चार।
ललकि लरत धरि परसुकर, पारश्वधिक विचार ॥४८७॥
भची सु अहो पुरुषिका, अहं पूर्विका वाद।
दीखत नहिं सुनि परत बहु,गज घन्टन कर नाद ॥४८८॥

शब्दार्थः--वरजित=रहित। पादाती=पैदल सेना। सादी=घुड़सवार। आधोरण=हाथी असवार। चर्मी - ढाल बान्धने वाले। वरमी=कवचवाले। साक्तिक=शक्तिधारी। असिहेतिक=तलवार वाले। जष्टिक=लठैत। पारश्वधिक= फरसा वाले। अहो पुरुषिका = मैं ही पुरुषार्थी हूं, ऐसा कहने वाले। अहं पूर्विका=घमंडी।

भावार्थः--बिना सिर के रुंड ही लड़ रहे हैं, भूमि पर गिरते, पुनः सम्हल कर उठ जाते हैं। हाथ में तलवार लेकर घूमते हैं। जब दूसरा बार प्रहार होता, तब गिर जाते हैं ॥ ४८४ ॥

रथी से रथी, पैदल से पैदल, घुड़सवार से घुड़सवार लड़ रहे हैं। उसी प्रकार गजारोही से गजारोही लड़ते हैं ॥ ४८५ ॥

ढाल वाले से ढाल वाले, कवच वाले से कवच वाले, शक्तिधारण करने वाले से शक्तिवाले तथा धनुधारी से धनुर्धारी हैं ॥ ४८६ ॥

दोनों पक्ष के तलवार वाले आपस में लड़ रहे हैं। लठैत से लठैत लड़ते हैं। फरसावाले से परसधर अपनी जोड़ी विचार कर ललकारते हुये लड़ते हैं ॥ ४८७ ॥

दोनों पक्ष वाले एक दूसरे से विवाद करते हुये कहते हैं कि तुमसे ज्यादा पुरुषार्थी हम हैं, तो दूसरा भी अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनता है। कहीं हाथी तो दिखाई पड़ता ही नहीं, केवल हाथी के बहुत घंटे सुन पड़ते हैं ॥ ४८८ ॥

घूमत कोटिन योगिनी, सद्य रुंड कर धार।
ललित विमानन अप्सरा, फिरत अकाश अपार ॥४८९॥
महाबीर गत प्रान सो, रमत स्वर्ग तिय संग।
देखत माहि मधि ते गिरे, कटि कटि अपने अंग ॥४९०॥
भरि भरि खप्पर योगिनी, पियत सद्य श्रोणीत।
गिद्ध गिरत आकाश तें, सद्य मांस पर प्रीत ॥४९१॥
लखि लीला यह लाड़िली, कर दरपन को न्याय।
भाग पैठि पिय अंक में, भोरी भीरु सुभाय ॥४९२॥
देखिय अब नृप नन्दिनी, लीला आनहि रंग।
मेरे मन अचरज बड़ो, प्रतीविम्ब बिनु अंग ॥४९३॥

शव्दार्थः--योगिनी=रण पिशाचिनी। सद्यरुंड= तुरत के कटे धड़। सद्य श्रोणीत=ताजा खून। सद्य मांस= हाल का कटा मांस। भीरु=डरपोक।

प्रसंगः--ऊपर तक वीर रस का दृश्य कहकर, आगे तीन दोहों में विभत्स रस का दृश्य वर्णित हो रहा है।

भावार्थः--असंख्य रण-पिशाचिनी हाथों में तुरत के कटे धड़ लेकर घूम रही हैं। युद्ध में वीर रस गति को प्राप्त होने वाले स्वर्ग सिधारते हैं। उन स्वर्ग अधिकारियों के साथ

रमण करने के उद्देश्य से अनंत अप्सराएँ सुन्दर विमानों पर बैठ आकाश में घूम रही हैं। जो योद्धा प्राण त्याग चुके हैं, वे स्वर्गीय अप्सराओं के साथ रम रहे हैं। पृथ्वी पर अपने अंगों को कट कट कर गिरे हुये देखते हैं ॥४८९,४९० ॥

योगिनियाँ मनुष्य की खोपड़ी में भर-भर कर ताजा खून पी रही हैं। आकाश से गिद्ध मड़रा रहे हैं, क्योंकि उन्हें ताजे मांस पर अधिक रुचि है ॥ ४९१ ॥

श्रीलली जू यह सब लीला इस भाँति देख रही हैं, जैसे अपने हाथ में रखे दर्पण में सारी चीजें दीख पड़ें। आप भोली भाली हैं, सहज ही में डर जाने का स्वभाव है। अतः इन्हें देखकर आप भागकर प्यारे की गोद में घुस गईं ॥ ४९२ ॥

श्रीप्राणनाथ जू कहते हैं "हे श्रीराजदुलारी जू, अब देखिये। अबकी बार दूसरे ही प्रकार का कौतुक है। मुझे तो बड़ा आश्चर्य है कि विम्ब तो हई नहीं, ये सब परछाईं कहाँ से पड़ रही हैं ! ४९३ ॥

कोटिन नागर नागरी, खेलत खेल अपार।
बजत अनेकन बाजने, नूपुर पद झंकार ॥४९४॥
तब सिय जू दृग खोलि कै, देख्यौ कौतुक भास।
भाव भरे अँग मोरि कै, नर्तति नागरी खास ॥४९५॥
भीतिन प्रति खंभन प्रती, नृत्य रंग दरसाय।
यहि विधि कौतुक अमितरँग, छिन २ प्रति दरसाय ॥४९६

पुनि नवीन कौतुक भयो, जिमि कुलाल को चक्र।
घूमत चौक सु छोम सब, कोउ समान कोउ वक्र ॥४९७॥
गिरत एक पर एक सब, हँसत ठठाय ठठाय।
उठन लगत पुनि गिरि परत, रहत पुनः समथाय॥४९८॥

शब्दार्थः---नागर=विदग्ध नायक। नागरी=चतुरी नायिका। खास=मुख्य। कुलाल=कुम्हार। चक्र=चाक। सुछोम=आकाश। समथाय=समभाव में स्थित।

भावार्थः--हे श्रीप्राणप्यारी जू, देखिये असंख्य नायक नायिकाएँ अनंत भाँति के खेल कौतुक कर रहे हैं। नाना वाद्य यंत्र बजते हैं, नूपुरों की झंकार हो रही है ॥४९४॥

तब श्रीप्रिया जू ने नयन उघार कर देखा। देखती क्या हैं कि रास कौतुक ठना है। प्रमुख नायिकाएँ अंगों को मोड़-मोड़ कर नाना भाव दरशाती हुई नाच रही हैं ॥ ४९५ ॥

दीवालों में, खंभों में चाहे जहाँ देखो नृत्य का सामा बन्धा है। इसी प्रकार अनंत भाँति के कौतुक क्षण-क्षण में हो रहे हैं ॥ ४९६ ॥

तत्पश्चात् एक नया तमाशा यह दीख पड़ा कि क्या नीचे वाले चौक-प्रांगण, क्या आकाश, सबके सब कुम्हार के चाक की भांति घूम रहे हैं। कोई तो सीधा नाचता है, कोई तिरछे भाव से ॥ ४९७ ॥

एक पर दूसरे गिरते हैं, ठहाका मारकर हँस रहे हैं।

उठने लगते तो फिरसे घूम कर गिर पड़ते हैं। फिर समभाव में स्थित रह जाते हैं ॥ ४६८ ॥

❋ विश्राम चौक ❋

यहि विधि कौतुक चौक में,लखि कौतुक ललिलाल।
पुनि विश्राम सु चौक में, आये युत बहु बाल ॥४६६॥
यूथेशा सो चौक की, विश्रामदा सुजानि।
अति आदर परिकर सहित,सकल भाँति सन्मानि॥५००॥
अति विचित्र रचना तहाँ, लखि हरषे सिय लाल।
मध्य चौक अस्तरन पर, बैठे युत अलि माल ॥५०१॥
पान चबावत परस्पर, करत सु हँसि हँसि वाद।
रचि रचि चतुर प्रहेलिका, यथा सु रस मरजाद ॥५०२॥
कहत लाल सुनु लाड़िली, हम देखत तुम नाहिं।
युग सरोज यक चन्द्रमा, रवि मंडल के माहिं ॥५०३॥
तिहि उत्तर दै लाल को, पुनि पूछति सिय बाल।
चार चंद अहि जलज हम, एक ठौर लखि लाल॥५०४॥

शब्दार्थ:--अस्तरन = बिछावन, गलीचा। प्रहेलिका = पहेली, बुझौअल। सुरस = शृंगार रस।

भावार्थ:-उपर्युक्त रीति से कौतुक चौक के तमाशे देखकर, श्रीलली लाल जू सभी नवीनवय वाली नायिकाओं से परिवारित होकर विश्राम चौक में पधारे ॥ ४६६ ॥

विश्राम चौक की परम प्रवीण यूथेश्वरी श्रीविश्राम-

दासजी हैं। अपने विश्राम चौक निवासिनी सखी समाज के सहित युगलकिशोर जू को मंगल थार, मंगल कलश पूर्वक अगुवानी करके ले आईं। सिंहासन पर पधराकर षोड़श भांति पूजन किया और लाड़ प्यार पूर्वक अतिशय आदर सत्कार किया ॥ ५०० ॥

विश्राम चौक की नाना चित्रामों से युक्त आश्चर्यमयी रचना को देख श्रीजानकीजीवन जू बड़े प्रसन्न हुये। चौक के बीच बिछे गलीचे मशनद पर विराजमान हुये। चारो ओर सखीगण मालाकार घेरकर बैठ गईं ॥ ५०१ ॥

दोनों प्राणेश पान चर्वण कर रहे हैं। हँस-हँस कर प्रेम पूर्ण मधुर संलाप हो रहा है। शृंगार रस की मर्यादा के अनुरूप वाग्र विलास पूर्ण पहेली रच-रच कर एक दूसरे को पूछ रहे हैं कि समझे क्या है ? ५०२ ॥

श्रीलाल जू ने पूछा-- हे श्रीलड़ैती जू, मैं तो देख रहा हूं, पर आपको नहीं दीखता होगा। सूर्य मंडल के बीच में एक चन्द्रमा और दो कमल भी हैं। (श्रीलली जू ने कहा-हाँ हाँ, आप मेरे दीप्तिमान् मुख मंडल को सूर्य, मेरे ललाट को अर्द्ध चन्द्र तथा नयनों को दो कमल बताते हैं,मैं क्यों नहीं जानूंगी ? ॥ ५०३ ॥

श्रीसियाकिशोरीजू उस प्रश्न का उपर्युक्त उत्तर देकर श्रीलाल जू से पूछती हैं। हे लाल जू, मैं चार चन्द्रमा, नाग और कमल को एक साथ देख रही हूं। बताइये क्या है ? श्रीलाल जू से शीघ्र उत्तर न फुरते देखकर, श्रीलली जू, समझाने

लगीं-प्यारे आपके सम्पूर्ण मुख मंडल पूनो के चन्द्र हैं, ललाट अर्द्ध चन्द्र हैं, दोनों कपोल भी दो चन्द्रवत हैं। ।कपोल पर छिटकी लटें नाग हैं और नयन कमल हैं। बताइये है कि नहीं ? श्रीलालजू को मानना पड़ा, सत्य है ॥ ५०४ ॥

हम पूछै कहु लाड़िली, है तुम्हरेई पास ।
चार कमल दल बीस पर, बीसहु चन्द निवास ॥५०५॥
श्याम श्वेत अँग वसन सजि,शशि मंडल के माँहि।
नटत नागरी युगल पिय, देखत हौ कं नाहिं ॥५०६॥
हम पूछहि कहु लाड़िली, बसे न महि आकास।
दिन में रहै उदास अति,निशि आनन्द निवास ॥५०७॥
घर घर प्रति घूमत फिरै, पद बिनु बिनुहो हाथ।
करै लड़ाई परस्पर, कहु प्रवीन मम नाथ ॥५०८॥
दै उत्तर बूझत पिया, कहौ नरेश कुमारि।
एक पुरुष के अंग में, खेलत षट दश नारि ॥५०९॥

शब्दार्थः--षट दश = ६ + १० = १६ षोडश शृंगार।

भावार्थः--श्रीप्राणप्यारे जू ने पूछा-हे लाड़िली जू, मैं जो कुछ पूछता हूं, वह सामान तो आपही के पास है, बताइयेगा क्या समझा ? चार कमल हैं, उनमें बीस दल अर्थात् पंखुरी हैं और बीसो दलों पर बीस चन्द्रमा निवास करते हैं। श्रीललीजू ने कहा-दोनों चरण, दोनों हाथ को आप चार कमल बताते हैं, बीस उँगलियों को बीस कमल दल तथा

बीस नखों को बीस चन्द्रमा कह रहे हैं। मैं क्यों न समझूं ? ॥ ५०५ ॥

श्रीललीजू पहेली बुझा रही हैं। हे प्राण प्यारे जू, दो नर्त्तकी श्याम एवं शुक्ल वस्त्र पहन कर चन्द्र मंडल में नाच रही हैं। आप देखते हैं कि नहीं ? प्यारे ने कहा दोनों आँख नर्त्तकी हैं, श्याम सफेद पुतली उनके बस्त्र हैं, चितवनि की चंचलता ही नृत्य करना है ॥ ५०६ ॥

श्रीलालजू ने कहा--हे लाड़िलीजू, मैं पूछता हूं,इसका उत्तर आप अवश्य देवें। एक व्यक्ति विशेष है, वह न भूमि में रहता है, न आकाश में। दिनभर उसे बड़ी उदासी बनी रहती है। रात में तो आनन्द का भवन ही बन जाता है वह श्रीललीजू समझ तो गईं पर वे हँसकर रह गईं। स्त्री-सुलभ लज्जा वश उत्तर प्रगट नहीं दे सकीं ॥ ५०७ ॥

उत्तर में उसी प्रश्न का जोड़ा बुझौल पूछा--हे मेरे प्राण प्रीतमजू, अब आप बड़े चतुर हैं, तो समझिये क्या वस्तु है ? वह विना हाथ ही पैर के घर-घर में घूमता फिरता है। जहाँ जाता वहीं आपस में संग्राम छेड़ देता--इन दोनों प्रश्नों के उत्तर स्वरूप नायिका नायक के जिन अंगों के प्रति लक्ष्य कराया गया है, उसे चतुर पाठक स्वयं समझ लेंगे ॥ ५०८ ॥

पुरुष को संकोच कम होता है, अतः प्यारे ने तो उपर्युक्त प्रश्न का स्पष्ट उत्तर दिया और पूछा हे राजकुमारीजू,

बताइये एक पुरुष के अंगों में १६ नायिकाएँ रमण करती हैं। क्या है? श्रीप्रियाजी ने कहा--षोड़श शृंगार है ॥५०९॥

❋ जल क्रीड़ा कुञ्ज ❋

यहि विधि वचन विलास करि, पुनि सब सखियन साथ।
वारि सुकेलिन कुंज को, आये सिय रघुनाथ ॥५१०॥
चहुँ दिशि मणिमय धाम वर, मध्य पुष्प बहु चौक।
रंग रंग के भिन्न सब, जनु वसन्त बहु ओक ॥५११॥
आल-वाल कंचन रचित, खचित मनी बहु रंग।
नाचत हंस मयूर शुक, निरखि छाँह निज अंग ॥५१२॥
ताके मध्य तड़ाग वर, अति विशाल बहु घाट।
मनि चित्रित रचना सकल, लीला नटवर नाट ॥५१३॥
फूले सुभग सरोज बहु, श्याम पीत सित लाल।
रंजित अंग पराग सों, गुंजत मधुव्रत माल ॥५१४॥

शब्दार्थः--वारि सुकेलिन = जल क्रीड़ा। ओक = घर। आलवाल = क्यारी। नाट = नृत्य। मधुव्रत = भ्रमर।

भावार्थः- विश्राम चौक में पहेली रचना पूर्वक वचन विलास द्वारा पारस्परिक रसानन्द का आस्वादन कर, श्रीयुगल नवल ललन जू समस्त सखी परिकरों के सहित जल क्रीड़ा कुंज में पधारे ॥ ५१० ॥

इस कुंज के चारो ओर आवरण स्वरूप उत्तम मणिमय कोट महल बने हैं। बीच के अवकाश में बहुत से पुष्प

चौक हैं। सब चौक विभिन्न रंगों के पुष्प वाले हैं। मालूम पड़ता है ये बसंत के निवास गृह हों ॥ ५११ ॥

प्रत्येक पुष्प-चौक की क्यारी स्वर्ण रचित हैं, उनमें नाना रंग की मणियाँ जटित हैं। उन मणियों में अपना-अपना प्रतिबिम्ब देख-देख कर हंस, मयूर, शुकादि पक्षी हर्षातिरेक से नाच रहे हैं ॥ ५१२ ॥

सभी पुष्प चौकों के मध्य भाग में एक परमोत्तम सरोवर है। उसमें सुविस्तृत बहुत से घाटें बँधे हैं। घाटों की सीढ़ियों में नटवर रघुबर जू के नृत्य लीला के चित्राम मणियों से खचित हैं ॥ ५१३ ॥

सरोवर में श्याम, पीले, उज्जले, लाल रंग के रमणीय कमल खिले हैं। उन कमलों के रंग बिरंगे पराग से रँगे हुये अंग वाले भ्रमर भुंड गुंजार कर रहे हैं ॥ ५१४ ॥

राजहंस केली करत, चुगत सुक्तिका मुक्त।
क्रीड़त सारस लच्छमणा, प्रीति परस्पर युक्त ॥५१५॥
वारिवि कूजत वारि मधि, ललित सुलसत तरंग।
तिनहिं परसि मारुत बहत,सुमन सुरज सुख अंग ॥५१६॥
सुनतहिं सियपिय आगमन,सजि निज सकलसमाज।
आईं कुंज अधीश्वरी, पूजि परम सुख साज ॥५१७॥
पुनि ललि लालन अलिन सह,करन लगे जल केलि।
कर गहि कूदत परस्पर, करत सुपेला पेलि ॥५१८॥

दौरि भजत कोउ छुवत तेहि, दौरि सुजल के माहिं।
कोउ खड़ी मनि घाट पर,खैंचत गहि तेहि बाहि॥५१६॥

शब्दार्थः—सुत्तिका= मुक्त सीप के मोती । लक्ष्मणा= सारस पत्नी। बारि वि=जलपक्षी। भजत=भाग जाती हैं।

भावार्थः -राजहंस के जोड़े परस्पर में क्रीड़ा करते हैं तथा सीप के मोती चुँग रहे हैं। उसी प्रकार सारस तथा इसकी पत्नी भी पस्पर में प्रीति पूर्वक केलि करते हैं॥५१५॥

जल में अनेकों जलपक्षी कलख कर रहे हैं। लहरें बड़ी सुन्दर तरंगायमान हो रही हैं। उन लहरों को छू उनसे शीतलता लेकर तथा सुगन्धित पुष्प परागों को बहन करते हुये अंग सुखदायक पवन मन्द-मन्द बह रहा है॥५१६॥

उस जल-क्रीड़ा-कुंज की कुंजेश्वरीजी ने जैसे ही श्रीजानकी रमण जू का शुभागमन का सम्वाद सुना, झट अपनी कुंज निवासिनी सखियों का समाज सज, उनकी स्वावत पूर्वक अगवानी करके भीतर कुंज में सादर लिवा गईं तथा परम सुखद पूजनोंपचार से विधि पूर्वक लाड़ लड़ाते हुये पूजा की॥५१७॥

तत्पश्चात् श्रीलली लाल जू समस्त सखियों के सहित उपर्युक्त सरोवर में उतर कर जल क्रीड़ा करने लगे। श्रीलालजू नायिका-नायिका प्रति अमित रूप से परस्पर करकंज में करकंज पकड़ कर जल में कूदते हैं तया परस्पर में धमक्क धमक्का हो रहा है॥५१८॥

कोई नायिका जल में तैरकर भागी जा रही है, आप उसके पीछे दौड़ रहे हैं तथा लपक कर छू लेते हैं। कोई मणि-मय घाट पर खड़ी है तथा श्रीलाड़िले जू उसकी भुजा पकड़कर जल में घसीटे जाते हैं ॥ ५१६ ॥

बहु कूदत अट्टन चढ़ी, थाह लेत जल माहि।
कोउ बोरत गंभीर जल, पकरि पकरि दोउ बाहिं ॥५२०॥
कोउ छींटत जल परस्पर, डूबि सु खैंचत पाँव।
खेलि कला पुनि नागरी, लेत आपनो दाँव ॥५२१॥
लरत परस्पर वारि मधि, करि कमलन को मार।
यहिविधि अलिगन सलिलमधि, कौतुक करति अपार ५२२
क्रीड़ा कन्दित वारि का, घोष रह्यो दिशि छाय।
जनु सुर असुर पयोधि को, मथो दूसरे दाय ॥५२३॥
जल क्रीड़ा करि लाल सिय, नव अंशुक अँग साजि।
बैठि सुभग सुखपाल में, चले दुंदुभी बाजि ॥५२४॥

शब्दार्थः--कन्दित=मंथित। घोष=ध्वनि। दाय=दफे। अंशुक=वस्त्र।

भावार्थः- बहुत सी नायिकाएँ सरोवर तट वाले बंगले की अट्टालिका पर चढ़कर वहीं से जल में कूद पड़ती हैं तथा जल में सीधे डूब कर थाह लेती हैं कि कितना जल है ? किसी को आप लाल जू दोनों हाथ पकड़ कर जल में गोंत रहे हैं ॥ ५२० ॥

कोई-कोई अंजलियों में जल भरकर एक दूसरे पर जल

उलीचती है। कोई जल में डूबे डूबे दूसरी के पास आकर उसके चरण पकड़ जल में खैंच रही है। वह चतुरी उससे अपना बदला चुकाने की अन्य युक्ति निकाल लेती है ॥५२१॥

श्रीप्रिया सखियों और प्यारे सखियों के दो विभाग बन गये। दोनों परस्पर में विनोदमय लड़ाई करने लगे। उनमें कमलों की मार दोनों ओर से होने लगी। एवं प्रकार उस जल में अनेक प्रकार के कौतुक होने लगे॥ ५२२ ॥

जल क्रीड़ा द्वारा मथित जल की ध्वनि दशो दिशाओं में फैल गई। मानों देवता दैत्य मिलकर दूसरे दफे समुद्र मन्थन करने लगे हों ॥ ५२३ ॥

इस प्रकार जल क्रीड़ा विसर्जन कर श्रीलली लाल जू सरोवर तट पर आकर नवीन वस्त्र अंगों में धारण करते हैं। सुखपाल पर विराजमान होकर उपने पथ्य चौकके लिये चल पड़े। नगारे बजने लगे ॥ ५२४ ॥

❁ उपने पथ्य चौक ❁

उपने पथ्य सुचौक में, पुनि आये प्रिय लाल।
मनि आसन बैठे दोऊ, चहुँ दिशि वनिता माल ॥५२५॥
अलंक्रिया कुशला तहाँ, यूथेशा सुखदानि।
भूषन वसन सिंगार विधि, धर्यौ चौकमधि आनि॥५२६॥
अलि प्रवीन सियलाल अँग, भूषन वसन सुधारि।
करति आरती प्रेम निधि, अष्ट सुदीप सँवारि ॥५२७॥

बहुतक बाजत बाजने, जय जय शब्द प्रचार।
वरषत कुसुम सुमाल बहु, अतर सुगन्ध फुहार ॥५२८॥
तृन तोरति लखि युगल छवि, मन आनन्द न मात।
वारति कोटिन मदन रति, निरखि २ मृदु गात ॥५२६॥

शब्दार्थः--उपनेपथ्य = शृंगार । वनिता = ललना । अलंक्रिया - शृंगार कार्य । प्रवीण - चतुरी । प्रेमनिधि = प्रेम के सिन्धु युगल ललन जू। मात = अँटता है।

भावार्थः--जल क्रीड़ा कुंज से चलकर श्रीयुगलकिशोर जू शृंगार चौक में पधारे। दोनों प्रेमास्पद जू तो मणिमय सिंहासन पर विराजमान हुये तथा चारो ओर से ललनाओं की मालाकार पंक्ति घेर करके बैठ गईं ॥ ५२५ ॥

वहां की यूथेश्वरी श्रीअलंक्रिया-कुशलाजी हैं। आप सबों के लिये सुखदायिनी हैं। अलंकार, वस्त्र तथा शृंगार की सारी सामग्रियाँ लाकर चौक के बीच में रख दीं ॥५२६॥

शृंगार करने में कुशला सखियों ने श्रीयुगल मनभावन जू के मनोहर अंगों में वस्त्रालंकार से सजाकर उन प्रेम सिन्धु युगल मन रंजन जू की आरती उतारी। आरती में आठ बत्तियाँ युगल भावानुकूल सम्हाल कर सजाईं ॥ ५२७ ॥

आरती काल में बहुत प्रकार के बाजे बज रहे हैं। जय जय कार की ध्वनि हो रही है। अनेक पुष्प मालाओं की वर्षा हो रही है तथा इत्र सुगन्धों के फुहारें छुट रही हैं ॥ ५२८ ॥

सखियाँ दोनों की मनोहर छवि अवलोकन कर नजर लगाने के भय से तृण तोड़ती हैं। दोनों के सुकुमार अंगों की रमणीय शोभा देखकर, उन पर अनंत कामरति को न्योछावर कर रही हैं ॥ ५२६ ॥

* उप भोजन कुञ्ज *

पुनि सखियन युत लाल सिय, बैठि सुखद सुखपाल।
उप भोजन सुनिकुञ्ज को, आये युत अलि माल ॥५३०॥
ललित सुछवि सो चौक की, गोपुर चारि प्रकास।
अमित अलिन गन सहित तहँ, यूथेश्वरी निवास ॥५३१॥
अति विशाल कोमल कलित, कंचन सूत्र विचित्र।
बिछे विशाल सुचौक मधि, आसन परम पवित्र ॥५३२॥
बैठि तहाँ अलि मंडली, मध्य लसत सिय लाल।
परम प्रकाशित कौमुदी, पिय प्यारी सुख जाल ॥५३३॥

शब्दार्थः--उपभोजन = व्यारू माल = समूह। गोपुर = बाहरी फाटक। कंचन सूत्र = सोने के तार। कौमुही = चान्दनी।

भावार्थः--तत्पश्चात् श्रीलली लाल जू सुखपाल नामक सुख दायिका सवारी पर विराजमान होकर, सखी समाज सहित व्यारू कुंज में पधारे ॥ ५३० ॥

उस व्यारू कुंज वाले चौक की शोभा बड़ी मनोरम है। चारो तरफ चार प्रधान वहिर्द्वार हैं। मणि जटित होने से बड़े प्रकाशमान हैं। यहाँ व्यारू कुंज की यूथेश्वरी जू अपनी अनुचरी सखियों के असंख्य समाज सहित यहाँ रहती हैं ॥५३१॥

उससे सुविस्तृत चौक में रेशमी गिलम गलीचे बिछे हैं। ये बड़े गुलगुले तथा मुलायम हैं और उन पर सोने के तार से कलावत्तू कढ़े हैं ये बिछावन अतिशय पावन हैं ॥ ५३२ ॥

उस आसन पर सखियों का समाज चारो ओर से घेर कर बैठा है। बीच में श्रीलड़ैती लाल जू सुशोभित हो रहे हैं। शरद पूनों का यह महारास वर्णित है। अतः उस रात्रि में चान्दनी की खूब उजाली फैल रही है । महारास के लिये उद्दीपन होने के कारण, यह सारा साज समाज श्रीप्रिया-प्रियतम जू के मन को फँसाने वाला सुख का जाल है ॥५३३॥

यूथेश्वरि परिकर सहित,भरि भरि सित मनि थार।
खीर परोसति खाँड़ युत, विंजन अमित अपार ॥५३४॥
जेंवत सहित विलास सब, परुसत सहित विलास।
पिय चित चोरति नागरी, युत कटाक्ष मृदु हास ॥५३५॥
अति सुगन्ध शीतल मधुर, सुधा सुकंचन झारि।
भरि भरि देति सुनागरी, कनक कटोरन धारि ॥५३६॥
गन स्वामिनि सिय लाल को,प्रीति सहित अचवाइ।
बहु सुगन्ध युत वीटिका, देति सु सुघर बनाइ ॥५३७॥
अतर घ्रान करवाइ पुनि, सिंहासन बैठारि।
करति आरती नागरी, निरखति तन धन वारि ॥५३८॥

शब्दार्थ:--सित = उज्ज्वल । खाँड़ = शक्कर । सुधा = जल। गनस्वामिनि = यूथेश्वरी। वीटिका = पान का बीरा।

सुघर = प्रवीण । घ्रान कराना = सुँघाना । वारि = न्योछावर करके ॥

भावार्थ:--व्यारू कुंज की यूथेश्वरी जी अपनी अनुचरियों के संयुक्त व्यारू फेर रही हैं। उज्ज्वल मणि के थालों में सज सजकर चीनी मिश्रत तस्मई तथा असंख्य प्रकार के व्यंजन परोसती हैं। (शरद पूनों में उज्ज्वल भोग राग की प्रधानता है ॥ ५३४ ॥

श्रीयुगल मनहरण जू के साथ समागत सखियाँ तथा दोनों मन भावन जू हास विलास पूर्वक भोजन कर रहे हैं। परोसने वाली सखियाँ भी हास विनोद पूर्वक ही अपनी सेवा कर रही हैं। कोककला-कुशला नवीना नायिकाएँ तिरछी चितवनि एवं मधुर मुसुकान पूर्वक छैल छबीले रास विहारी जू के चित्त चुराये लेती हैं ॥ ५३५ ॥

सोने की झारियों से अमृत स्वाद सकुचावन, सुगन्ध मिश्रित, शीतल सुस्वाद सरयू जल लेकर; स्वर्ण कटोरों में भर भर कर पीने के लिये प्रदान कर रही हैं ॥ ५३६ ॥

श्रीयूथेश्वरी जू ने श्रीलली लाल जू को स्वयं अपने करकंज से लाड़ प्यार पूर्वक आचमन कराया। तत्पश्चात् उन प्रवीणा ने अनेक प्रकार के खुशबूदार मसाले डालकर पान का वीरा बनाया पुनः श्रीमुखों में अर्पण कर रही हैं ॥ ५३७ ॥

तत्पश्चात् सुभग सिंहासन पर पधरा कर,इत्र सुंघाया।

आरती उतारती हैं एवं दोनों की मन मोहिनी झाँकी तन धन निछावर पूर्वक अवलोकन करती हैं ॥ ५३८ ॥

* शयन कुञ्ज *

रास विहारी राम सिय, बैठि सुभग सुखपाल।
आये सैन निकुञ्ज को, संग अमित अलिमाल ॥५३९॥
अलसाने दृग अरुन छवि, उपमित साँझ सरोज।
अंशन भुज दिय परस्पर, परम प्रीति के मौज ॥५४०॥
अर्घ्यादिक विधि करि प्रथम, कुंजेशा सुखधाम।
करति आरती सैन की, छवि निरखति अभिराम ॥५४१॥
सैन विदा दै सखिन को,सुख निधि लाड़िलिलाल।
गवने निज सुख सैन गृह, संग मंजरी माल ॥५४२॥
चहुँ दिशि मनिमय महल तहँ,मध्य सुकुंज विशाल।
पद्मराग खंभावली, गज मुक्ता को जाल ॥५४३॥

शब्दार्थः-सरोज=कमल। मौज=आनन्द। अभिराम= आनन्द दायिनी। मंजरी= अष्टवर्षीया मनोरमाएँ। पद्मराग= लाल मणि, माणिक्य।

भावार्थः--रासानन्द के भोक्ता श्रीयुगल रसिया जू मनोहर सुखपाल में विरामान होकर शयन कुंज में पधारे। आप के साथ-साथ असंख्य सखियों के यूथ भी आये ॥ ५३९ ॥

विशेष रात्रि बीतन के कारण तथा रास श्रमित होने से

बनीं दे विशाल नयन लाल शोभा से सम्पन्न हैं। सन्ध्याकालीन अधमुँदे कमल की उपमा नयनों के प्रति फब रही है। दोनों परस्पर में गलबहियाँ दिये हैं। निरतिशय प्रेमानन्द में लम्पट हो रहे हैं ॥ ५४० ॥

श्रीयुगल ललन जू को सब भाँति से सुख देने वाली कुंजेश्वरीजी ने दोनों के पधारते ही अर्घ्यादि विधि से षोडश भाँति पूजन किया। तत्पश्चात् शयन आरती उतारती हैं। साथ-साथ आनन्द दायिनी झाँकी भी झाँकती जाती है ॥ ५४१ ॥

परम सुख के सिन्धु लली लाल जू ने समागत सखियों को अपने-अपने कुंजों में जाकर शयन करने की आज्ञा देकर उन्हें विदा किया। पुनः अपने कामसुख बर्द्धक शयन महल में पधारे आपके साथ यहाँ केवल अष्ट वर्षीया मनोरमाओं का समाज है ॥ ५४२ ॥

शयन कुंज की रचना बताते हुये कहते हैं, कि यहाँ चारो ओर तो मणिमय आवरण महल बने हैं। बीच में सुविस्तृत शयन कुंज है। इसमें मणिमय खंभावली बनी है तथा दो-दो खंभों के बीच गजमुक्ता की मेहराबदार जाली बनी है ॥ ५४३ ॥

विविध रंग की चाँदनी, परदे बने विचित्र।
बिछे बिछौना मखमली, उदय चित्र शशि मित्र ॥५४४॥

लच्छे लटकत ललित अति, तहँ कंचन पर्यंक।
अति कोमल पयफेन सम, बिछे वसन तेहि अंक ॥५४५॥
कियो सैन तहँ लाल प्रिय, सेवा सुख अलि लेत।
रसिक मंजरी सुघर अति, युग पद लाड़ सुहेत ॥५४६॥
मदन यंत्र बाजत मधुर, मधुर मधुर सुर गाय।
सुनत सुनत प्रियलाल कों, दम्पति नींद रहि छाय ॥५४७॥
कियों अलीगन सैन सब, निज निज सुखद निवास।
बहु अलि छाई छोम पर, निरखति निशा प्रकास ॥५४८॥

शब्दार्थः—शशि = चन्द्रमा। मित्र = सूर्य। अंक = मध्य। सुहेत = अतिशय लाड़ पूर्वक। छोम = छत।

भावार्थः—शयन महल की छत में भीतर से नाना रंगों के चन्दोवे टंगे हैं। अनेक प्रकार के जड़ीदार चित्राम से युक्त परदे द्वारों पर पड़े हैं। फर्श पर मखमल में मिलस गलीचे बिछे हैं। आसमानी रंगों के चँदोवे में जो चन्द्र सूर्य के चित्र बने हैं, उन्हें देखकर ऐसा भान होता है, मानों साक्षात् चन्द्र सूर्य आकाश में उगे हों ॥ ५४४ ॥

चँदोवों में चारों तरफ सुन्दर लच्छे लटक रहे हैं। ऐसे मनोरम महल में स्वर्ण का पलंग बिछा है। उसके बीच दूध फेन के समान सफेद और मुलायम वस्त्र का तोशकादि बिछावन बिछे हैं॥ ५४५॥

श्रीलड़ैती मनमोहन जू उस पर्यंक पर शयन सुख को प्राप्त हुये। सखियाँ चरण पलोटने का मजा ले रही हैं।

श्री रसिकजी नागरी एक अति चतुरी मंजरी सखी हैं। वह श्रीयुगल लाड़िले जू के दोनों पद कंज बड़े दुलार से पलोट रही है। (यह सखी बड़ी हुशियार है। देखिये न, ऐकान्तिक विलास में व्यक्त यौवना मुग्धा तथा चरण पलोटने समय मंजरी बन जाती हैं आप भी ऐसी ही चतुरी बन जाना।) ॥ ५४६ ॥

मदन यंत्र नामक बाजा मधुर ध्वनि से बजने लगा। मधुर स्वर से मदन मंत्र वत छन्द प्रबन्ध गाये जा रहे हैं। सुनते-सुनते युगल रसिकों को नयनों में नींद दस गई ॥५४७॥

सखियाँ भी अपने २ सुख बर्द्धक कुंज में आकर सो गईं। बहुत सी सखियाँ छत पर विराजमान होकर रात्रि की चन्द्र घटा वाली शोभा अवलोकन करती हैं॥ ५४८॥

इति श्रीमज्जनकराजकिशोरीशरण विरचितायां श्रीसीताराम सिद्धान्तानन्य रस तरङ्गिण्यां श्रीसीताराम महारासोत्सव विधान वर्णनो नाम नवमस्तरंगः ॥



❀ दशम तरङ्ग ❀

❀ सातवाँ शुकावरण, त्योहारक चौक ❀

रचित हरित मनिमय ललित, उच्च सप्तमावरन ।
कनक कँगूरन पर लसत, कीर माल मन हरन ॥ १ ॥
पुनि सप्तम अवकाश में, मध्य चौक वर चार ।
चतुर सुभग उपचौक तहँ, लिलाचार त्योहार ॥ २ ॥
चित्र भानु दिशि चौक तहँ, सुभग दसहरा साज ।
नैऋत आसा चौक में, दीपक दान समाज ॥ ३ ॥
मरुत सुआसा चौक तहँ, फागुन को रस रंग ।
पुनि इशान दिशि चौक में, जेष्ठ दसहरा संग ॥ ४ ॥
सो चहुँ लीला चौक में, मंडप मनिमय सोह ।
अति विचित्र रचना सकल, लखि विरंचि मनमोह॥ ५ ॥

शब्दार्थः—कीरमाल=सुग्गों की पंक्ति । लिलाचार (लीला)=वर्षोत्सव की लीलाएँ । चित्र भानु=अग्नि। मरुत सुआसा=वायव्य कोण ।

भावार्थः—हरे रंग की मणियों के बने हुये सातवें आवरण के कोट महल बड़े सुन्दर तथा नौ खंड ऊँचे हैं। ऊपर सोने के कंगूरों पर लाल सुग्गों की मनोहर पंक्ति सोह रही हैं। अतः इसकी शुकावरण संज्ञा है॥ १ ॥

इस सातवें आवरण के अन्तराल के बीच में चारो तरफ चार प्रधान चौक हैं। चारो कोणों में उत्तमोत्तम चार उपचौक हैं। इनमें वर्षोत्सव की लीलाएँ होती हैं॥ २॥

अग्निकोण में जो उपचौक हैं, तहाँ सुन्दर आश्विन विजया दशमी का राजदरबार सजाया जाता है। नैऋत (दक्षिण पश्चिम) कोण में दीप मालिका की रचना पूर्वक जुआ क्रीड़ा होती है॥ ३॥

वायव्य (पश्चिम-उत्तर) कोण में फगुआ विहार के अबीर गुलाल उड़ते हैं। ईशान (उत्तर पूर्व) कोण में जेष्ठ दशहरा उत्सव होता है॥ ४॥

इन चारों उत्सव लीला चौकों में एक-एक मणिमय मंडप सुशोभित हो रहे हैं। इन मंडपों की रचना नाना चित्रामों से युक्त ऐसी मनोहर है कि जिसे अवलोकन कर जगत की चातुर्य पूर्ण विचित्र सृष्टि करने वाले ब्रह्मा भी मुग्ध हो जाते हैं॥ ५॥

इति श्रीमज्जनकराजकिशोरी शरण विरचितायां श्रीसीताराम सिद्धान्तानन्य रस तरंगिण्यां दीपदान, वसंत, युगलदशहरा विधि सप्तमावरण वर्णनोनाम दशम स्तरंग॥



॥ एकादश तरङ्ग ॥

आठवाँ आवरण, चौंसठ यूथेश्वरी निवास, षोड़श सेवा-कुञ्ज



पुनि अष्टम आवरन के, मध्य सुचौंसठ कुंज ।
पीत मनी प्राकार बहु, जनु दिन कर बहु पुंज ॥ १ ॥
तहँ चौंसठ यूथेश्वरी, निवसति निज गन युक्त ।
दिग प्रति षोडश कुंज में, समय सुसेवा उक्त ॥ २ ॥

शब्दार्थः--प्राकार = परकोटा । उक्त = कथित, वर्णित ।

प्रसंगः--दशवीं तरंग तक बाहर के सप्तमावरण का वर्णन हुआ । उपर्युक्त आवरणों के नाम कँगूरों पर बैठे कृत्रिम पक्षिओं के नाम पर पड़े थे, अब भीतर के सप्तावरण का वर्णन प्रारंभ होता है । इनके नाम सीधे हैं, पक्षियों के अनुहरित नहीं ।

भावार्थः-अब अष्टमावरण अर्थात् भीतरी प्रथमावरण का वर्णन होता है । आवरण के अन्तराल में चौंसठ कुंज बने हैं । सभी कुंजों के तथा आवरण के महल पीत मणिमय बने हैं । उनसे इतना प्रकाश हो रहा है, मानों सूर्य के असंख्य दल एक साथ उग आये हों ॥ १ ॥

इन चौंसठ कुंजों में चौंसठ यूथेश्वरियाँ अपने परिकरों के साथ निवास करती हैं। चारों दिशाओं में सोरह कुंज बने हैं। इनमें आह्निक विलास की समयानुसार अष्टयामीय सेवा होती है, ऐसा वर्णन रस ग्रंथों में किया गया है ॥ २ ॥

इति श्रीमज्जनकराज किशोरी शरण विरचितायां श्रीसीताराम सिद्धान्तानन्य रस तरंगिण्यां अष्टमावरण अन्तर्गत चौंसठ यूथेश्वरी, कुंज वर्णनो नाम एकादश तरंगः ॥



॥ द्वादश तरङ्ग ॥

❋ नवमा आवरण, वत्तीस यूथेश्वरी निवास ❋

पुनि नवमें आवरण में, वत्तिस कुंज विशाल।
रचना तासु विचित्र अति, आवृत मनि गुन लाल ॥ १ ॥
तहँ निज परिचारी सहित, यूथेशा वत्तीस।
अष्ट अष्ट आसा प्रती, सेवति सीता ईश ॥ २ ॥

शब्दार्थः--आवृत = घिरा हुआ। गुन = रंग। परिचारी = किंकरी। आसा = दिशा।

भावार्थः--नवमें आवरण में वत्तीस बड़े-बड़े विस्तृत कुंज बने हैं। इनकी रचना नाना चित्रामों से युक्त हैं तथा लाल रंग की मणियों से निर्मित परकोटे बने हैं॥ १॥

इन कुंजों में वत्तीस यूथेश्वरियाँ अपनी-अपनी किंकरियों के सहित निवास करती हैं। प्रत्येक दिशा में आठ-आठ के हिसाब से वत्तीस कुंज हैं। ये सब मिलकर श्रीजानकी वल्लभलाल जू की सेवा में तत्पर रहती हैं॥ २॥

इति श्रीमज्जनकराजकिशोरी शरण विरचितायां श्रीसीताराम सिद्धान्तानन्य रस तरंगिण्यां नवम आवरण मध्ये वत्तीस यूथेश्वरी निवास वर्णनों नाम द्वादश तरंगः ॥

॥ त्रयोदश तरंग ॥

* दशवाँ आवरण, षोड़श यूथेश्वरी निवास *

पुनि दशवें आवरण में, षोड़श कुंज विभाति।
नील वरण आवरण मनि, चित्र सुनाना जाति ॥ १ ॥
युग युग दिग प्रति राजहीं, निज परिचारि समेत।
यूथेशा अति चतुर चित, सिय पिय सेवा हेत ॥ २ ॥

शब्दार्थः--विभाति = सुशोभित। परिचारी = किंकरी।

भावार्थः---दशमें आवरण के परकोटे नीलमणि रचित हैं। ऊपर नाना प्रकार से चित्राम खचित हैं। मध्य अन्तराल में शोभायमान षोड़श कुंज बने हैं ॥ १ ॥

प्रत्येक दिशा में दो-दो कुंज हैं। उन षोडश कुंजों में षोडश यूथेश्वरी अपनी-अपनी किंकरियों के सहित निवास करती हैं। श्रीप्रिया प्रियतम जू की सेवा के निमित्त इनका चित्त अति चातुर्य पूर्ण हैं ॥ २ ॥

इति श्रीमज्जनकराजकिशोरी शरण विरचितायां श्रीसीताराम
सिद्धान्तानन्य रस तरंगिण्यां षोडश यूथेश्वरी कुंज
दशमावरण वर्णनों नाम त्रयोदश तरंगः ॥

॥ चतुर्दश तरंग ॥

एकादश आवरण, प्रधान अष्ट यूथेश्वरी निवास



एकादश प्रावाल मय, रचना कलित सुदेश।
ता मधि अति विस्तार युत, अष्ट सुकुंज निवेश ॥ १ ॥
मध्य चौक आवरण के, ललित चहूँ दिशि चार।
चहुँ उपदिश उपचौक तहँ, रचना सुघर सुधार ॥ २ ॥
लसत ललित उपचौक प्रति, युग युग कुंज विसाल।
कुञ्जन मधि उपकुञ्ज तहँ, उप मधि सेवहिं लाल ॥ ३ ॥
वीति-होत्र दिशि चौक तहँ, युग्म भाग सम साज।
तहाँ चारुशीला अली, अरु लच्छणा विराज ॥ ४ ॥

ग्यारहवाँ आवरण प्रधान अष्टयूथेश्वरियों का है जिनमें सर्वेश्वरी श्रीचारुशीलाजी मुख्य हैं। यह आवरण मूगामणि की प्रधानता में सफेदी लिये हुवे लाल रंग का है। इस आवरण के प्रत्येक अंग अत्यन्त सुन्दर रचना युक्त हैं। इस आवरण के अन्दर आठ मुख्य महल अत्यन्त विस्तार युक्त हैं। अतिशय सुन्दर महल हैं। जिनमें श्रीप्रियाजी की प्रधान सखियों का निवास है ॥ १ ॥

प्रत्येक आवरणों में पूर्वादि दिशा भेद से तो सिंह द्वार सार्दूल द्वार मृगभानुद्वार गजारिद्वार नाम से चार दिशाओं में भीतर-महल से बाहर जाने वाले द्वार होते हैं उन द्वारों में

प्रत्येक आवरण के पूर्वादि भेद से चार दिशाओं के चार चौक (चौराहा) होते हैं जिनमें सवारियाँ तथा पैदलादि आवागमन होता है। ये चारों चौक (चौराहा) आवरण के महलों से अतिशय शोभा युक्त हैं॥ और भीतरी आवरणादि महलों से सीधे बाहर जाने के लिये उपदिशाओं में भी सड़क हैं। उनमें भी प्रत्येक आवरण पर उप चौक (उप चौराहा) होते हैं॥ जिनकी रचना (शोभा) बड़ी सुघरता के साथ सुधार कर बनी हुई है ॥ २ ॥

प्रत्येक उपदिशा के चौकों में दोनों बगल दो-दो यूथेश्वरियों के दो-दो महल स्वस्तिकादि नामों से प्रसिद्ध शोभित हैं। तथा उन प्रत्येक प्रधान यूथेश्वरियों के कुंजों (महलों) के अन्दर भी आठ-आठ करके उपकुंज हैं जिनमें उन प्रधान कुंजेश्वरियों के साथ प्रीतम की सेवा करने वाली उप सखी (प्रधान सखियों की सखी) निवास करती हैं जिनका नाम विस्तार-श्रीअमर रामायण अध्याय २३ में श्लोक ३५ से ५० तक लिखा है ॥ ३ ॥

अग्नी कोण के उप चौक में दोनों भाग (दोनों तरफ) में जो दो महल हैं वे समान सजावट दार हैं जिनमें उपचौक के पूर्व उत्तर बगल के कुंज में सर्वेश्वरी श्रीचारुशीलाजी अपनी सखियों के साथ तथा उप चौक के दक्षिण पश्चिम बगल वाले महल में श्रीलक्ष्मणजी अपनी सखियों के साथ रहती हैं॥ ४ ॥

पुनि इशान दिशि चौक तहँ, उभय सुभाम विसाल।
तहँ हेमा क्षेमा सखी, निवसति युत अलिमाल ॥ ५ ॥
पुनि नैऋत दिशि चौक तहँ, उभय भाम अनुमान।
तहाँ पद्मगन्धा वरा, रोहा उभय सुजान ॥ ६ ॥
पुनि वायश दिशि कच्छ युग, तहँ निवसति युग बाल।
सुभगा और सुलोचना, सेवा हित सिय लाल ॥ ७ ॥
यहि विधि अष्ट सुचौक मधि, निवसति अमित सुबाल।
अमित मारि मद हारि जेहि, लखि मोहत नृपलाल ॥ ८ ॥

शब्दार्थः--मारि=मार अर्थात् काम पत्नी रति।

फिर इसी प्रकार उपदिशा ईशान कोण के चौक में भी दोनों बगल दो महल विसालता के साथ बने हैं जिनमें अपनी २ सखियों के साथ इशान कोण के चौक के पूर्व दक्षिण बगल में श्रीक्षेमाजी तथा उत्तर पच्छिम बगल में श्रीहेमाजी अपनी २ सखियों के साथ निवास करती हैं ॥ ५ ॥

इसी प्रकार नैऋत्य उप दिशा के चौक (चौराहा) में भी दोनों बगल वाले एक सदृश्य महलों में नैऋत्य कोण के चौक के दक्षिण पूर्व बगल में श्रीपद्मगन्धाजी अपनी सखियों के साथ तथा पच्छिम उत्तर बगल में श्रीवरारोहाजी का अपनी सखियों के साथ निवास है ॥ ६ ॥

फिर इसी प्रकार उपदिशा वायुकोण के चौराहा के दोनों बगलों में समान सजावट तथा विस्तार वाले दो महलों में अपनी २ सखियों के साथ श्रीशुभगाजी तथा श्रीसुलोचनाजी

निवाश करती हैं जहाँ पर रहकर श्रीयुगलसरकार की सब स्थानों में सेवा कर शक्ती हैं ॥ ७ ॥

इस प्रकार से यह श्रीजानकीजी की प्रधान अष्ट सखियों का निवास स्थान अनन्त सखियों से भरा हुवा इन अष्ट प्रधानों की सेवा के लिये अद्भुत ऐश्वर्य तथा सौन्दर्य सम्पत्ति से युक्त है। जिनको देखकर श्रीअवधेश नृपलाड़ले जू मोहित हो इन सबके आधीन सदैव रहते हैं ॥ ८ ॥

इति श्रीमज्जनकराजकिशोरी शरण विरचितायां श्रीसीताराम सिद्धान्तानन्य रस तरङ्गिण्यां प्रधान अष्ट यूथेश्वरी कुंज एकादशमावरण वर्णनोनाम चतुर्दश तरंगः ॥



❋ पंचदश तरङ्ग ❋

❋ बारहवाँ आवरण, षट ऋतु महल ❋



अष्ट सुकुञ्जा वरन के, मधि विसाल अवकाश।
रचित सुवारि निसर्ग मनि, यथा सुवारि प्रकाश ॥ १ ॥
दरसत तरल तरंग तहँ, जात युत्थ कृत केलि।
कलित कमल कल अलिन युत, सैवल जलरय रेलि ॥ २ ॥
तहँ द्वादश प्रासाद वर, अद्भुत उच्च विसाल।
ऋतु अनुकूल सुलसत षट, षट ऋतुमय छवि जाल ॥ ३ ॥

शब्दार्थः--वारि निसर्ग = जल के स्वरूप वाली। जात = जल जीव। सैवल = सैंवार। रय = वेग। रेलि = प्रवाह।

भावार्थः--अष्ट प्रधान यूथेश्वरियों के अष्ट कुंज के बाद बारहवें आवरण के मध्य वाला अन्तराल खूब विस्तृत है। इस रिक्त स्थल की गच्ची जल स्वरूपाकार मणियों से ढली है। अतः इस स्थल में वारिमणि के कारण हूबहू जल की भ्रान्ति होती है ॥ ॥ १ ॥

इस वारि मणिमयी भूमिका में भी जल के समान तीव्र लहरें दीखती हैं। जल जीवों के समूह खेल करते हुये दीख पड़ते हैं। उत्तमोत्तम कमल भ्रमर युक्त दीख पड़ते। सैंवार जल

का तीव्र प्रवाह आदि सब जल की सामग्री वारि मणि की रचना होने से स्थल ही में दीख पड़ती हैं ॥ २ ॥

इसी आवरण में चाश्चर्य शोभा सम्पन्न, ऊँचे ऊँचे और बड़े-बड़े उत्तमोत्तम बारह महल हैं। छः तो ऋतु अनुकूल हैं तथा छः ऋतु स्वरूप हैं ॥ ३ ॥

टिप्पणीः--ऋतु अनुकूल, ऋतु स्वरूप समझने के लिये मान लीजिये कि ग्रीष्म ऋतु बरत रही हो, तो शीतलता के लिये जल फुहारा, फूल बंगला, तहखाना, खसखाना आदि साधन जहाँ जुटे हों वह ऋतु अनुकूल है। ठंढी दिनों में भी जहाँ प्रवेश करते ही सूर्यमणि से निर्मित होने के कारण ग्रीष्मवत तपन देवें, वह ऋतु स्वरूप है ॥

इति श्रीमज्जनकराजकिशोरी शरण विरचितायां श्रीसीताराम सिद्धान्तानन्य रस तरंगिण्यां षट ऋतु द्वादशप्रसाद, द्वादश आवरण वर्णनोनाम पंचदश तरंगः ॥



॥ षोड़श तरङ्ग ॥

❀ त्रयोदश आवरण, आह्निक विलास ❀



अब तेरह आवरण लखु, कलित वारि मनि केर।
पद्मराग अवनी रुचिर, तहँ वसु चौक उजेर ॥ १ ॥
कंचन खचित पिरोज मनि, सौध लसत प्रति चौक।
कनक कुंज अवली लसत, रहसि सदन बिच ओक॥ २ ॥
भै द्वारी गोपुर रुचिर, चारि चारि चहुँ फेरि।
बजत चौघड़े याम प्रति, झालरि झाँझ मजेरि ॥ ३ ॥
युगल युगल अलि कुंज प्रति, कोटिन परिकर संग।
तहँ आह्निक सियलाल के, लीला सुख रस रंग ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—कलित = निर्मित। अवनी = भूमि। वसु = आठ। पिरोज = पीत। सौध = महल। चौघड़े = तन, घन, सुषिर और आनद्ध ये चार प्रकार के बाजे। याम = पहर आह्निक = अष्ट कालीन दैनिक विहार।

भावार्थः- अब तेरहें आवरण का ध्यान कीजिये। परकोटे वारिमणि के बने हैं। पद्मरागमणि खचित सुन्दर भूमिका है। यहाँ आठ प्रकाशमान चौक हैं॥ १ ॥

प्रत्येक चौक में सोने के महल हैं, जिसमें पिरोजमणि जड़ी हैं। यहाँ स्वर्ण कुंजों की पंक्ति सुशोभित हो रही हैं तथा महल के मध्य में केलि सदन हैं॥ २ ॥

आवरण के चारो दिशाओं में चार-चार फाटक हैं। प्रत्येक फाटक तीन खंडों के द्वार वाला अति रमणीक है। एक एक पहर पर बदलने वाले झालर, झांझ, मजीरादि चतुर्विध बाजे गोपुरों पर बजते रहते हैं॥ ३ ॥

प्रत्येक कुंज में दो-दो कुंजेश्वरी हैं। इनके साथ असंख्य सखियों का परिकर रहता है। इन कुंजों में श्रीलली लाल जू का अष्टयामीय रस रंगमय आह्निक लीला विलास होता है॥ ४ ॥

इति श्रीमज्जनकराजकिशोरी शरण बिरचितायां श्रीसीताराम सिद्धान्तानन्य रस तरंगिण्यां आह्निक विलासीय प्रासाद त्रयोदश आवरण वर्णनों नाम षोडश तरंगः॥



॥ सप्तदश तरङ्ग ॥

❋ चौदहवां आवरण, दूरदर्शिका महल ❋

अब श्रुति दश आवरण वर, कंचन कलित बिसाल।
मानिक मुक्ता चन्द्रमनि, चित्रित बूटे जाल ॥ १ ॥
त्रिक द्वारी गोपुर लसत, दिग प्रति युग युग सोह।
तापर रक्त कंगूर स्रक, पिक अवली मन मोह ॥ २ ॥
पुनि द्वादश प्रासाद के, मध्य सुचौक बिसाल।
भूमि हरित मनिमय लसत, जटित सुमुक्ता जाल ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—श्रुति दश = ४ + १० = १४ । त्रिकद्वारी = तीन खंड का प्रवेश द्वार वाला । गोपु = फाटक । स्रक = माला । अवली = पंक्ति । प्रासाद = महल ।

भावार्थः--अब परमोत्तम चौदहवें आवरण, का ध्यान कीजिये । इसके कोट-महल स्वर्ण रचित बड़े विशाल हैं । इनमें बेल बूटे एवं जाल माणिक्य, मोती तथा चन्द्रमणि से कटे हैं तथा अनेकों चित्रास भी इन्हीं के बने हैं ॥ १ ॥

प्रत्येक दिशा में दो-दो फाटक हैं । फाटकों में प्रवेश द्वार तीन खंड वाले बने हैं । इन गोपुरों पर लाल रंग की कंगूर माला (पंक्ति) है तथा उन कंगूरों पर बैठे हुये कृत्रिमों कोयलों की पंक्ति ऐसी सुन्दर है जिसे देखने से मन मोहित हो जाता है ॥ २ ॥

अन्तराल में चारो ओर बारह महल हैं। महलों के बीच में एक विशाल चौक है। चौक वाली भूमि हरित मणियों से जटित सोह रही है तथा उसमें मोती से खचित जाल बने हैं॥ ३ ॥

ता मधि द्वादश महल वर, दूर-दर्शिका केर।
कच्छ सप्त अति स्वच्छ मनि, कुंजे बहु रँग घेर॥ ४ ॥
अहि पति नरपति पितृ पति, सुरपति आनन चारि।
महाकाल हरि रुद्र पुनि, कालि शक्ति बहु धारि॥ ५ ॥
ब्रह्म जोति घन विष्णु बहु, द्वादश मध्य अगार।
भिन्न भिन्न सब देखिये, कौतुक रंग अपार॥ ६ ॥
युगल युगल अलि कुंज प्रति, निवसति कोटिन तीय।
तहँ बहु कौतुक चित्रमय, निरखत विसमय हीय॥ ७ ॥

शब्दार्थः--दूर-दर्शिका = दूरवीन लगा हुआ। कुच्छ = आवरण। अहिपति = नागलोक के अधिपति वासुकिजी। नरपति = मनुष्य लोक के राजा पितृपति = पितृलोक के अधीश्वर श्रीयमराजजी। सुरपति = इन्द्र। आनन चारि = चतुर्मुख ब्रह्मा महाकाल = अवन्तिकापुरी के महा कालेश्वर शिव। बहुधारि = अनेकों समूह।

भावार्थः--उपर्युक्त चौक के अभ्यन्तर दूरवीन लगे हुये बारह उत्तम महल हैं। प्रत्येक महल में सात-सात आवरण हैं। प्रत्येक आवरण में अनेक रंगों के कुंज बने हैं॥ ४॥

प्रसंगः--इन दूर-दर्शिका महलों में बैठे-बैठे जिन-जिन

दूर वर्त्ती लोकों के दृश्य दीख पड़ते हैं, उनके नाम दोहे ५ और ६ में गिनाये जा रहे हैं।

भावार्थः--नागराज वासुकि जी, मानव लोक के राजा, यमराज, इन्द्र ब्रह्मा, महाकाल श्रीविष्णु, श्रीशंकर, पुनः काल, श्रीभूआदिक शक्तियों के अनेक समुदाय, घनीभूत ब्रह्मज्योति, चतुर्भुजी अष्टभुजी आदि असंख्य विष्णु आदि-आदि सभी दृश्य इन बारह महलों में विलग-विलग देख पड़ते हैं तथा अनंत भाँति के कौतुक भी दिखाई पड़ते हैं ॥ ५, ६ ॥

उपर्युक्त आवरण वाले कुंजों में से प्रत्येक कुंज में दो-दो कुंजेश्वरियाँ असंख्य अनुचरियों के सहित निवास करती हैं। इन कुंजों में बहुत से चित्रांकित कौतुक बने हैं, जिन्हें देख कर हृदय में बड़ा आश्चर्य होता है ॥ ७ ॥

इति श्रीमज्जनकराजकिशोरी शरण विरचितायां श्रीसीताराम सिद्धान्तानन्य रस तरंगिण्यां द्वादश प्रासाद चतुर्दशावरण वर्णनो नाम सप्तदश तरंगः ॥



❀ अष्टदश तरङ्ग ❀

❀ सर्व ऋतु भोग गृह ❀

यहि विधि भूतावरण कहि,मधि विशाल अवकाश।
फटिक मनिन अवनी रुचिर,जनु शशि निकर प्रकाश॥१॥
तहाँ सर्व ऋतु भोग गृह, छोम सुछवि रहि छाय।
जाल गवाच्छ झरोख मनि, अमित रंग सरसाय॥ २ ॥
द्वार चार चारो दिशा, चतुर रचित चितचोर!
मनिमय पिक कल गावहीं, नटत सुमनिमय मोर ॥ ३ ॥
तोरन कलष पताक ध्वज, प्रतिगुन सोभित सोह।
तिनपर मनिमय खग लसत,लखि विधि हरि मनमोह॥४॥
वेदी उच्च विशाल तेहि, सोभित चहुँ दिशि चारु।
कंचन कलधर नारि नर, नटत हटत छांव मारु ॥ ५ ॥

भावार्थः-इसी प्रकार से अब प्रस्तुत भूतावरण का वर्णन करते हैं। इसके अन्तराल में सुविस्तृत जगह है। वहाँ की भूमि स्फटिक मणियों जे जटित सुन्दर शोभायमान है। भूमि से इतना प्रकाश हो रहा है मानो चन्द्र हमूह प्रकाश कर रहे हों ॥ १ ॥

इसके अन्तराल में सभी ऋतुओं में सुख देने वाले महल बने हैं। अटारी की शोभा न्यारी छाई है। जाल, गोखों, झरोखों में असंख्य रंग की मणियाँ शोभा दे रही हैं ॥ २ ॥

चारो ओर चार गोपुर हैं। इनकी मनोहर रचना चातुर्य पूर्ण है। छज्जों पर मणियों की कृत्रिम कोयल पवन प्रसंग से मनोहर गान करती है तथा मणि रचित कृत्रिम मोर नृत्य कर रहे हैं ॥ ३ ॥

वन्दनवार, कलश, ध्वजा पताकाएँ यथोचित फबने वाले रंग की सोह रही हैं। उनपर मणिमय पक्षी सुशोभित हो रहे हैं। इन रचनाओं को देखकर श्रीब्रह्मा विष्णु का मन भी मुग्ध हो जाता है ॥ ४ ॥

इस आवरण की चारो दिशाओं में चार ऊँची सुविस्तृत वेदिकाएँ सोह रही हैं। स्वर्ण के कृत्रिम स्त्री पुरुष कल के सहारे नाचते हैं। इनकी शोभा के सामने काम की शोभा भी पिछड़ जाती है ॥ ५ ॥

अजिर विशाल विराजहीं, फाटिक मनि गच स्वेत।
प्रतिफल परसत तासु मधि, अलि मुख चन्द समेत ॥ ६ ॥
मनिमय रचित सुपुष्प द्रुम, जाई जुही चमेलि।
वर गुलाब कल मोंगरा, लसत वितान सुवेलि ॥ ७ ॥
भ्रमत भ्रमर कल मनि कलित, कुसुम वास जनु लेत।
हंस चलत गति हंस जिमि, कौतुक कला समेत ॥ ८ ॥
प्रौढ़ा मध्या मुग्ध वय, गत आगत पद चार।
तिन के पद भूषन ललित, मधुर मधुर रवकार ॥ ९ ॥
कोटिन अलि कल गान तहँ, कोटिन करति सुकेलि।
कोटिन फिरति अटान पर, रति मद हारि नवेलि ॥१०॥

शब्दार्थः--प्रतिफल=परछाईं। वास=सुगन्ध। कौतुक कला=तमाशा के योग्य कला। गत आगत=जा आ रही है। रवकार=शब्दायमान।

भावार्थः--सुविस्तृत प्राङ्गण में स्फटिक मणि जटित श्वेत गच्ची सोह रही है। उस गच्ची में सखियों के मुखचन्द्र सहित सर्वांग के प्रतिबिम्ब पड़ रहे हैं॥ ६॥

मणियों के कृत्रिम जाई, जुही, चमेली, उत्तम गुलाब, सुन्दर बेला आदि पुष्प वृक्ष तथा मणि कृत्रिम लता-वितान सोह रहे हैं॥ ७॥

मणि रचित कृत्रित कलवाले भौंरे फूलों पर ऐसा मड़रा रहे हैं मानों मकरन्द पान कर रहे हैं। कृत्रिम हंस सच्चे हंस की चाल से चल रहे है, उनकी चलन-कला तमाशा देखने योग्य है॥ ८॥

प्रौढ़ा, मध्या तथा मुग्धा बालाएँ पैदल जाती आती हैं। उस समय उनके मनोहर चरण भूषणों से मधुर ध्वनि होती है॥ ९॥

वहाँ असंख्य मनोरमाएँ सुन्दर गान कर रही हैं, अनेकों मन हरनी क्रीड़ाएँ कर रही हैं। असंख्यों तो अट्टालिकाओं पर विचर रही हैं। ये सभी नवलाएँ अपने सौन्दर्य माधुर्य से रति के रूपाभिमान को छीन रही हैं॥ १०॥

कोटि खड़ी प्रति द्वार पर, लिये बेंत कर वाम।
रूपवती अति चातुरी, द्वार पालिका नाम॥११॥

प्रासादान्तर खंड बहु, कौतुक चित्र अपार ।
अन्तर द्वार अलक्ष तहँ, प्रगट पक्ष बहु द्वार ॥ १२ ॥
खंड अमित अवरेव मग, अमित गुप्त मग राज ।
अमित सुभ्रामक मग लसत, अमित उर्ध्व मग साज ॥ १३ ॥
क्षोम व्योम विलसत तहाँ, अष्टापद आकार ।
अधिक उच्च तेहि मध्य पद, मनिमय चित्र अपार ॥ १४ ॥
कनक कलस तापर लसत, अमित मित्र द्युति साज ।
अपर कलस ध्वज रंग बहु, विबुध विमान विराज ॥ १५ ॥

शब्दार्थः -प्रासादान्तर = महल के भीतर । प्रगट पक्ष= प्रत्यक्ष । अवरेव = टेढ़ा मेढ़ा । भ्रामक - भूल भुलैया वाला । उर्ध्व मग = सीधा रास्ता भी भ्रमवश ऊपर की ओर जाते मालूम पड़ता है । क्षोम = अटारी । अष्टापद = कैलास ।

भावार्थः--प्रत्येक द्वार पर कोटि-कोटि सुन्दरी चतुरी नायिकाएँ हाथों में बेंत लिये खड़ी हैं। इनका नाम द्वार पालिका है ॥ ११ ॥

महल के भीतर अनेकों खंड खंडान्तर हैं । दीवालों पर अनन्त चित्र तमाशा देखने योग्य हैं । इनमें भीतर जाने वाले द्वार बहुत से तो गुप्त हैं और बहुत से प्रत्यक्ष ॥ १२ ॥

असंख्य खंडों के प्रवेश दरवाजे टेढ़े मेढ़े घुमा फिरा कर जाने वाले हैं । असंख्य द्वार ऐसे गुप्त हैं जिनका पता ही नहीं लगता । असंख्य द्वार ऐसे धोखा देने वाले हैं कि द्वार की जगह दीवाल और दीवाल की जगह द्वार समझ पड़ते हैं ।

असंख्य दरवाजे अनवश ऊपर की ओर जाते हुये मालूम पड़ते हैं ॥ १३ ॥

अट्टालिकाएँ कैलास पर्वत के आकार वाली इतनी ऊँची हैं, मानो आकाश को छू रही हों । मध्य वाला तल्ला भी अधिक ऊँचा है । उनमें मणि खचित अनंत चित्रांकित हैं ॥ १४ ॥

उन पर स्वर्ण कलश अनंत सूर्य के समान प्रकाशमान सोह रहे हैं । और कलश तथा ध्वजाएँ ऐसी फबती हैं मानों अनेकों रंग के देव विमान सुशोभित हो रहे हों ॥ १५ ॥

छोम भूमि ते उच्च अति, विस्तृत वेदि अनूप ।
मनि कल कलित सुकेलि बहु, नागरि नागर रूप ॥ १६ ॥
ललित लच्छ खंभावली, वसु वसु श्रुति दिक सोह ।
क्रम ते उच्च सु एक ते, एक कलित मन जोह ॥ १७ ॥
पट पिधान बहु रंग के, तिन पर मुक्ता जाल ।
मनिमय जाल विचित्र कहुँ, तोरन मुक्ता माल ॥ १८ ॥
खंभासन कल कलित मनि, प्रति रंग शोभित देश ।
कगर कंगूरे क्रमवली, कंज सु किरन मुकेश ॥ १९ ॥
अंतर अतर सुगन्ध तेहि, अलि अवली रहि छाय ।
मधुर मधुर सुर गुंजहीं, तहँ अति सुख सरसाय ॥ २० ॥

शब्दार्थ:—छोम = चिकनी । कल कलित - कल पुर्जे द्वारा । वसु = आठ श्रुति दिक = चारो दिशा । पिधान =

परदा। खंभासन =खंभे का गोड़ा। कमरखी =जिसमें कमरख नामक फल के ऐसी उभड़ी हुई फाँके हों। किरन=झालर।

भावार्थः—शयन कुंज वाली वेदिका का वर्णन करते हुये कहते हैं कि भूमि से बहुत ऊँचाई पर एक सुन्दर चिकनी सुविस्तृत वेदिका है। उस पर मणियों के कृत्रिम नायक नायिकाएँ परस्पर में कल के सहारे अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ कर रही हैं ॥ १६ ॥

उस वेदिका पर स्थित मंडप में एक लाख सुन्दर खंभावली है। खंभावली कई आवरणों में विभक्त है। भीतर से प्रथमावरण में चारो ओर आठ-आठ खंभे हैं। दूसरे आवरण में सोलह-सोलह, तीसरे में बत्तीस-बत्तीस खंभे चारो ओर से लगे हैं। इसी प्रकार अनेक आवरण हैं। बाहर वाले आवरण के सतह से दूसरे आवरण का सतह ऊँचा है, तीसरे के और भी ऊँचा। इसी प्रकार क्रमशः आवरणों के सतह ऊंचे होते गये हैं। ऊपर चढ़ने का रास्ता बना है। ऐसा ध्यान में देखिये॥ १७ ॥

द्वारों पर अनेकों रंग वाले वस्त्रों के परदे पड़े हैं। ऊपर से मोती के जाल बने हैं। कहीं-कहीं मणिमय जाल हैं। कहीं मोती मालाओं के बन्दनवार बन्धे हैं॥ १८ ॥

खंभों के गोड़े जहाँ जैसा रंग छजे उसी रंग की मणियों से रचित हैं। छज्जे की रीढ़ पर कंगूरे कमरख फल के आकार वाले बने हैं। कृत्रिम कमल में बादलों की झालर लगी है ॥ १६ ॥

उस कृत्रिम कमल के भीतर अतर की सुगन्ध भरी है। भ्रमरों के झुंड मड़रा रहे हैं। मधुर स्वर से गुंजार करते हैं। बड़ा ही आनन्द छाया हुआ है ॥ २० ॥

बिछे बिछौना पाट के, कहुँ पाटी पाटीर।
कहुँ बेंतस पाटी लसत, प्रान्त कलित कल हीर ॥ २१ ॥
छत वितान कहुँ नील कहुँ,पीत हरित कहुँ लाल।
कनक रूप के सूत्र को, ता मधि कलित सुजाल ॥ २२ ॥
झूमि रहे लच्छा ललित, मुक्ता गुम्फ अपार।
नटति पूतरी खंभ प्रति, लसत सु भूषन भार ॥ २३ ॥
ता मधि कंचन भीत पर, द्वार पाँति वर लच्छ।
तोरन तरल विचित्र अति, विरचित मंगल मच्छ ॥ २४ ॥
मनिमय कलित कपाट वर, तापर मुक्ता जाल।
तापर विरचित बसन के, पर्दा परे विशाल ॥ २५ ॥

शब्दार्थः = पाट = रेशम। पाटीर = चंदन। पाटीर पाटी = शीतल पाटी। कनक रूप के सूत्र = सोने चान्दी के तार। गुम्फ = गुच्छे। तरल = डोलते हुये। मच्छ = मछली।

भावार्थः— कहीं रेशमी गलीचे बिछे हैं। कहीं शीतल पाटी बिछी हैं। कहीं बेंत की चटाई बिछी है। सबों के छोर हीरे से मढ़े हैं ॥ २१ ॥

छत में कहीं नीले, कहीं पीले, कहीं हरे, कहीं लाल रंग के चँदोवे टँगे हैं। उन वितानों में सोने चान्दी के तारों से जाली बनी है ॥ २२ ॥

उनमें सुन्दर सुन्दर लच्छे और मोतियों के गुच्छे झूल रहे हैं। प्रत्येक खंभे में भूषणों से समालंकृत पूतली नाच रही है॥ २३॥

खंभों के भीतर सोने की दीवाल है। उसमें पंक्तिबद्ध एक लाख द्वार है। कृत्रिम मणिमयी मछलियों के अति विचित्र मांगलिक वन्दनवार डोल रहे हैं॥ २४॥

मणिमय उत्तमोत्तम सुन्दर किवाड़ लगे हैं। उन पर मोतियों के जाल बने हैं। उनपर वस्त्रों के सुरचित बड़े-बड़े परदे पड़े हैं॥ २५॥

ललित द्वार सोपान मनि, कलित ललित पट नर्म।
प्रति रँग शोभित सोहने, चारन चरन सु सर्म॥ २६॥
अट्टा रोहन हेतु बनि, निश्रेनी सु बिसाल।
कहुँ शोभित पाटीर मय, कहुँ विद्रुम छवि जाल॥ २७॥
कहुँ कंचन सोपान मनि, चित्रित रंग विचित्र।
तेहि मगतासु प्रकाश अति, उदय अमित जनु मित्र॥२८॥
कहुँ झूलत आन्दोल इव, तेहि कल करिय सुदाय।
चौचक चढ़ो अलच्छ मग, अट्टन पर दरसाय॥ २९॥
द्वितीय कक्ष कक्षान्तरे, कक्षोत्तर बहु कक्ष।
अद्भुत रचना तासु मधि, लच्छन लच्छ अलच्छ॥ ३०॥

शब्दार्थः--चारन = चलने में। सर्म = सुख। अट्टारोहन= अटारी पर चढ़ना। निश्रेनी = सीढ़ी। पाटीर चन्दन। लच्छन = लाखों।

भावार्थः--सुन्दर द्वारों पर मणि रचित सीढ़ियाँ बनी हैं। उनपर कोमल वस्त्र बिछे हैं। जहाँ जो रंग जेब खाये, वहाँ उसी रंग का वस्त्र बिछा है। चलने में चरण को सुख होता है ॥ २६ ॥

अटारी पर चढ़ने के लिये बड़ी-बड़ी सीढ़ियाँ बनी हैं। कहीं चन्दन काष्ट की, कहीं मूंगे की शोभायमान सीढ़ी बनी हैं ॥ २७ ॥

कहीं सोने की सीढ़ी बनी हैं, उसमें अनेक रंगों की मणियों के चित्राम बने हैं। उससे रास्ते में अति प्रकाश छाया हुआ है, मानों अनन्त सूर्य उगे हों ॥ २८ ॥

कहीं सीढ़ी झूले के समान लटक रही है, उसमें कल सुन्दर रीति से घुमाइये तो शीघ्र ही गुप्त मार्ग से पहुँच कर अटारी पर अपने को पाइयेगा ॥ २९ ॥

दूसरे महल के भीतर अनेकों खंड खंडान्तर हैं। लाखों तो गुप्त हैं, अनेकों प्रगट। उन सबों में आश्चर्य रचनाएँ हैं ॥ ३० ॥

सो शक्ती सब मनिन की, जो दरसत बहु रंग।
ऋतु अरु समय प्रकाश सब, वस्तु अंग उपअंग ॥ ३१ ॥

❋ शीश महल ❋

शीश महल बहु रंग के, अंग यथा दरसाय।
कहुँ सुवृहद छवि देखिये, कहुँ निज पीठ दिखाय॥ ३२ ॥

भिन्न प्रतीका दर्श कहुँ, तहँ कौतुक सरसाय।
कहुँ उत्तर अँग देखि कहुँ, पूर्व काय दरसाय ॥ ३३ ॥
कहुँ केवल भुज देखिये, कहुँ केवल बहु आस्य।
कहुँ दरसत अद्भुत छवी, लखि २ आवत हास्य ॥ ३४ ॥
कहूं एक के सहस अँग, कहुँ वितस्ति सम काय।
उलटी छवि कहुँ देखिये, अध शिर ऊपर पाँय ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ:--भिन्न प्रतीकादर्श=स्वरूप और का और दीखने वाला दर्पण। उत्तर अंग=कमर से ऊपर वाला भाग। पूर्वकाय=कमर से नीचे वाला शरीरांश। वितस्ति=एक वित्ते का।

भावार्थ:-विभिन्न खंडों में छवों ऋतुएँ विलग-विलग प्रतीत होती हैं, आठो पहर के समय विभाग यथा योग्य खंडों में अलग-अलग भासित होते हैं। कलश कँगूरे आदि महलों के अंग, तथा कृत्रिम भ्रमर, पक्षी लता द्रुम आदिकों के अंग प्रत्यंग यथार्थवत् दीख पड़ते हैं। यह विविध जाति एवं रंगों की मणियों का प्रभाव है, कुछ ऐश्वर्य शक्ति से ऐसा नहीं होता ॥ ३१ ॥

नाना रंगों के शीशे के महल बने हैं। किसी महल में तो अपने अंग जैसे हैं, तैसे ही दीखेंगे। कहीं अपना स्वरूप शीशा विशेष के प्रवास से बहुत बड़ा दीख पड़ेगा। शीशों में अपना मुख अथवा आगे वाले अंग तो दीखते हैं, पर यहाँ

शीशे ऐसी कारीगरी से लगे हैं कि अपनी पीठ ही दीखती है ॥ ३२ ॥

कहीं शीशे ऐसे लगे हैं कि जिसमें कुछ का कुछ दीख पड़े। वहाँ अजीब तमाशे दीख पड़ते हैं। शीश महल में किसी ठौर पर जाइये तो वहां अपना केवल ऊपर वाला धड़ देखियेगा, कहीं पर केवल नीचे वाले अंग दीखेंगे ॥ ३३ ॥

कहीं केवल अपनी बाँह मात्र दिखाई पड़ती है, कहीं अपने मुख के अनेकों प्रतिबिम्ब देखियेगा। कहीं अपना स्वरूप विचित्र प्रकार का दिखाई पड़ेगा। देख-देख कर हँसी लगती है ॥ ३४ ॥

कहीं एक ही अंग हजार हो गया, ऐसा मालूम पड़ेगा। कहीं अपना स्वरूप वित्ते भर का दीखेगा। कहीं अपना स्वरूप उल्टा दीखेगा, मालूम पड़ेगा शिर नीचे, चरण ऊपर ॥ ३५ ॥

* रजनी गृह तथा दिवस गृह *

धुन्ध मनिन के खंड तहँ, धुन्धी लखि बहु रंग।
नील पीत सित अरुण तहँ, लखियत नहि निज अंग॥३६॥
सायं तन तें क्रमहि ते, घटिकोत्तर दरसाय।
द्विघट त्रिघट निसि रूप लखि, अन्त भोर सरसाय॥ ३७॥
तथा दिवस छवि देखिये, क्रम घटिका प्रति कच्छ।
ऋतु गृह ऋतु छवि देखिये, मास भाव क्रम लच्छ॥३८॥

निशि में कहुँ दिन पेखिये, कहुँ दिन में निशि भास।
तहाँ न कछु ऐश्वर्यता, तथा मक्ति मनि कास ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ:--धुंध=धुंधले । लच्छ = लक्षित होता है, दिखाई पड़ता है। भास=मालूम पड़ता है।

भावार्थ:--धुंधली मणियों के खंड में नाना रंगों की धुन्धी दिखाई पड़ती है। नीली पीली उजली और लाल रंग वाली धुन्ध मणियाँ हैं। धुन्धली होने से अन्य मणियों की भाँति अपना प्रतिबिम्ब इनमें दर्पणवत नहीं दिखाई देता है ॥ ३६ ॥

इन्हीं धुन्ध मणियों के रचित तीस रात्रि भवन हैं। एक में जाने से ऐसा मालूम पड़ेगा कि एक घड़ी (२४ मिनट) रात बीत गई। दूसरे में दो घड़ी रात्रि का समय मालूम पड़ेगा। इसी प्रकार क्रमशः रात्र की तीसों घटिकाएँ भोर तक विलग-विलग तीसों खंडों में जाने से भासित होती हैं ॥३७॥

उसी प्रकार दिवस-भवन की तीसों कक्षाओं में जाइये तो घड़ी क्रम से दिन के तीसो घटिका विभाग पृथक पृथक देखिये। ऋतु-भवन में छवों ऋतुओं के दृश्य दीख पड़ेंगे। प्रत्येक ऋतु दो-दो महीने वरतती हैं, सो उन दोनों महीनों के भाव अलग-अलग दीख पड़ेंगे। तात्पर्य कि १२ महीनों के भाव दर्शाने के लिये १२ षट ऋतु कक्षाएँ बनी हैं ॥ ३८ ॥

बाहर में यदि रात बीत रही हो और दिवस-भवन में आप प्रवेश कर जाँय, तो वहाँ उस समय दिन ही दिखाई

पड़ेगा। उसी प्रकार बाहर में यदि दिन है, तो उसी समय रात्रि भवन में जाने से रात्रि का भास होगा। यह बात परात्पर ब्रह्म श्री जानकी वल्लभ जू के ऐश्वर्य प्रभाव से तो सुलभ था ही, पर यहाँ सो बात नहीं है। यहाँ इसी प्रकार की मणियों का कला पूर्ण रचना चातुर्य है। अतः माधुर्य लीला में कोई हानि नहीं ॥ ३६ ॥

* वसन गृह *



तेहि खंडान्तर खंड वर, मंडित वसन सु अंग।
कल कृत सब विस्तार युत, सिमटत कल के संग ॥ ४० ॥
वसन सु खंभ विचित्र अति, वसन कँगूर सुदेश।
जगमगात झालर वसन, तोरन रेख सुदेश ॥ ४१ ॥
द्वार सु विरचित वसन के, अन्तर पच्छ विशाल।
जाल माल कल वसन की, हरित पीत सित लाल ॥ ४२ ॥
विरचित वसन कपाट वर, छज्जै छत्र वितान।
कलित कामिनी वसन की, नटति करति कल गान ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः--माल = समूह। अन्तर पच्छ = महल का भीतरी भाग।

भावार्थः--उस धुन्ध मणि रचित महल के भीतर एक ऐसा उत्तम महल है, जो रावटी, तम्बू की भाँति केवल वस्त्रों का ही बना है। उसमें कल लगा है। एक कल घुमाइये, तो

बस्त्र का पड़ा हुआ ढेर फैल कर महल बन जाय। दूसरा कल फेरिये तो सिमट कर वस्त्र का पुनः ढेर बन गया ॥ ४० ॥

आश्चर्य शोभा से युक्त खंभावली भी वस्त्र ही की बनी है उस महल के सुन्दर कँगूरे भी बस्त्र ही के बने हैं। कामदार वस्त्र ही की झालर जगमग कर रही है। वन्दनवार का सुन्दर आकार भी कपड़े से कलित हैं ॥ ४१ ॥

दरवाजे भी वस्त्र ही के सुन्दर बने हैं। महल का भीतरी हिस्सा खूब विस्तृत है। जाल झरोखों के समूह भी सुन्दर वस्त्रों के बने हैं। जाल में हरे, पीले, उजले तथा लाल कई रंगों के कपड़े लगे हैं ॥ ४२ ॥

उस महल के उत्तम किवाड़ छज्जा, छत, चन्दोवे आदि सब कपड़े ही के बने हैं। नख शिख अलंकृता कृत्रिम नायिकाएँ भी कपड़े की बनी हैं। उनमें ऐसा कल लगा है जिसके घुमाने से वे सुन्दर नृत्य गान भी करने लगती हैं ॥ ४३ ॥

वसन सुमन बहु रंग के, जाई जुही गुलाब।
वेला मुचकुन्द मोगरा, अतर सुगन्ध चहाब ॥ ४४ ॥
केतकि केतक मालती, वसन कलित सब अंग।
वसन कलित कल सेवती, निसाकाय सुचि रंग ॥ ४५ ॥
अपर कुसुम कुट अमित रँग, वसन रचित सब देश।
सुर द्रुम विरचित वसन के, विरचित वसन सुवेदे ॥ ४६ ॥

वसन रचित फल फलन युत, कुसुम कली वर पर्ण ।
लता ललित बहु वसन रचि, सोभित नाना वर्ण ॥ ४७ ॥
वसन कलित कल अलि तहाँ, गुंजत पुंज अनेक ।
विरचित वसन द्विजातिबहु, सब कृत वसन विसेक ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ:--जाई=चमेली । मुक्तक बेला=मोतिया बेला। मोगरा=बड़ा बेला । चहाव=फैलाव । केतक=केवड़ा । कलित=रचित । सेवती=सफेद गुलाब । निसाकास=रजनी गन्धा, रात रानी। कुट=वृक्ष । देश=अंग।

भावार्थ:--नाना रंगों के फूल भी कपड़ों के ही बने हैं। जैसे चमेली, जूही, गुलाब, मोतिया बेला, बड़ा बेला है। इन सब फूलों में उन्हीं फूलों के इत्र भरे हैं, जिससे सुगन्ध फैल रही है ॥ ४४ ॥

केतकी, केवड़ा, और मालती--इन फूलों के अंग प्रत्यंग कपड़े के बने हैं । सुन्दर सफेद गुलाब तथा सफेद रंग की रातरानी--ये भी कपड़े की बनी हैं ॥ ४५ ॥

दूसरे दूसरे पुष्प वृक्षों के भी अंग प्रत्यंग नाना रंगों के वस्त्रों से बने हैं। वस्त्र के ही कल्पवृक्ष बने हैं । सभी चीजें वस्त्र रचित सुन्दर हैं ॥ ४६ ॥

फल वृक्ष भी कपड़ों के ही बने हैं । उनमें फल, फूल, कली, पत्ते सब लगे हैं। अनेकों प्रकार के वस्त्रों से रचित नाना रंगों की सुन्दर लताएँ सुशोभित हो रही हैं ॥ ४७ ॥

कपड़ों के ही बने झुंड के झुंड भ्रमर हैं। उनमें कल लगा है। घुमाने से गुंजार करने लगते हैं। वस्त्रों के ही बने बहुत से कृत्रिम पक्षी हैं। वहाँ की सारी रचनाएँ विशेष प्रकार के बस्त्रों की बनी हैं॥ ५८ ॥

इति श्रीमज्जनकराज किशोरी शरण विरचितायां श्रीसीताराम सिद्धान्तानन्य रस तरंगिण्यां त्रयोदश प्रासादवर मध्ये सर्व ऋतु भोग गृह वर्णनोनाम अष्टादश तरंगः ॥



❀ एकोन विंशति तरङ्ग ❀
(शेष विधान वर्णन)



प्रति गोपुर प्रथमावरन, रक्षक वीर सुजान।
शत गन संख्या आनिये, नेता एक प्रमान ॥ १ ॥
दिव्यायुध धनुवान कर, कटि निषंग वर वेष।
सावधान दिन रैन सब, वारी वार विशेष ॥ २ ॥
साग अन्न भूषन वसन, मनि मानिक पशुजाति।
क्रय विक्रय सब देश के, वनिक बजार सुभाति ॥ ३ ॥
कला कुशल सब देश के, बैठे निज निज हाट।
निज निज कारित वस्तु के, लिये बनाय सुठाट ॥ ४ ॥
यहि विधि चहुँदिशि चौक चहुँ, शोभित सुभग बजार।
जो दिग चौक सुदिगनि की, रीति चाल व्योहार ॥ ५ ॥

प्रसंग:=बाहर से प्रथमावरण तथा द्वितयावरण के वर्णन पिछली चौथी तथा पाँचवीं तरंग में हो चुका है। उनमें कुछ वस्तुएँ छुट गई थीं, उनका यहाँ वर्णन हो रहा है॥

भावार्थ:--प्रथमावरण के प्रत्येक प्रधान फाटक पर बाहर से पहरा देने वाले युद्ध एवं रक्षण कला के मर्मज्ञ एक सौ शूर बीर को ध्यान पथ में लाना चाहिये। इन सबों को नियंत्रण करने वाले एक सेनानायक रहते हैं। ये बड़े विश्वास पात्र हैं॥ १ ॥

सभी शूरवीरों के हाथों में धनुष वाणादि दिव्य अस्त्र शस्त्र सजे हैं। कमरों में तरकश हैं। सुन्दर शृंगार किये हैं। अपने-अपने पहरा के लिये नियुक्त समय पर रात दिन सावधान रहते हैं॥ २ ॥

फाटक के बाहर चारो तरफ बाजार वाले चार चौक हैं। कहीं साग सब्जी का, कहीं अन्नों का, कहीं भूषणों का, कहीं मणि माणिक्यों का, कहीं हाथी, घोड़े, गौ आदि नाना जातियों के पशुओं के बाजार हैं। सब देशों के खरीदने बेचने वाले वणिक महाजनों के बाजार सोह रहे हैं॥ ३ ॥

सब देशों के शिल्पकला प्रवीण कारीगर लोग अपनी अपनी पृथक दूकान लगाकर बैठे हैं। अपनी अपनी बनाई हुई वस्तुओं को सजाये हुये हैं॥ ४ ॥

इस प्रकार प्रथमावरण के बाहर चारो ओर चार चौक हैं। उन चौकों में सुन्दर बाजार सजे हैं। जिस तरफ का चौक है, वहाँ उसी तरफ के देश वाले दूकान लगाये हुये हैं। अतः उस बाजार में उसी दिशा वाली रीति भाँति, रहन सहन तथा व्यवहार देखने में आवेंगे॥ ५ ॥

वाहिर प्रथमा वरन के, परि क्रमन दिन रैन।
एक एक अच्छौहिनी, प्रहर प्रहर प्रति ऐन॥ ६ ॥
सिह चौक पूरब दिशा, संज्ञा जान सुजानु।
सारदूल दच्छिन दिशा, पच्छिम सो मृग मानु॥ ७ ॥

उत्तर आशा चौक को, संज्ञा जानु गजारि।
इहि विधि चहुँ दिशि चौक सो,प्रथमावरन विचारि॥ ८ ॥
शत सहस्र अच्छौहिनी, बाजन सहित अपार।
भाट सूत मागध सहित, नट कौतुकी सुधार ॥ ६ ॥
विविध खिलौना वारुदी, विविध रंग विस्तार।
विविध अंग दरसत तेही, गिनत न लहिये पार ॥ १० ॥

शब्दार्थ:--ऐन (अयन)=(पहरेका) समय, वारी। आसा = दिशा। संज्ञा = नाम। वारुदी = अतिशबाजी।

भावार्थ:--प्रधान फाटकों पर खड़े रह कर पहरा देने वालों के अतिरिक्त, चारों ओर घूम-घूमकर पहरा देने वाले अलग हैं। प्रथमावरण के बाहर से दिन रात एक-एक अक्षौ-हिणी सेना घूम-घूम कर पहरा देती है। इनकी वारी एक २ पहर पर बदलती रहती है। एक अक्षौहिणी में १०६, ३५० पैदल सिपाही, ६५६१० घोड़े, २१८७० रथ और २१८७०हाथी होते हैं ॥ ६ ॥

प्रथमावरण में भीतर से चारो ओर चार चौक हैं। पूरब दिशा वाले चौक का नाम सुजान पाठक सिंह चौक जानें, दक्षिण दिशा वाले का नाम शार्दूल चौक, पश्चिम दिशा वाले का मृगभानु चौक उत्तर दिशा वाले का नाम गाजिर चौक जानिये। इसी प्रकार प्रथमावरण के चार चौकों का विचार है। (सिंह, सार्दूल, मृगभानु तथा गजारि चारों एकार्थ बोधक शब्द हैं) ॥ ७, ८ ॥

प्रसंगः--पहरे वाली सेना का बर्णन कर, अब उन सेनाओं का बर्णन करते हैं, जो बाहरी यात्रा में साथ जाने के लिये बराबर सजाकर फाटकों पर प्रतीक्षा में खड़ी रहती हैं।

हजारों अक्षौहिणी अनन्त जुझाव बाजे के साथ तैयार रहती हैं। इनके साथ भाँड़, वन्दीजन, विरुदावली बखान करने वाले चारण, नाचने वाले नट, कौतुक करने वाले बहु रूपिया भी रहते हैं॥ ९ ॥

उनके साथ नाना प्रकार के आतिशबाजी वाले खेलौने भी रहते हैं। खिलौने अनेकों रंग तथा आकार प्रकार के होते हैं। उनमें कितने अंग भाग दिखलाई पड़ते हैं। सबकी गिनती करने लगें तो पार न लगे ॥ १० ॥

अमित कोटि वर दीपधर, वंस दीप धर जान।
भानु-दीपधर अमित गन, माल-दीप धर आन ॥ ११ ॥
नाट्य-तखत चोपदार बहु, कनक दंड धर व्रात।
देश देश के जांगड़ा, होत न तेहि संख्यात ॥ १२ ॥
ध्वज पताक धर कोटि गन, जय-शाब्दिका अपार।
हय दुन्दभि गज दुन्दभी, वरने कौन विचार ॥ १३ ॥
मंगल गज बहु अग्रनी, एक ऐन इमि जानु।
आठ ऐन इहि भाँति प्रति, जामक सजत प्रमानु ॥ १४ ॥
छड़ी सवारी हेत यह, खड़ी रहति प्रति द्वारि।
चारो प्रथमावरन के, कोटिन राजकुमारि ॥ १५ ॥

शब्दार्थः--व्रात = झुंड। अग्रनी = आगे चलने के लिये

भावार्थः—अब किस्म किस्म के मशालियों का वर्णन करते हैं, जो सवारी के साथ चलने को तैयार रहते हैं। असंख्य व्यक्ति तो उत्तम मशाल लिये हैं, उनमें कितने ऊँचे बाँस में लगे मशाल लिये हैं, कितने तेज प्रकाश (भान) वाला मशाल (गैस बत्ती) लिये हैं, कितने ऐसे मशाल लिये हैं, जिनमें दीपावली की भाँति दीपकों की सजावट की हुई है॥ ११ ॥

सवारी के साथ जाने के लिये बहुत से नाटक-लीला वाले सफरी रंग मंच सजे हैं। सोने की छड़ी धारण करने वाले झुंड के झुंड चोबदार हैं। देश-देश के भाँट हैं। इन सबों की गिनती नहीं हो सकती है॥ १२॥

असंख्य जन तो ध्वजा पताकाएँ धारण करने वाले हैं। जयजयकार उच्चार करने वाले भी अनगिनत हैं। घोड़ों की पीठ पर लदे नगारें हाथी वाले नगारें कितने हैं, इसकी गिनती करके कौन कहे ?॥ १३ ॥

आगे चलने के लिये माङ्गलिक सजावटों से युक्त हाथी भी अनेक खड़े रहते हैं। एक पहर की वारी वाले इतने हुये। इसी प्रकार एक-एक पहर के लिये वेरावारी सज धज कर खड़े रहने वाले आठ दल साङ्गोपाङ्ग तैयार रहते हैं॥१४॥

इस प्रकार के दलबल चारो तरफ के चारो फाटक पर खड़े रहते हैं, इसलिये कि सवारी जिस तरफ से निकले, उसी तरफ सब दलबल तयार मिल जायँ॥

अब आगे प्रथमावरण के भीतर चारो चौकों में निवास करने वाली राजकन्याओं का वर्णन होगा ॥ १५ ॥

पूरब दिशि बहु देश की, नृप तनया छवि सार ।
सिय जू के सँग आइ जे, ब्याहीं राम कुमार ॥ १६ ॥
सिंह चौक मनि महल जे, प्रथमहिं बरने खास ।
ते तहँ निवसति अमित निज, परिकर सहित विलास ॥ १७ ॥
दच्छिन दिशि बहु देश की, भूप सुता वर भास ।
शार्दूल वर कच्छ में, परिकर सहित निवास ॥ १८ ॥
पच्छिम दिशि बहु देश की, नृप कुमारिका वाम ।
चौक ललित मृग भानु तहँ, तासु भवन अनुपाम ॥ १९ ॥
उत्तर दिशि नृप कन्यका, वसति गजारी चौक ।
परिकर सहित बजार निज, वरन चारु तेहि ओक ॥ २० ॥

भावार्थः—पूर्व दिशा में अनेकों देश हैं । उन देशों की राजकन्यायें अति रूपवती हैं । ये सब धनुष यज्ञ में आये हुये राजाओं के द्वारा श्रीसिय जू की सेवा में समर्पित हुईं थीं तथा श्रीप्रिया जू के आग्रह से श्रीरामकुमार जू ने सबों का पाणि ग्रहण किया था । ये सब श्रीमिथिलाजी से श्रीप्रियाजू के साथ-साथ श्रीअयोध्या आईं । ऊपर के प्रसङ्ग में ही पूर्व दिशा में स्थित सिंह चौक का वर्णन हो चुका है उस चौक में नौ खंडों के मणिमय महल हैं । उन महलों में ये अपनी किंकरियों तथा दासियों के सहित सब प्रकार के भोगैश्वर्य से सम्पन्न निवास करती हैं ॥ १६, १७ ॥

इसी प्रकार दक्षिण दिशा के अनेकों देशों की अतिशय रूपवती राजकन्याएँ अपने परिकरों के सहित शार्दूल चौक वाले उत्तम महलों में रहती हैं ॥ १८ ॥

पश्चिम दिशा के बहुत देशों की सुन्दरी राजकुमारियों के अनुपम महल सुन्दर मृगभान चौक में स्थित हैं ॥१९॥

उत्तर देश की राजकन्याएँ अपने परिकर सहित गजारि चौक में निवास करती हैं। उसी चौक के आमने सामने फाटक के बाहर उत्तर देश वासी व्यापारियों का बाजार है। उस बाजार में सुन्दर वैश्य वर्ण के निवास भवन भी बने हैं ॥ २० ॥

भरत खंड मरजाद सब, देश चारि दिशि चौक।
कनक भवन सिय महल में, लखिये चित्त विशोक॥२१॥
द्विपान्तर खंडान्तरी, अन्तराल तेहि भाँति।
निवसति प्रथमावरन के, रघुबर भामा भाँति।२२॥
यहि विधि प्रथमावरन में, सप्त दीप नव खंड।
चाल रीति सब देखियत, अति माधुर्य अखंड ॥२३॥

भावार्थः--चारो ओर के फाटक के भीतर तथा बाहर वाले चौकों में परमपावन भरत खंड की महर्षियों द्वारा प्रतिष्ठित जो आदर्श मर्यादा है, वही दिशाओं के देशानुरूप वरती जाती हैं। श्रीमैथिली जू के श्रीकनकमहल में ही पूर्व कथित चौदहों आवरण अन्तर्भूत हैं। अर्थात् चौदह आवरण श्रीकनकमहल के ही अंग हैं। चित्त के सभी चिन्ता शोकों

को मिटाने के लिये ऐसे श्रीकनकमहल का ध्यान करना चाहिये ॥ २१ ॥

प्रथमावरण के वर्णन करने के समय चौकों के अतिरिक्त अन्तरालों में प्रश्नोत्तरी हिसाब से सब खंडे महलों की चर्चा हो चुकी है। उन महलों में श्रीरघुवर जू की वह विलासिनी रमणियाँ रहती हैं, जो जम्बू द्वीप के अतिरिक्त अन्य द्वीपों से तथा श्रीभरत खंड के अतिरिक्त अन्य खंडों से ब्याह लाई गई हैं॥ २२॥

इस प्रकार प्रथमावरण के चौकों और अन्तरालों में सातों द्वीप, नवों खंडों की ललनाओं के निवास होने के कारण, इस आवरण में सर्वत्र की रहन सहन रीति भाँति, व्यवहार बर्त्ताव देखने में आते हैं। श्रीचक्रवर्ती कुमार जू का अखंड निरतिशय माधुर्यानन्द सदा एक रस बना रहता है॥२३॥

द्वितिया वरन सु चौक चहुँ, पूरब दिश मुद चौक।
दच्छिन आनन्द चौक लखु, पच्छिम मंगल चौक ॥२४॥
उत्तर दिश उत्साहनो, चौक नाम परमान।
मनिमय अमित प्रकाश युत,सदन अमित छवखान॥२५॥
नाग-सुता मुद चौक में, निवसति यथा विभाग।
निवसति आनन्द चौक में,जच्छ-सुता छवि बाग ॥२६॥
निवसति मंगल चौक में, गंधर्वी सुकुमारि।
उत्साहनी सुचौक मधि, किन्नरजा सुकुमारि ॥२७॥

भावार्थः--अब द्वितीयावरण निवासिनी कामिनियों का वर्णन होगा । इस आवरण में भी चारो तरफ चार चौक हैं। पूर्व तरफ मुद चौक है । दच्छिण दिशा में आनन्द चौक है। पश्चिम में मंगल चौक है । उत्तर दिशा में उत्साहनी चौक है । उन चौकों में अतिशय प्रकाशमान मणियों के रचित महल बने हैं। उन महलों के ऊपर ध्वजा पताकाएँ फहराती रहती हैं ।। २४, २५ ।।

मुद चौक में नाग कन्याएँ अपने-अपने लिये नियुक्त महलो में निवास करती हैं। आनन्द चौक में यक्ष कन्याएँ अपनी रूप कान्ति से अपने महलों को जगमगाती हुई निवास करती हैं ।। २६ ।।

मंगल चौक में कोमलाङ्गी गन्धर्व कुमारियाँ निवास करती हैं, तथा उत्साहनी चौक में कुसुम कोमल। किन्नर कुमारियाँ रहती हैं ।। २७ ।।

द्वार पाल चारौ दिशा, तृतिया प्रकृति अपार।
दिव्य विभूषन बेत्रधर, वचन चतुर गुन भार ।।२८।।
वत्सर पन्नग वर्ग सिधि, जैवातृक मधुमास ।
जनक लड़ैती शरन हित, भा यह ग्रन्थ प्रकास ।।२९।।

शब्दार्थः--तृतिया प्रकृति=नपुंसक तृतीया प्रकृतिः

षराढः क्लीवः षराडो नपुंसके--इत्यमरे ॥ अपार=असंख्य। वत्सर=सम्वत। पन्नग से आठ का बोध होता है, अष्ट-नाग है। वर्ग चार हैं। सिद्धि आठ होती हैं। जैवातृक चन्द्रमा एक है।

शब्दार्थः--चारो तरफ के द्वारों पर बाहर से असंख्य द्वारपाल नियुक्त हैं। ये सबके सब नपुंसक हैं। अन्तःपुर की ड्योढ़ी पर केवल हिजड़े द्वार पाल नियुक्त रहते हैं। सभी द्वारपाल दिव्य भूषण वसन से अलंकृत हैं। हाथों में बेत है। वाक्य रचना में चतुर हैं। अनन्त शुभ गुणों से विभूषित हैं॥ २८॥

सम्वत की गणना उल्टे क्रम से होती है। इस प्रकार १८४८ विक्रमाब्द के चैत्र (मधु) मास में यह ग्रन्थ पूरा होकर, सब अधिकारियों को प्राप्त हुआ। श्रीजनक लड़ैतीशरण जी के आग्रह से उन्हीं के निमित्त इस ग्रन्थ की रचना हुई। श्रीजनक लड़ैतीशरणजी चिरगाँव के राजा थे। इन्हीं ने महल निर्माण के लिये श्रीग्रन्थ कर्त्ता जू को पाँच हजार रुपये दिये थे, जिनसे महल की नींव मात्र पड़ सकी, पीछे राजा ने हाथ खींच लिया था। श्रीरसिक-प्रकाश भक्तमाल छप्पय २२४ में इनका चरित्र आया है॥२९॥

इति श्रीमज्जनकराजकिशोरी शरण विरचितायां श्रीसीताराम सिद्धान्तानन्य रस तरंगिण्यां शेष विधान वर्णनोनाम एकोन्विंशति तरंगः ॥ ग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

❀ पद ❀

हमारो श्री चारु शिला सुख बेली।
आज्ञा भइ साकेत धाम से मृत्यु लोक चली खेली॥
श्रीजनकलली जू के जन्म सते दिन प्रगटी शोभा फैली।
माधव मास पुण्य तिथि पावन, वारो चन्द्र परैली॥
जग जंजाल छुड़ाय जीवन के मोद दियो रस हेली।
श्रीमिथिलापुर घर-घर में आनँद नव सुर नचत नवेली॥
रस शृँगार की रसाचार्य भइ सिय जु कि प्राण सहेली।
'श्रीरामचरण' भगिनी के नाते पकरी आय हथेली॥

❀ पद ❀

जनमी श्री चारुशिला गुण खानी।
मिथिलाशत्रुजीतजू के गृह चंद्रकान्तिजूकी कोख सिरानी॥
सिय पिय से सम्बन्ध करावे रसाचार्य रस दानी।
सहचरी जूथ अनेकन ऊपर सर्वेश्वरि श्रुति मानी॥
शेष शारदा पार न पावत अस्तुति करत बखानी।
हरि सहचरी चरन की चेरी, सिय जू के समजानी॥

(पद—राग भैरवी)

बाजत कोशलेश जू के द्वार।
घन रव दुन्दुभि शंख सहनाई, रैनि रही घरि चार॥

उठो सखी अब मन्जन करिये, सजि सोरहो शृंगार।
भूषण रचि अँग धारि के चलिये, चारुशिला दरबार॥
महल-महल प्रति जागि उठीं सब, निज २ सौज सँभार।
रसिक अली परिकर स्वामिनि ढिग बैठत करके जुहार॥

❋ पद ❋

करो सखि श्रीचारुशिला पग आशा॥
अम्ब श्रीचन्द्रकान्ति जू की बेटी, सर्वेश्वरि पद खासा।
विहरति कनक भवन कुँजन में, प्रीतम रहस्य विलासा॥
जाको कृपा सकल यूथेश्वरि, सिय प्रिय महल निवासा।
श्रीअलीविहारिणिकी निज बहिनी,सकल गुणनकी रासा॥

❋ पद ❋

वह दिन कब आवैगो रि माई।
जादिन श्रीमिथिलेश नन्दिनी, हिय सो मोहिं लगाई॥
लै उछंग निज वारम्वारहि, मुख चूमत हरषाई।
मृदु करकंज शीष पर फेरत, बार-बार वलि जाई॥
मणिन जटित आभूषण सुन्दर, अम्बर करत न्यवछाई।
निरखत आनन होत जितो सुख, शेष सकै किमि गाई॥
उमा रमा अरु सकल महल तिय, करत सुशील बड़ाई।
मोद विनोद निरखि सियजू को,(श्री)रसिकअली हरषाई॥